BAED-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शिक्षार्थी अवबोध

BAED - 02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

शिक्षार्थी अवबोध
Understanding Learner

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच

कुलपति

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

संयोजक

डॉ. कीर्ति सिंह

सहायक आचार्य

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय. कोटा

सदस्य

- **प्रो.आर.पी.श्रीवास्तव**
  जामिया मिलिया इसलामिया
  नई दिल्ली
- **प्रो. अनिल शुक्ला**
  लखनऊ विश्वविद्यालय,
  लखनऊ (उ.प्र.)
- **प्रो. सी.बी.शर्मा**
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
  नई दिल्ली
- **डॉ. दामीना चौधरी**
  सह आचार्य,शिक्षा(से.नि.)
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय

संपादक एवं पाठ लेखन

संपादक

प्रो.अनिल शुक्ला

लखनऊ विश्वविद्यालय,

लखनऊ (उ.प्र.)

पाठ लेखक

- **डॉ. मंजु वर्मा**
  व्याख्याता,लोकमान्य तिलक टी.टी.कॉलेज
  डबोक उदयपुर
- **डॉ .सरोजनी उपाध्याय**
  व्याख्याता, एस.एस.जी.पारीक.टी.टी.कॉलेज,
  जयपुर
- **डॉ.निधि शर्मा**
  प्राचार्य, एस.के.टी.टी.कॉलेज,
  मेरठ(उ.प्र.)
- **डॉ.यदु शर्मा**
  प्राचार्य,एस.एस.जैन सुबोध महिला टी.टी.कॉलेज
  जयपुर
- **डॉ.प्रीति सिंह**
  रीडर, जयपुर नेशनल विश्वविद्यालय
  जयपुर
- **डॉ.अलका पारीक**
  व्याख्याता, एस.एस. जैन सुबोध महिला
  टी.टी.कॉलेज,
  जयपुर
- **डॉ.माधुरी चौबे**
  रीडर, लोकमान्य तिलक टी.टी.कॉलेज
  डबोक उदयपुर
- **डॉ.अरुणा चौहान**
  प्राचार्य,मीरा कन्या टी.टी.कॉलेज
  जयपुर
- **डॉ. कीर्ति सिंह**
  सहायक आचार्य
  व.मु.खु.वि.,kota
- **डॉ.लीलेश गुप्ता**
  प्राचार्यजे.एल.एन.टी.टी.कॉलेज,
  कोटा

- **डॉ. सुषमा सिंह**
  रीडर,जे.एल.एन.टी.टी.कॉलेज,
  कोटा
- **डॉ.अन्तिम शर्मा**
  व्याख्याता,महारानी कन्या टी.टी.कॉलेज
  कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) एम. के. घडोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(संकाय)	प्रभारी(एम.पी.डी.)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, रावतभाटा रोड, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

श्री योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - जनवरी 2012 **ISBN No.- 13/978-81-8496-245-1**

इस सामग्री के किसी भी अंश की व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियाग्राफी' (चक्रमुद्रण) के द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. विश्वविद्यालय, कोटा द्वारा वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा के लिये मुद्रित एवं प्रकाशित।

BAED-02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

अनुक्रमणिका

शिक्षार्थी अवबोध

क्रम.सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	शिक्षा मनोविज्ञान-अर्थ, प्रकृति क्षेत्र एवं उपयोगिता	8–23
2	अभिवृद्धि एवं विकास: अर्थ, विशेषताएँ और प्रभावित करने वाले कारकाँ	24–49
3	बालक का शारीरिक एवं गामक विकास	50–68
4	पियाजे के अनुसार बालक का ज्ञानात्मक विकास	69–76
5	सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास–प्रक्रिया एवं परिवर्तन	77–105
6	अधिगम का अर्थ, प्रत्यय, स्वरूप और प्रकार	106–120
7	अधिगम के सिद्धान्त	121–131
8	अधिगम अन्तरण	132–147
9	गने द्वारा प्रतिपादित अधिगम–अनुक्रम	148–160
10	व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास	161–182
11	व्यक्तित्व के गुण,प्रकार व प्रभावित करने वाले कारक	183–205
12	वैयक्तिक विभिन्नताएँ : संकल्पना, प्रकृति एवं विशेषताएँ, प्रकार, क्षेत्र, कारण, मापन विधियाँ	206–221
13	बुद्धि की अवधारणा एवं बुद्धि के सिद्धान्त	222–247
14	अभिप्रेरणा–संकल्पना तथा अधिगम पर प्रभाव	248–261
15	विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बालक श्रवण व दृष्टि दोषयुक्त बालक, प्रतिभाशाली व पिछड़े बालक तथा बाल अपराधी बालक	262–279
16	बालकों का निर्देशन एवं परामर्श	280–302
17	समायोजन	303–313
18	सृजनात्मकता	314–320

इकाई 1

शिक्षा मनोविज्ञान - अर्थ, प्रकृति क्षेत्र एवं उपयोगिता (Educational Psychology-Meaning, Nature, Nature, Scope and Utility)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शिक्षा का अर्थ

1.3 मनोविज्ञान का अर्थ

1.3.1 आत्मा के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

1.3.2 मन के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

1.3.3 चेतना के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

1.3.4 व्यवहार के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

1.4 मनोविज्ञान व शिक्षा में सम्बंध

1.5 मनोविज्ञान का शिक्षा पर प्रभाव

1.6 शिक्षा का मनोविज्ञान पर प्रभाव

1.6.1 शिक्षा द्वारा मनोविज्ञान का अध्ययन सम्भव होता है

1.6.2 शिक्षा द्वारा मनोविज्ञान का ज्ञान सुरक्षित रखा जा सकता है ।

1.6.3 शिक्षा मनोविज्ञान के विषय की विषयवस्तु का विकास करती है ।

1.7 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

1.8 शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति

1.9 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र

1.10 शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

1.10.1 शिक्षा आयोजकों के लिए उपयोगी

1.10.2 शैक्षिक प्रबन्धकों व प्रशासकों के लिए उपयोगी

1.10.3 प्रधानाचार्यों के लिए उपयोगिता

1.10.4 शिक्षकों के लिए उपयोगिता

1.11 सारांश

1.12 मूल्यांकन प्रश्न

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- शिक्षा, मनोविज्ञान के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- शिक्षा व मनोविज्ञान के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- शिक्षा व मनोविज्ञान पर प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ और परिभाषा की विवेचना कर सकेंगे ।
- शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति की चर्चा कर सकेंगे ।
- शिक्षा मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

मानव समाज में सभ्यता एवं संस्कृति के प्रकार एवं हस्तान्तरण के लिए शिक्षा का उल्लेखनीय योगदान हे । शिक्षा के अभाव में मनुष्य भी जीव जगत के अन्य प्राणियों के ही समान हो जाता है अतः शिक्षा के इस अद्वितीय महत्व को ध्यान में रखते हुए इससे सम्बन्धित विभिन्नताओं का अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है । इसी सन्दर्भ में शिक्षा मनोविज्ञान का भी अध्ययन किया जाने लगा है क्योंकि अनेक शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा तथा मनोविज्ञान के घनिष्ठ एवं पारस्परिक सम्बन्ध को पहचाना है । शिक्षा एवं शिक्षा मनोविज्ञान के विषय में विस्तृत अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान तथा शिक्षा के अर्थ एवं पारस्परिक सम्बन्धों आदि को जानना आवश्यक है । अतः इस इकाई में शिक्षा, मनोविज्ञान का विस्तृत अर्थ स्पष्ट करते हुए वह बताने का प्रयास किया गया है कि शिक्षा मनोविज्ञान किसे कहते है तथा इसकी प्रकृति, क्षेत्र व उपयोगिता को भी विस्तार से समझाने का प्रयास किया गया है ।

1.2 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष धातु में अ प्रत्यय लगाने से बना है । शिक्ष का अर्थ हैं "सीखना और सिखाना" । अतः शिक्षा शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ सीखने व सिखाने की क्रिया। अंग्रेजी में शिक्षा को एजूकेशन कहते है जिसका अर्थ हैं अन्दर से आगे बढ़ना । अन्दर से आगे बढ़ने का अर्थ है कि प्रत्येक की जन्मजात शक्तियों को उचित वातावरण में सही दिशा की ओर विकसित करना । स्पष्ट है कि शिक्षा और इसके अंग्रेजी शब्द 'एजूकेशन' दोनों ही शब्दों का शाब्दिक अर्थ मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को आगे बढ़ाने वाली विकसित करने वाली प्रक्रिया है, दूसरे शब्दों में शिक्षा का अर्थ मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को आगे बढ़ाने वाली, विकसित करने वाली प्रक्रिया से हे । अतः शिक्षा मनुष्य के विकास का मूल साधन है क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन होता है और उसे एक सभ्य नागरिक बनाया जाता है ।

शिक्षा के स्वरूप एवं कार्यों की व्याख्या विशेष रुप से दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीति शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने अपने दृष्टि से की है । शिक्षा के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये उनके दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है ।

दार्शनिकों के अनुसार शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है । इसके द्वारा मनुष्य के ज्ञान, कौशल, कला में वृद्धि की जाती है, व्यवहार में परिमार्जन किया जाता है । गांधी जी के अनुसार

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के सर्वांगीण और सर्वोत्तम विकास से है ।"

(Gandhi Ji -"By education I mean an all-round drawing out of the best in child and man body mind and spirit")

समाजशास्त्रियों ने शिक्षा को सामाजिक प्रक्रिया बताया है साथ ही कहा कि यह अविरल प्रक्रिया है, द्विधुव्रीय प्रक्रिया है, गतिशील प्रक्रिया है और विकास की प्रक्रिया हैं ।

राजनीतिज्ञों ने कहा कि किसी भी राष्ट्र का विकास शिक्षा पर निर्भर करता है इसके द्वारा श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण किया जाता है । प्लेटो की इसी मत को मानते थे ।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य का विकास उसकी जन्मजात शक्तियों और पर्यावरण पर निर्भर करता है । अतः शिक्षा द्वारा जन्मजात शक्तियों का विकास करने के पश्चात समाज, राष्ट्र की ओर अग्रसर होना चाहिए ।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि शिक्षा एक अनवरत चलने वाली सौद्देश्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान, कला, कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है । इस प्रकार सुसंस्कृत, सभ्य, एवं श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण किया जाता है । इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों का विकास होता है ।

1.3 मनोविज्ञान का अर्थ

मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो प्राणियों के व्यवहार मानसिक तथा दैहिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है । मानसिक और दैहिक प्रक्रियाओं में चिन्तन के साथ-साथ पशु पक्षियों के व्यवहार भी सम्मिलित रहते है । मनोविज्ञान के अर्थ और प्रकृति को समझने के लिये मनोविज्ञान के शाब्दिक अर्थ व मनोविज्ञान की परिभाषा के ऐतिहासिक विकास क्रम को समझना उचित होगा । 'मनोविज्ञान' शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'मन का विज्ञान' । दूसरे शब्दों में जो मन का अध्ययन करें । मनोविज्ञान को अग्रेंजी में Psychology कहते है । इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्द 'साइकी' (Psyche) तथा लोगस (Logo) से मिलकर हुई है । साइकी शब्द का अर्थ है कि आत्मा है जबकि लोगस शब्द का अर्थ-अध्ययन । अतः अंग्रेजी शब्द Psychology का अर्थ है आत्मा का अध्ययन । परन्तु वर्तमान समय में मनोविज्ञान व साइकोलोजी के शाब्दिक अर्थों को स्वीकार नहीं किया जाता है । अब यह एक स्वतन्त्र विषय के रुप में स्वीकार किया गया है । मनोविज्ञान के आधुनिक अर्थ को समझने के लिये मनोविज्ञान की परिभाषाओं के ऐतिहासिक विकास क्रम को समझना आवश्यक है । मनोविज्ञान के अर्थ में क्या क्या परिवर्तन हुये इसको संक्षेप में इस प्रकार समझाया जा सकता है-

1.3.1 आत्मा के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की वह शाखा है जिसमें आत्मा का अध्ययन किया जाता है । प्लेटो (Plato), अरस्तू (Aristotle) डेकार्ट (Decarte) आदि यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान (Science of Soul) के रुप में स्वीकार किया है । यह परिभाषा 16 वीं

शताब्दी तक प्रचलित रही परन्तु बाद में आत्मा की प्रकृति के संबंध में तरह-तरह की शंकाएं उत्पन्न होने लगी तथा तत्कालीन मनोवैज्ञानिक आत्मा की स्पष्ट परिभाषा उसके स्वरूप, रंग रुप व आकार, स्थिति, अध्ययन की विधियों को स्पष्ट करने में असफल रहे अतः परिणाम स्वरूप परिभाषा को अस्वीकार कर दिया गया ।

1.3.2 मन के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

मध्य युग के दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को मन के विज्ञान (Science of mind) के रुप में परिभाषित किया । इन्होंने मनोविज्ञान को अध्ययन का वह क्षेत्र स्वीकारा जिसके अन्तर्गत मस्तिष्क या मन का अध्ययन किया जाता है । मन की प्रकृति तथा स्वरुप को स्पष्ट रुप से निर्धारित करने में मनोवैज्ञानिक असफल रहे अतः मनोविज्ञान की यह परिभाषा भी शीघ्र ही अमान्य हो गई ।

1.3.3 चेतना के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

कुछ मनोवैज्ञानिकों के द्वारा मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान (Science of Consciousness) के रुप में व्यक्त किया गया । वाइव (Vive) विलियम जेम्स (William James Suly) विलियम बुड (William Woundt) आदि विद्वानों ने इसे चेतना के विज्ञान के रुप में स्वीकारा और कहा कि मनोविज्ञान केवल क्रियाओं का अध्ययन करता है परन्तु मनोवैज्ञानिक चेतन शब्द के अर्थ व स्वरूप के सम्बन्ध में एक मत न हो सके । चेतन क्रियाओं पर अर्द्ध चेतन व अचेतन क्रियाओं का प्रभाव भी होने के स्पष्ट प्रमाणों के कारण मनोवैज्ञानिकों की इस परिभाषा पर भी मनोवैज्ञानिक में मतभेद रहा तथा इसे मनोविज्ञान की अपूर्ण परिभाषा माना गया ।

1.3.4 व्यवहार के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान को व्यवहार के विज्ञान (Science of Behavior) के रुप में स्वीकार किया जाने लगा । वाटसन्, (Wostson) वुडवर्थ (Woodworth) स्किनर, आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को व्यवहार के एक निश्चित विज्ञान के रुप में स्वीकार किया । वर्तमान समय में मनोविज्ञान की इस परिभाषा को एक सर्वमान्य परिभाषा के रुप में स्वीकार किया जाता है । अतः मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है, और मनुष्य प्राणी जो कुछ प्रतिक्रिया करता है वह उसका व्यवहार है । मनोविज्ञान के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक सभी प्रकार के व्यवहार का अध्ययन समाहित रहता है ।

1.4 मनोविज्ञान व शिक्षा में सम्बन्ध

शिक्षा मनुष्य के ज्ञान, कला, कौशल में वृद्धि और उसके व्यवहार में परिवर्तन करने की प्रक्रिया है और मनौविज्ञान मनुष्य के व्यवहार के कारक, प्रेरक एवं नियन्त्रक तत्वों के अध्ययन का विज्ञान है । अतः स्पष्ट है कि इन दोनों का सम्बन्ध मनुष्य के व्यवहार से है । अतः इन दोनों में निकट सम्बन्ध होना चाहिए । शिक्षा मनुष्य में वांछित परिवर्तन करने की प्रक्रिया है मनोविज्ञान यह बताता है कि यह परिवर्तन कब, कितना, और कैसे किया जा सकता है । दूसरी और शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर विकास करती है और यह चक्र चलता रहता है ।

1.5 मनोविज्ञान का शिक्षा पर प्रभाव

मनोविज्ञान ने शिक्षा के सम्प्रत्यय, उद्देश्य, पाठ्यचर्या, एवं शिक्षण विधियों आदि को प्रभावित किया हैं । यह शिक्षा की सभी समस्याओं का समाधान मानव व्यवहार के आधार पर करता है । इसके अध्ययन क्षेत्र और विषय वस्तु को निम्नलिखित रुप में अभिव्यक्त कर सकते है :-

1.5.1 मनोविज्ञान और शिक्षा का सम्प्रत्यय

मनोविज्ञान में स्पष्ट किया है कि शिक्षा ज्ञान के विकास और मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन करने का साधन है । अतः शिक्षा मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन करने का साधन मानी जाती है।

1.5.2 मनोविज्ञान और शिक्षा के उद्देश्य

मनोविज्ञान शिक्षा के उद्देश्यों को निश्चित करने में तो कोई प्रभाव नहीं डालता परन्तु यह दार्शनिकों, समाजशास्त्रियों, राजनीति शास्त्रियों अर्थशास्त्रियों द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने की सम्भावनाएं स्पष्ट करता है और यह स्पष्ट करता है कि शिक्षा के विकास स्तर पर कौन से उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त किये जा सकते है ।

1.5.3 मनोविज्ञान और शिक्षा का पाठ्यक्रम

मनोविज्ञान ने यह स्पष्ट किया है कि बालकों की शिक्षा उनकी जन्मजात शक्तियों और पर्यावरण इन दो तत्वों पर निर्भर करती है और यह जन्मजात शक्तियों, रुचियों एवं रुझानों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न आयु वर्ग के बच्चों में भिन्न-भिन्न होती है और उनकी आवश्यकताओं में भी भिन्नता होती है इसलिये किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्माण उस स्तर के बच्चों की आयु, रुचि, रुझान एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करना पड़ता है ।

1.5.4 मनोविज्ञान और शिक्षण विधियाँ

मनोविज्ञान ने यह स्पष्ट किया है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन होता है यह व्यवहार परिवर्तन की प्रकिया मनुष्य में जन्मजात शक्तियों एवं बाह्य पर्यावरण पर निर्भर करता है अतः: किसी भी स्तर की बच्चों के शिक्षण विधियां उस स्तर के बच्चों की जन्मजात शक्तियों एवं रुचियों के आधार पर निर्मित होनी चाहिए ।

1.5.5 मनोविज्ञान और अनुशासन

मनोविज्ञान ने मनुष्य की आंतरिक क्रियाओं को तीन भागों में विभाजित किया है - ज्ञानात्मक, भावात्मक मनोक्रियात्मक और यह भी स्पष्ट किया है कि उसका व्यवहार उसका ज्ञान एवं संवेगों पर आधारित होता है इसने यह भी स्पष्ट किया है कि मानव का संवेगात्मक विकास भय पूर्ण पर्यावरण में नहीं किया जा सकता है इसके लिये प्रेम एवं सहानुभूति पूर्ण पर्यावरण आवश्यक है ।

1.5.6 मनोविज्ञान और शिक्षक

मनोविज्ञान ने यह सिद्ध किया कि व्यक्ति की शिक्षा उसकी जन्मजात शक्तियों और पर्यावरण पर निर्भर करती है । शिक्षक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उचित परिस्थिति एवं

पर्यावरण का निर्माण करता है, जिसके अन्तर्गत बच्चे स्वयं सीखते है । अत: आज शिक्षक केवल ज्ञान सम्प्रेषक नहीं है वह तो सीखने के लिये परिस्थितियों का निर्माण करता है ।

1.5.7 मनोविज्ञान और शिक्षार्थी

मनोविज्ञान ने यह स्पष्ट किया है कि बालक की शिक्षा उसकी जन्मजात शक्तियों और बाह्य पर्यावरण पर निर्भर करती है मनोविज्ञान ने यह भी स्पष्ट किया है कि यह जन्मजात शक्तियां रुचियां, रुझान भिन्न- भिन्न आयु वर्ग में भिन्न होता है । अत: उसकी शिक्षा के समय उसका ध्यान रखना चाहिए ।

1.5.8 मनोविज्ञान और विद्यालय

मनोविज्ञान ने विद्यालयों की प्रकृति को प्रभावित किया है । पूर्व के शिक्षकों का विद्यालय में कठोर नियंत्रण रहता था । सभी के लिये एक ही पाठ्यचर्या होती, एक ही शिक्षण विधि से पढ़ाया जाता । मनोविज्ञान के प्रभाव में आज विद्यालय में भय पूर्ण वातावरण के स्थान पर प्रेम, सहानुभूति पूर्ण पर्यावरण के निर्माण पर बल दिया जात है ।

1.5.9 मनोविज्ञान और शिक्षा के अन्य समस्याएँ

मनोविज्ञान ने शिक्षार्थी की योग्यता, रुचि, क्षमता, रुझान की जांच करने हेतु उचित विधियों का विकास किया है । जिनकी सहायता से सभी बालकों को शैक्षिक, व्यावसायिक निर्देशन देना सम्भव हुआ है । इतना ही नहीं मनोविज्ञान ने शैक्षिक, उपलब्धि मापन, की विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ, विधियों का विकास किया है ।

1.6 शिक्षा का मनोविज्ञान पर प्रभाव

1.6.1 शिक्षा द्वारा मनोविज्ञान का अध्ययन संभव होता है

मनोविज्ञान में मनुष्य व्यवहार के घटक, कारक, प्रेरक व नियन्त्रक तत्वों का अध्ययन किया जाता है । इस अध्ययन के लिए निरीक्षक, विश्लेषण एवं संश्लेषण, आदि शक्तियों की आवश्यकता होती है जिनका विकास शिक्षा द्वारा किया जाता है । अत: स्पष्ट होता है कि शिक्षा द्वारा ही मनोविज्ञान का अध्ययन सम्भव हो पाता है ।

1.6.2 शिक्षा द्वारा मनोविज्ञान का ज्ञान सुरक्षित रखा जाता है ।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में जितने भी तथ्यों की जानकारी सिद्धान्तों व नियमों का निश्चय होता है, वह आने वाली पीढ़ी में शिक्षा के द्वारा हस्तान्तरित होते रहते है और उस ज्ञान को सुरक्षित रखा जा सकता है ।

1.6.3 शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु में वृद्धि एवं विकास करती है

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में शोध को बढ़ावा देती है और नई-नई शोधों के लिये अवसर प्रदान करती है, और इन शोधों के निष्कर्ष के आधार पर मनोविज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर विकास हो रहा है, और उसकी विषय वस्तु में वृद्धि हो रही है ।

1.7 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा है यह दो शब्दों से मिलकर बना शिक्षा तथा मनोविज्ञान । अत: शिक्षा मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ शिक्षा से सम्बन्धित मनोविज्ञान से है । शिक्षा का सम्बन्ध मानव के व्यवहार में परिवर्तन से होता है । जबकि मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार के अध्ययन से होता है । अत: मानव के व्यवहार को संशोधित करने के लिये मानव व्यवहार के अध्ययन के आवश्यकता होती है । मानव के व्यवहार को उन्नत बनाने की दृष्टि से व्यवहार का अध्ययन किया जाता है । इसीलिए अध्ययन की इस शाखा को शिक्षा मनोविज्ञान के नाम से सम्बोधित किया जाता है । इसलिए कहा जाता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है । दूसरे शब्दों में शैक्षणिक समस्याओं का वैज्ञानिक व तर्कसंगत ढंग से समाधान करने के लिये मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्तों का उपयोग करना ही शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु है । शिक्षा तथा मनोविज्ञान में सम्बंध को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है :-

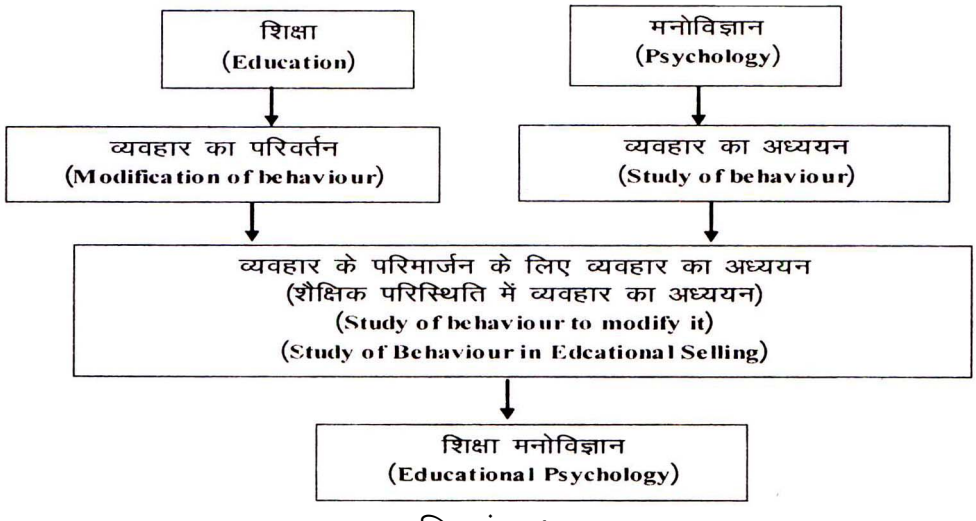

चित्र नं. : 1

शिक्षा और मनोविज्ञान की परिभाषा

शिक्षा मनोविज्ञान के सम्बन्ध में विद्वानों के द्वारा व्यक्त की गई परिभाषाएँ निम्नलिखित है- अनेक विद्वानों ने शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा में बांधने का प्रयास किया है । कालेसनिक महोदय ने इसे बहुत संक्षिप्त रुप में परिभाषित किया है । उनके शब्दों में-

"शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान की खोजों और सिद्धान्तों का प्रयोग है ।"

(Educational Psychology is the application of findings and theories of psychology in the field of education.")

-(W.B. Kolesnik)

स्कीनर के अनुसार -

"शिक्षा मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षण तथा अधिगम से सम्बन्धित होती है ।"

("Educational psychology is the branch of psychology which deals with teaching and learning".)

-(B.F. Skinner)

ट्रो के अनुसार-

"शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन है"

("Educational Psychology is the study of the Psychological aspects of educational situation".)

(-Tro)

स्टीफन के अनुसार -

"शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है ।"

"Educational psychology is the systematic study of educational growth."

- (Stiphen)

क्रो एवं क्रो के अनुसार -

"शिक्षा मनोविज्ञान के व्यक्ति के जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक के सीखने के अनुभवों का वर्णन तथा व्याख्या करता है ।"

"Educational psychology describes and explains the learning experiences of an in individual from birth thorough old age".

- (Crow and Crow)

शिक्षा मनोविज्ञान की उपरोक्त सभी परिभाषाओं के अवलोकन से कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है । दूसरे शब्दों में शिक्षा मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षा प्रक्रिया का संचालन करने की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों तथा नियमों का अध्ययन करती है । उपरोक्त परिभाषाओं से शिक्षा मनोविज्ञान की निम्नलिखित विशेषता परिलक्षित होती है :-

1. शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य केन्द्र मानव व्यवहार है ।
2. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा प्रक्रिया को सरल,तथा द्रुत बनाकर शिक्षण अधिगम का मार्ग प्रशस्त करता है ।
3. शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है ।
4. शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत सामान्य मनोविज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों तथा विधियों का उपयोग किया जाता है ।
5. शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है अर्थात् शिक्षा मनोविज्ञान अपने अध्ययन के लिये वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करता है ।

उपरोक्त वर्णित शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति के आधार पर शिक्षा मनोविज्ञान सरल रुप में निम्नानुसार परिभाषित किया जा सकता है ।

शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन शिक्षण, अधिगम, प्रक्रिया को सुगम एवं प्रभावी बनाने का विज्ञान है ।

(Educational Psychology is the science of making learning process simple, convenient and efficient by studying human behavior in Educational setting)

यदि हम शिक्षा मनोविज्ञान को और अधिक स्पष्ट रुप में परिभाषित करना चाहें तो इस प्रकार कर सकते है-

शिक्षा मनोविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें मनुष्य की अभिवृद्धि, विकास एवं अधिगम सम्बन्धी सिद्धान्तों एवं और उसकी शारीरिक एवं मानसिक योग्यताओं एवं क्षमताओं के स्वरुप तथा उनकी मापन विधियों का अध्ययन किया जाता है और मनुष्य को शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयोग कर उसकी शिक्षा को प्रभावशाली बनाने की विधियाँ स्पष्ट की जाती है ।

शिक्षा मनोविज्ञान की इस परिभाषा में इसका स्वरुप और कार्य दोनों सम्मिलित है अत: यह परिभाषा अपने के पूर्ण एवं स्पष्ट है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. मनोविज्ञान के अर्थ में प्रमुख चार कौन - कौन से परिवर्तन हुए बताइये।
2. शिक्षा मनोविज्ञान की कोई दो परिभाषाएँ लिखिए ।

1.8 शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ की चर्चा से उसकी प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते है :-

- यह मनोविज्ञान की एक शाखा है ।
- इसमें मनुष्य की शारीरिक व मानसिक शक्तियों एवं व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।
- इसमें मनुष्य के व्यवहार के जन्मजात और पर्यावरणीय दोनों प्रकार के कारक, प्रेरक, नियन्त्रक तत्वों का अध्ययन किया जाता है ।
- यह व्यवृहत मनोविज्ञान (Applied Psychology) है । इसके प्रयोग से मनुष्य की शिक्षा को प्रभावशाली बनाया जाता है ।
- इसके द्वारा मनुष्यों के व्यवहार को समझ कर उसके व्यवहार को नियन्त्रित किया जाता है दिशा प्रदान की जाती है ।
- इसके द्वारा स्थापित सिद्धान्त एवं नियम, वस्तुनिष्ठ, सार्वभौमिक और प्रामाणिक होते है, उन्हें प्रयोगों द्वारा सत्यापित किया जा सकता है ।
- यह पूर्ण रुप से शुद्ध विज्ञान है, इसके द्वारा स्थापित नियम, सिद्धान्त निकट तम शुद्ध होते है ।

1.9 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ से स्पष्ट होता है कि शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थी (Leader), अध्यापक (Teacher) तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है । स्कीनर के

अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र में वे सभी ज्ञान तथा प्रविधियां सम्मिलित है जो सीखने की प्रकिया को अधिक अच्छी प्रकार से समझने तथा अधिक निपुणता से निर्देशित करने से सम्बन्धित है । आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिक के अनुसार शिक्षा मनोवैज्ञानिक के कार्य क्षेत्र निम्नलिखित होते है :-

1.9.1 वंशानुक्रम

वंशानुक्रम व्यक्ति भी जन्मजात शक्तियों से सम्बन्धित होता है । किसी व्यक्ति के वंशानुक्रम में वे समस्त शारीरिक मानसिक तथा अन्य विशेषताएं आ जाती है जिन्हें वह अपने माता पिता अथवा पूर्वजों से जन्म से लगभग नौ माह पूर्व प्राप्त करता है । मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति के विकास के प्रत्येक पक्ष पर उसके वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है। शारीरिक, संरचना, मूल प्रवृत्तियाँ, मानसिक, योग्यता, व्यावसायिक क्षमता आदि व्यक्ति के वंशानुक्रम का समान रुप से प्रभाव परिलक्षित होता है । शैक्षिक विकास की दृष्टि से वंशानुक्रम के ज्ञान के आधार पर शिक्षक अपने छात्रों का वांछित विकास कर सकता है ।

1.9.2 मानव अभिवृद्धि एवं विकास

शिक्षा मनोविज्ञान में मनुष्य की शारीरिक अभिवृद्धि और उसके शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है । इसमें मानव अभिवृद्धि एवं विकास का अध्ययन शिशु, बाल, किशोर, प्रौढ़, अवस्था के क्रम में किया जाता है। बालकों की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले विकास के ज्ञान से उनकी सामर्थ्य तथा क्षमता के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान मिलता है ।

1.9.3 वैयक्तिक विभिन्नता

संसार में कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे के पूर्णतया समान नहीं होते है । शारीरिक, सामाजिक व मानसिक आदि गुणा में व्यक्ति एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न होते है । व्यक्तिगत विभिन्नता के ज्ञान की सहायता से अध्यापक अपने शिक्षक कार्य को सम्पूर्ण कक्षा की आवश्यकताओं तथा योग्यताओं के अनुसार व्यवस्थित कर सकता है ।

1.9.4 व्यक्तित्व

शिक्षा मनोविज्ञान मानव के व्यक्तिव तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करता है । मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानव के विकास तथा उसकी शिक्षा में व्यक्तित्व की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती हे । बालक के व्यक्तित्व का संतुलित विकास शिक्षा का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है । मनोविज्ञान व्यक्तित्व की प्रकृति, प्रकारों, सिद्धान्तों, का ज्ञान प्रदान करके संतुलित व्यक्तित्व के विकास की विधियां बताता है । अत: शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्तित्व का अध्ययन करके बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करता है ।

1.9.5 विशिष्ट बालक

शिक्षा मनोविज्ञान विशिष्ट बालक के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा व्यवस्था का आग्रह करता है । तीव्र वृद्धि, मन्द बुद्धि, गूंगे बहरे अच्छे बालकों को सामान्य शिक्षा द्वारा देना असम्भव होता है अत: विशिष्ट आवश्यकता के अनुरूप व्यवस्था का आयोजन करना होता है ।

1.9.6 अधिगम प्रक्रिया

सीखने के अभाव में शिक्षा की कल्पना ही नहीं की जा सकती है । शिक्षा मनोविज्ञान सीखने के नियमों, सिद्धान्तों तथा विधियों के ज्ञान के साथ-साथ सीखने में आने वाली कठिनाईयों को समझ कर, उनको दूर करने के विभिन्न उपायों की जानकारी देती है ।

1.9.7 मानसिक स्वास्थ्य

व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य का शैक्षिक दृष्टि से विशेष महत्व होता है । मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान प्रदान करता है तथा कुसमायोजन से बचने के उपायों को खोजता है ।

1.9.8 पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ्यक्रम शिक्षा प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण तत्व है तथा पाठ्यक्रम निर्माण में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है । विभिन्न स्तरों के बालक व बालिकाओं की आवश्यकताएं, विकासात्मक विशेषताएं अधिगम शैली आदि भिन्न भिन्न होती है अत: पाठ्यक्रम निर्माण के समय इन सभी का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण होता है ।

1.9.9 शिक्षण विधियाँ

प्रभावशाली शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि प्रभावशाली विधि का चयन करके ज्ञान प्रदान किया जाएं शिक्षा मनोविज्ञान यह बताता है कि जब तक बालकों को पढ़ने के लिए प्रेरित नहीं किया जायेगा तब तक अध्यापन में सफलता मिलना मुश्किल होता है । शिक्षा मनोविज्ञान प्रभावशाली शिक्षण के लिए उपयुक्त शिक्षण विधियों का ज्ञान प्रदान करता है ।

1.9.10 निर्देशन एवं परामर्श

समय समय पर छात्रों, व्यक्तियों को शैक्षिक, व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक निर्देशन व परामर्श प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है, छात्रों को कौनसे विषय का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, कौन सा व्यवसाय चुनना चाहिए की आदि प्रश्नों के उत्तर शिक्षा मनोविज्ञान प्रदान करता हैं

1.9.11 मापन एवं मूल्यांकन

छात्रों की विभिन्न योग्यताओं, रुचियां तथा उपलब्धियां का मापन व मूल्यांकन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक होता है । इसके द्वारा छात्रों की सामर्थ्य, रुचियों तथा परिस्थितियों का ज्ञान होता है साथ ही ज्ञान किस प्रकार हस्तान्तरित हो रहा है इसका भी ज्ञान प्राप्त होता है । शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययनों में छात्रों की योग्यताओं तथा उपलब्धियों का मापन व मूल्यांकन करने वाले विभिन्न उपकरण बहुतायत से प्रयुक्त किए जाते है ।

1.9.12 शोध के क्षेत्र एवं विधियाँ

शिक्षा मनोविज्ञान में मानव व्यवहार एवं शिक्षण अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन होता है । इस हेतु इसमें शोध के क्षेत्र एवं विधियों का अध्ययन भी किया जाता है । इसके अलावा शिक्षा के जुडे प्रबन्धकों, प्राध्यापकों, प्रधानाचार्य, शिक्षकों की क्रियाओं का मापन एवं मूल्यांकन करने एवं उनको सुधार करने की विधियों की का भी अध्ययन होता हैं, जिसे क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research) कहते है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है तथा इसमें मनोविज्ञान से सम्बन्धित उन समस्त क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है जो शिक्षा प्रक्रिया का नियोजन करने, संचालन करने तथा परिवर्तन करने की दृष्टि से उपयोगी हो सकती है ।

1.10 शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान का बहुत विस्तार होने से इसके कार्यों का भी विस्तार हुआ है साथ इसकी उपयोगिता भी बढ़ी है । आज शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा जगत से जुडे सभी व्यक्तियों को उनके कार्यो में करने में सहायता करता है अत: उनके लिए बहुत उपयोगी है । उदाहरणार्थ -

1.10.1 शिक्षा आयोजकों के लिए उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान मानव के क्रमिक, वृद्धि को बताता है साथ ही विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों में अधिगम क्षमता को बताता है । अत: शिक्षा आयोजक शिक्षा मनोविज्ञान की सहायता से विभिन्न आयु वर्ग के बालकों की शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या निश्चित करते है इसके अतिरिक्त विभिन्न मानसिक क्षमता व रुचि वाले बालकों के लिए अलग प्रकार के पाठ्यक्रम तैयार करते है इतना ही नहीं शैक्षिक समस्याओं का समायोजन करने में भी शिक्षा मनोविज्ञान बहुत उपयोगी रहता है ।

1.10.2 शैक्षिक प्रबन्धकों व प्रशासकों के लिए उपयोगिता

शिक्षा जगत के प्रबन्धकों व प्रशासकों को प्रबन्ध करने व्यवस्था बनाने व उसे सुगम रुप में चलाने में शिक्षा मनोविज्ञान, बहुत अधिक सहायता करता है । प्रबन्धकों को संगठन में भर्ती करते समय यह देखना होता है कि किस कार्य के सम्पादन के लिए किस प्रकार के व्यक्ति की आवश्यकता होगी अत: शिक्षा मनोविज्ञान उपर्युक्त व्यक्तियों के चयन में उनकी सहायता करता है । इसके अतिरिक्त प्रबन्धकों व प्रशासकों को कई शैक्षिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है, शिक्षा मनोविज्ञान उन समस्याओं को समझने व उनका समाधान करने में उनकी सहायता करता है इसलिए यह शैक्षिक प्रबन्धकों व प्रशासकों के लिए उपयोगी है ।

1.10.3 प्रधानाचार्यों के लिए उपयोगी

प्रधानाचार्यों को विभिन्न प्रकार की भूमिका निर्वाह करना होता है जैसे प्रबंधक के रुप में, संगठनकर्ता के रुप और शिक्षक के रुप में । शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान उन्हें इन सभी रुपों में कार्य करने में उपयोगी होती है । इसके साथ ही शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से वह स्वयं सम्पन्न की जाने विभिन्न क्रियाओं के मापन एवं मूल्यांकन की विधियों व उसमें आवश्यक सुधार की विधियों से भी परिचित होता है । अत: शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से प्रधानाचार्य अपनी क्रियाओं में हर दम सुधार करते रहते है ।

1.10.4 शिक्षकों के लिए उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षकों के लिए निम्नलिखित कार्यो के सम्पादन में उपयोगी है -

- शिक्षा के सम्प्रत्यय को समझने में सहायक
- शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की सम्भावनाओं एवं लक्ष्य सीमा निर्धारित करने में सहायक

- शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्माण एवं चयन में सहायक
- शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन में सहायक
- शिक्षण विधियों के निर्माण एवं चयन में सहायक
- शिक्षकों को अपने आपको समझने में सहायक
- विद्यार्थियों के समझने में सहायक
- विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन में सहायक
- विद्यालय संगठन में सहायक

1.10.5 अभिभावकों के लिए उपयोगी

शिक्षा मनोविज्ञान में बालकों की शिक्षा में अभिभावकों की भूमिका को भी स्पष्ट किया गया है और इस भूमिका के निर्वाहन की विधियों को भी स्पष्ट किया गया है । इसके अध्ययन से अभिभावक इससे अवगत होते है कि बालकों की विशिष्ट शिक्षा उनकी अपनी बुद्धि, रुचि, अभिक्षमता रुझान पर निर्भर करती है । अत: वह अपने बच्चों को उनकी बुद्धि, अभिक्षमता रुचि, एवं रुझान के अनुसार ही शिक्षा के विशिष्ट क्षेत्रों की ओर प्रवृत करते है । इसके ज्ञान से वह अपने बालकों के प्रति व्यवहार को भी सही दिशा देते है ।

सारांश रुप से यह कहा जा सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षा से जुडे सभी व्यक्तियों शिक्षा आयोजकों, शिक्षा प्रचारकों, प्रबन्धकों, प्रधानाचार्यों और शिक्षकों सभी के लिये उपयोगी है । विशेषकर शिक्षकों के लिए अधिक उपयोगी है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. संक्षिप्त में शिक्षा मनोविज्ञान की विशेषता बताइये ।
2. विद्यार्थी के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की क्या उपयोगिता है ?

1.11 सारांश

1 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा एक अनवरत चलने वाली सौद्देश्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उनके ज्ञान, कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार एक सुसंस्कृत सभ्य एवं श्रेष्ठ नागरिक का निर्माण किया जाता है । इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों का विकास होता है ।

2 मनोविज्ञान का अर्थ

मनोविज्ञान प्राणियों के व्यवहार मानसिक तथा दैहिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है शाब्दिक अर्थ आत्मा का अध्ययन करना मनोविज्ञान कहलाता है मनोविज्ञान के अर्थ में कई परिवर्तन हुये वह संक्षेप में इस कार है -

- आत्मा के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान
- मन के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान
- चेतना के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान
- व्यवहार के विज्ञान के रुप में मनोविज्ञान

3 मनोविज्ञान, शिक्षा में सम्बंध

शिक्षा मनुष्य के ज्ञान, कला, कौशल में वृद्धि और उसके व्यवहार में परिवर्तन करने की प्रक्रिया है और मनोविज्ञान मनुष्य के व्यवहार के कारक प्रेरक एवं नियन्त्रक तत्वों के अध्ययनों का विज्ञान है । इन क्षेत्रों का सम्बन्ध मनुष्य के वांछित व्यवहार करने की प्रकिया से है । अत: शिक्षा व मनोविज्ञान क्षेत्र में गहरा सम्बन्ध होता हे

4 मनोविज्ञान का शिक्षा पर प्रभाव

शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा की सभी समस्याओं का समाधान मानव व्यवहार के आधार पर करता है । अत: इसके अध्ययन क्षेत्र एवं विषयवस्तु के रुप में अभिव्यक्त करता है ।

- मनोविज्ञान और शिक्षा का समप्रत्यय
- मनोविज्ञान और शिक्षा के उद्देश्य
- मनोविज्ञान और शिक्षा का पाठ्यक्रम
- मनोविज्ञान और शिक्षण विधियां
- मनोविज्ञान और अनुशासन
- मनोविज्ञान और शिक्षक
- मनोविज्ञान और शिक्षार्थी
- मनोविज्ञान और विद्यालय
- मनोविज्ञान और शिक्षा की अन्य समस्याएं

5 शिक्षा का मनोविज्ञान पर प्रभाव

- शिक्षा द्वारा मनोविज्ञान का अध्ययन सम्भव होता है ।
- शिक्षा द्वारा मनोविज्ञान का ज्ञान सुरक्षित रखा जा सकता है ।
- शिक्षा मनोविज्ञान की विषय वस्तु में वृद्धि एवं विकास

6 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षणिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है दूसरे शब्दों में शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक व तर्क संगत ढंग से समाधान करने के लिये मनोविज्ञान के आधारभूत सिद्धांतों का उपयोग करना ही शिक्षा मनोविज्ञान है ।

7 शिक्षा मनोविज्ञान की विशेषताएं

- शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य केन्द्र मानव व्यवहार है ।
- शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा प्रक्रिया को सरल, सुगम व द्रुत बनाकर शिक्षण अधिगम का मार्ग प्रशस्त करती हैं ।
- शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन ।
- शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत सामान्य मनोविज्ञान के मूलभूत सिद्धान्तों तथा विधियों का उपयोग होता है ।
- शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है ।

8 शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति

यह एक व्यवृहत मनोविज्ञान है जिसमें मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों एवं व्यवहार का अध्ययन किया जाता है साथ ही व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित कर उचित दिशा

प्रदान की जाती है । इसके द्वारा स्थापित सिद्धांत व नियम वस्तुनिष्ठ, सार्वभौमिक और प्रामाणिक होते है । उन्हें प्रयोगों द्वारा सत्यापित किया जाता है । इसलिए यह पूर्ण रुप से शुद्ध विज्ञान है ।

9 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र

आधुनिक शिक्षा मनौविज्ञानिकों के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान का फैलाव मुख्यत: निम्न क्षेत्रों की ओर है-

- वंशानुक्रम
- मानव अभिवृद्धि एवं विकास
- वैयक्तिक विभिन्नता
- व्यक्तित्व
- विशिष्ट बालक
- अधिगम प्रक्रिया
- मानसिक स्वास्थ्य
- पाठ्यक्रम निर्माण
- शिक्षण विधियाँ
- निर्देशन एवं परामर्श
- मापन एवं मूल्यांकन
- शोध क्षेत्र एवं विधियाँ

10 शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता शिक्षा जगत से जुडे हुये निम्नलिखित व्यक्तियों को होती है-

- शिक्षा आयोजकों के लिए उपयोगी
- शैक्षिक प्रबन्धकों व प्रशासकों के लिए उपयोगी
- प्रधानाचार्यो के लिये उपयोगी
- शिक्षकों के लिए उपयोगी
- अभिभावकों के लिए उपयोगी

1.12 मूल्यांकन प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1 शिक्षा और मनोविज्ञान में क्या सम्बन्ध है ? समझाइये ।

2 शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति स्पष्ट कीजिए और उसके क्षेत्र का वर्णन कीजिए ?

3 शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता का वर्णन कीजिए ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1 शिक्षा मनोविज्ञान की क्या प्रकृति है ?

2 मनोविज्ञान और शिक्षा के अर्थ बताइये ?

3 शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक के लिये क्यों उपयोगी है ?

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1 गुप्ता, एस.पी. और गुप्ता अल्का, उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण: 2007, पृष्ठ सं. 11-2*-+ ।

2 लाल, बिहारी रमन, जोशी चन्द्र सुरेश,. शिक्षा मनोविज्ञान एवं मापन, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ, प्रथम संस्करण, 2005, पृष्ठ संख्या 11-24 ।

3 अरोड़ा, रीता, एवं मारवाह सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान एवं सांख्यिकी, शिक्षा प्रकाशन जयपुर, 2006, पृष्ठ संख्या 1-21 ।

4 सिन्हा, एस. एच. एवं शर्मा रचना, शिक्षा मनोविज्ञान, एटलाटिंक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या 10-33 ।

5 माथुर, एस. एस. शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2004, पृष्ठ संख्या 1-44 ।

6 Mangal S.K. Educational Psychology Prentice hall of India, New Delhi, 2002, पृष्ठ 11-18 ।

इकाई 2

अभिवृद्धि एवं विकास : अर्थ, विशेषताएँ और प्रभावित करने वाले कारक

(Growth and Development-Meaning, Characteristics and Factors Effecting)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अभिवृद्धि का अर्थ

2.3 अभिवृद्धि एवं विकास मे अन्तर

2.4 अभिवृद्धि की दशाएं

2.5 विकास का अर्थ

2.6 विकास के सिद्धान्त

2.7 विकास को जैव-मनोवैज्ञानिक अवधारणा

2.8 विकास की विशेषताएँ

2.9 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

2.9.1 वंशानुक्रम का अर्थ एवं परिभाषाएँ

2.9.1.1 वंशानुक्रम-एक प्रक्रिया

2.9.1.2 वंशानुक्रम के नियम

2.9.1.3 वंशानुक्रम का बालक पर प्रभाव

2.9.2 वातावरण का अर्थ

2.9.2.1 बालक पर वातावरण का प्रभाव

2.9.2.2 वंशानुक्रम एवं वातावरण मे सम्बंध

2.9.2.3 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

2.10 विकास के अध्ययन की पद्धतियाँ

2.11 विकास की अवस्थाएं

2.12 विकास के विभिन्न आयाम

2.13 उपयुक्त अभिवृद्धि एवं विकास के लिए सुझाव

2.14 सारांश

2.15 मूल्यांकन प्रश्न

2.16 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- अभिवृद्धि एवं विकास के सम्प्रत्यय को समझेंगे ।
- अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर कर सकेंगे ।
- विकास के विभिन्न सिद्धान्तों को समझ सकेंगे ।
- विकास की विभिन्न विशेषताओं को जान सकेंगे ।
- विकास को प्रभावित करने वाले वंशानुक्रम एवं वातावरण को समझ सकेंगे ।
- विकास के अध्ययन की विभिन्न अध्ययन पद्धति को समझ सकेंगे ।
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जान सकेंगे ।
- विकास के विभिन्न आयामों के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना

मानव विकास के इतिहास मे ज्ञान-विज्ञान की अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ है । आज के युग में ज्ञान-विज्ञान के विकसित होने के कारण मानव विकास को लिपिबद्ध कर लिया गया हैं । मनोविज्ञान भी व्यक्ति के गर्भ में आने से लेकर मृत्यु तक के विकास के सम्बंध में अनेक नवीन पहलुओं को प्रस्तुत करता है जिससे नवीन उपलब्धियाँ होती हैं ।

गर्भाधान से लेकर जन्म तक व्यक्ति में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं । जन्म के बाद धीरे-धीरे वयस्क होने तक भी उसमें अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं । जीवन पर्यन्त विकास का यह क्रम चलता रहता हैं ।

व्यक्ति का जन्म, विकास एवं मृत्यु सदैव ही मानव अध्ययन के लिए जिज्ञासा बने रहें। विकास का अध्ययन मानव व्यवहार की पूर्णता जानने के लिए होने लगा ।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह सफलता प्राप्त करने के लिए विकास की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करें । इन अवस्थाओं के कारण विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार वह अपनी कार्य प्रणाली को विकसित करने का प्रयास करें । इसी को इंगित करते हुए एल.ई.टेलर ने कहा है- मनुष्य में, जो कुछ वह अभी है, उससे बदलकर कुछ भिन्न हो जाने की जीवन के प्रत्येक क्षण प्रक्रिया चलती रहती है उसकी समस्त शैली बदल रही है और एक ही समय मे शैली एवं परिवर्तन के तथ्य, दोनों को ध्यान मे रखना आवश्यक है । किसी विशेष अवस्था में शैली क्या होगी, यह पहली शैली तथा उस व्यक्ति पर उसके वर्तमान वातावरण द्वारा डाले गए प्रभावों पर निर्भर है । साथ ही उसकी अपनी अनुक्रियाओं पर भी निर्भर है, उन बातों के प्रति भी जो पहले हो चुकी है तथा प्रभावों के प्रति भी जो अब उस पर पड़ रहे हैं ।

कोई भी व्यक्ति किसी भी हद तक क्रमिक अवस्थाओं मे अपनी जीवन शैली का निर्माण अपनी पसन्दों तथा निर्णयों द्वारा करता हैं । एक बार चुनाव होने पर तथा इस चुनाव का प्रमुख विकसित हो रहे ढ़ांचे पर पड़ चुकने के बाद वह कभी भी मिटाया नहीं जा सकता ।

विकास (Development) एवं अभिवृद्धि (Growth) कोई पृथक तथ्य नहीं है दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं ।

2.2 अभिवृद्धि एवं विकास का अर्थ

अभिवृद्धि एवं विकास ये दोनों शब्द प्राय: बिना कोई भेदभाव किये पर्यायवाची रूप में काम मे लाये जाते है । दोनों यह प्रकट करते है कि गर्भाधान के समय से किसी विशेष समय तक किसी प्राणी में कितना कुछ परिवर्तन आया हैं । इस तरह से अभिवृद्धि और विकास दोनों शब्दों का प्रयोग बालक में आयु के बढ़ने के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों के लिए किया जाता हैं ।

यहां पर हमने "अभिवृद्धि" (Growth) और "विकास" (Development) दो शब्दों का प्रयोग किया हैं । अभिवृद्धि का तात्पर्य केवल आकार बढ़ने में केवल शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, भार मे वृद्धि के साथ-साथ शरीर के विभिन्न बाह्य अंगो जैसे हाथ, पैर, धड़ और आन्तरिक अंगो जैसे हृदय, मस्तिष्क इत्यादि का बढ़ना शामिल हैं । इस अभिवृद्धि को विभिन्न प्रकार की इकाईयों (Units) में मापा जा सकता हैं ।

दूसरी ओर विकास का तात्पर्य शरीर के विभिन्न अंगो के रूप और परस्पर सम्बंध में परिवर्तन से है । विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं मे से गुजरती है जिससे उसका सम्पूर्ण विकास होता हैं । विकास से व्यवहार में परिपक्वता (Maturity) आती हैं । परिपक्वता का तात्पर्य उस अभिवृद्धि या विकास से है जो किसी अनर्जित व्यवहार के दिखायी देने से पहले आवश्यक होती है अथवा जिसके बाद ही किसी विशेष प्रकार का व्यवहार सीखा जा सकता हैं ।

हालांकि अधिकांश लेखकों द्वारा दोनों शब्दों का प्रयोग साधारणतया एक ही अर्थ में किया जाता हैं । परन्तु अगर बारीकी से देखा जाए तो अभिवृद्धि एवं विकास के बीच कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता हैं ।

हरलॉक के शब्दों में - "विकास अभिवृद्धि तक ही सीमित नही हैं । इसके बजाय, इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता हैं । विकास के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताऐं और नवीन योग्यताये प्रकट होती हैं ।"

2.3 अभिवृद्धि एवं विकास मे अन्तर

अभिवृद्धि (Growth)	विकास (Development)
अभिवृद्धि शब्द परिमाण सम्बंधी (Quantitive Changes) परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है । जैसे बच्चों के बड़े होने के साथ आकार लम्बाई, ऊँचाई, और भार आदि में होने वाले परिवर्तन को अभिवृद्धि कहते हैं ।	विकास में ऐसे परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिससे बालक की कार्यक्षमता कार्यकुशलता और व्यवहार मे प्रगति होती हैं ।
अभिवृद्धि, विकास रूपी सम्पूर्ण प्रक्रिया का एक चरण है ।	विकास शब्द अपने आप मे एक विस्तृत अर्थ रखता हैं । यह व्यक्ति में होने वाले सभी परिवर्तनों को प्रकट करता हैं ।
अभिवृद्धि शब्द व्यक्ति के शरीर के किसी भी अवयव तथा व्यवहार के किसी भी पहलू में	विकास किसी एक अंग प्रत्यंग में अथवा व्यवहार के किसी एक पहलू में होने वाले

होने वाले परिवर्तनों को प्रकट कर सकता हैं ।	परिवर्तनों को नही बल्कि व्यक्ति में आने वाले सम्पूर्ण परिवर्तनों को समुच्चय रूप में व्यक्त करता हैं ।
अभिवृद्धि की क्रिया आजीवन नहीं चलती । बालक द्वारा परिपक्वता ग्रहण करने पर यह समाप्त हो जाती हैं ।	विकास एक सतत् प्रक्रिया (Continuous Process) हैं ।
अभिवृद्धि के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन बिना कोई विशेष प्रयास किये दृष्टिगोचर हो सकते है इन्हें भली भाँति मापा जा सकता हैं ।	विकास शब्द कार्यक्षमता और व्यवहार में आने वाले गुणात्मक परिवर्तनों (Qualitative changes) को भी प्रकट करता है । इन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष रूप में मापना कठिन होता हैं । इन्हें केवल अप्रत्यक्ष तरीकों से मापा जा सकता हैं । जैसे बालक के व्यवहार का निरीक्षण करना इत्यादि
अभिवृद्धि के साथ-साथ सदैव विकास होना भी आवश्यक नहीं हैं । मोटापे के कारण एक बालक के भार में वृद्धि हो सकती है परन्तु इस वृद्धि से उसकी कार्य क्षमता एवं कार्यकुशलता में कोई वृद्धि नही होती है । यानि अभिवृद्धि विकास को साथ लेकर नही चलती है।	इसी प्रकार विकास भी अभिवृद्धि के बिना सम्भव हो सकता है । कई बार यह देखा जाता है कि कुछ बच्चों की ऊंचाई आकार एवं भार में समय गुजरने के साथ-साथ कोई विशेष परिवर्तन नही दिखाई देता परन्तु उनकी कार्यक्षमता तथा शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक योग्यता मे बराबर प्रगति होती रहती हैं।

उपरोक्त वर्णित अन्तर के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर हैं ।

2.4 अभिवृद्धि की दशाएँ

अभिवृद्धि निम्नलिखित दशाओं पर निर्भर करती है -

2.4.1 आनुवंशिकता -

बालक की अभिवृद्धि में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारक या दशा उसकी अनुवांशिकता हैं। मानव शिशु का लिंग, आकार, रंग, नाक, नक्शा, शीलगुण इत्यादि उसकी आनुवंशिकता पर निर्भर होते है । इसलिए भावी माता-पिता अपने स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान रखकर भावी सन्तति की आनुवंशिकता को प्रभावित करके उसकी अभिवृद्धि मे योगदान दे सकते हैं ।

2.4.2 भोजन -

गर्भावस्था में जीव माता से ही अपना भोजन प्राप्त करता है । इसलिए गर्भवती स्त्री को सन्तुलित भोजन (Balanced Diet) को ग्रहण करना चाहिए । जन्म के पश्चात् शिशु को माता का दूध दिया जाना चाहिए । उसके साथ शनैः शनैः सुपाच्य भोजन (Digestive Food) प्रदान किया जाना चाहिए ।

किशोरावस्था में मानव प्राणी की सबसे अधिक अभिवृद्धि होती है अत: इस अवस्था में खान-पान पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए ।

2.4.3 अन्त: स्त्रावी ग्रन्थियों के न्यासर्ग

बालक की शारीरिक और मानसिक बुद्धि मे विभिन्न अन्त: स्त्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले न्यासर्गो का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान होता हैं । बालक की अभिवृद्धि पर पोष ग्रन्थि (Pituitary Gland) थॉयराइड ग्रन्थि, (Thyroid Gland), और यौन (Sex Gland) ग्रन्थियों के न्यासर्गो का विशेषरूप से प्रभाव पड़ता हैं । शरीर में इनकी कमी या अधिकता का प्रभाव शरीर के विकास पर पड़ता हैं ।

2.4.4 व्यायाम -

अभिवृद्धि बालक की वृद्धि में विभिन्न प्रकार के खेलों एवं व्यायामों का बड़ा महत्व हैं । इनमें जो शारीरिक क्रियाएँ होती है वो शारीरिक अभिवृद्धि की गति बढ़ाती हैं । अत: बालकों को समुचित विकास के लिए किसी न किसी प्रकार का व्यायाम अवश्य करना चाहिए ।

उपरोक्त दशाएँ अभिवृद्धि पर अपना प्रभाव दिखाती हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. अभिवृद्धि से आप क्या समझते है।
2. बालक की अभिवृद्धि को प्रभावित करने वाली दशाएँ कौनसी है।

2.5 विकास का अर्थ

विकास का अभिप्राय बढ़ना नही है । विकास का अर्थ परिवर्तन हैं परिवर्तन इस बात पर आधारित होता है कि वह किस प्रकार क्रम का निर्धारण करता हैं ।

गैसल (Gassel) के अनुसार - "विकास सामान्य प्रयत्न से अधिक महत्व की चीज हैं। विकास का अवलोकन किया जा सकता है एवं मापन भी किया जा सकता हैं इसका मापन तथा मूल्यांकन तीन रूपों में हो सकता हैं - (1) शरीर निर्माण (Anotomic), (2) शरीर शास्त्रीय (Physiologic), (3) व्यावहारिक (Behavioural) व्यवहार ।

चूंकि परिवर्तन एक प्रक्रिया है जो हर समय चल रही है । अत: प्रत्येक क्षण विकास भी हो रहा हैं।

हरलॉक (Hurlock) :- "विकास बड़े होने तक ही सीमित नही है । वस्तुत: यह तो व्यवस्थित तथा समानुगत प्रगतिशील क्रम है जो परिपक्वता प्राप्ति में सहायक होता हैं ।" [2]

विकास चिन्तन का मूल हैं । यह एक बहुमुखी क्रिया है और इसमें केवल शरीर के अंगो के विकास का ही नहीं बल्कि सामाजिक, सांवेगिक अवस्थाओं मे होने वाले परिवर्तनों को भी सम्मिलित किया जाता हैं ।

जेम्स ड्रेवर (James Drever) :-

" विकास वह दशा है जो प्रगतिशील परिवर्तन के रूप मे प्राणी में सतत् रूप से व्यक्त होती हैं । यह प्रगतिशील परिवर्तन किसी भी प्राणी मे भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होता हैं । यह विकास तन्त्र को सामान्य रूप मे नियंत्रित करता है । यह प्रगति का मानदण्ड है और इसका प्रारम्भ शून्य से होता हैं ।"[3]

हेनरी सीसल वील्ड

(i) विकास के कारण और उसकी प्रक्रिया, किसी क्रिया में निहित प्रक्रिया, (ii) मानव मस्तिष्क से सभ्यता की, प्राणी के जीवन के विकास की अवस्था या विकास की वह प्रक्रिया जो अभिवृद्धि, प्रसार आदि मे योग देने की स्थिति में हो (iii) विकास की प्रक्रिया का परिणाम जो अनेक कारण, दशायें, वर्ग भेद आदि सामाजिक के रूप मे प्रकट होते हैं ।"4

Gessel-"Development is more than a concept. It can be observed appraised and to some extent even measured in three major manifestations- (i) Anotomic (ii) physiologic (iii) Bheavioural...behaviour signs, however, constitue a most comprehensive index of developmental of developmental status and developmental potentials.

Hurlock-"Development is not limited to growing larger. Instead, it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity. Development results in new characteristics and abilities on the part of individual."

2.6 विकास के सिद्धान्त

व्यक्ति विशेष मे विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन कुछ विशेष सिद्धान्तों पर ढ़ले हुए प्रतीत होते हैं । इन सिद्धान्तों को विकास के सिद्धान्त कहा जाता हैं ।

गैरीसन तथा अन्य (Garrison & Others) (P.45) के अनुसार "जब बालक, विकास की एक अवस्था से दूसरी मे प्रवेश करता है तब हम उसमें कुछ परिवर्तन देखते हैं । अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि ये परिवर्तन निश्चित सिद्धान्तों के अनुसार होते है । इन्ही को विकास के सिद्धान्त कहॉ जाता हैं । "

ये सिद्धान्त निम्नलिखित है :-

2.6.1 निरन्तर विकास का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रक्रिया अविराम गति से निरन्तर चलती रहती है। परन्तु यह गति कभी मन्द या फिर कभी तीव्र हो सकती हैं । जैसे-बालक के जन्म के प्रथम तीन चार वर्ष उसके विकास की प्रक्रिया तीव्र रहती है और उसके बाद मन्द हो जाती है इसी प्रकार मानव शरीर के कुछ भागों का विकास तीव्रगति से और कुछ का मन्द गति से होता है परन्तु विकास की प्रक्रिया अवश्य चलती रहती हैं ।

स्किनर (Skinner) के शब्दों मे - "विकास प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त केवल इस तथ्य पर बल देता है कि शक्ति मे कोई आकस्मिक परिवर्तन नही होता हैं ।"

2.6.2 विकास की गति एकसी नही होती

विकास की प्रक्रिया बराबर चलती रहती है, परन्तु इसकी गति सब अवस्थाओं में एक जैसी नही रहती हैं । तथा विभिन्न व्यक्तियों के विकास की गति में भिन्नता पाई जाती है ।

2.6.3 विकास की दिशा का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार बालक का विकास सिर से पैर की दिशा में होता है जैसे बालक अपने जीवन के प्रथम सप्ताह में केवल अपने सिर को उठा पाता हैं । यानि विकास की प्रक्रिया पूर्व निश्चित दिशा में आगे बढ़ती हैं । जैसे

(1) पहले 3 माह मे हाथों की गति पर नियंत्रण सीखता ।

(2) उसके बाद 6 माह मे हाथों की गति पर अधिकार करता ।

(3) माह मे स्वयं बैठने तथा चलने लगता हैं ।

इस प्रकार विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती हैं ।

2.6.4 विकास के क्रम का सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के अनुसार बालक का गमक (motor) और भाषा सम्बंधी, आदि विकास एक निश्चित क्रम मे होता हैं । **शर्ले गेसेले, पियाजे एमिंस (Shirly, Gesell, Piaget, Amis)** आदि की परीक्षाओं ने यह बात सिद्ध कर दी है । उदाहरण - जन्म के समय वह केवल रोना जानता हैं । 3 माह मे वह गले से विशेष प्रकार की आवाज निकालने लगता हैं । 6 माह मे वह किलकारियाँ करने लगता हैं । 8 माह मे वह छोटे-छोटे शब्द मा, पा, मम् आदि बोलना सीखता हैं । यानि विकास एक क्रम मे होता हैं ।

2.6.5 एकीकरण का सिद्धान्त -

विकास की प्रक्रिया एकीकरण के सिद्धान्त का पालन करते हुए आगे बढ़ती हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार बालक पहले सम्पूर्ण अंग को फिर अंग के भागो का चलाना सीखता हैं । उसके बाद, वह उन भागों मे एकीकरण करना सीखता है, उदाहरणार्थ - वह पहले पूरे हाथ को, फिर अंगुलियों को और फिर हाथ एवं उंगलियों को एक साथ चलाना सीखता हैं ।

कुपुस्वामी (Kuppuswamy) (P.49) के अनुसार - " विकास में पूर्ण से अंगों की ओर, एवं अंगो से पूर्ण की ओर गति निहित रहती हैं । विभिन्न अंगों का एकीकरण ही गतियों की सरलता को सम्भव बनाता हैं । "

2.6.6 व्यैक्तिक विभिन्नता का सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक बालक और बालिका के विकास का अपना स्वयं का स्वरूप होता हैं । विकास के स्वरूप में व्यैक्तिक भिन्नता (Individual differences) पाई जाती हैं । उदाहरण के तौर पर एक बालक और एक बालिका या फिर एक ही आयु के दो बालकों, दो बालिकाओं के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक आदि विकास में व्यैतिक भिन्नताओं की उपस्थिति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं ।

स्किनर (Skinner) ने कहा है- "विकास के स्वरूपों मे व्यापक व्यैक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं । "

2.6.7 परस्पर सम्बंध का सिद्धान्त -

विकास की सभी दिशाएँ - शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि - एक दूसरे से परस्पर सम्बंधित हैं । इनमे से किसी भी एक दिशा में होने वाला विकास अन्य सभी दिशाओं मे होने वाले विकास को पूरी तरह प्रभावित करने की क्षमता रखता हैं । जब बालक का शारीरिक विकास के साथ-साथ उसकी रूचियों, ध्यान के केन्द्रीयकरण और व्यवहार मे परिवर्तन होते हैं । साथ-साथ उसमें गामक और भाषा सम्बंधी विकास भी होता हैं । यही कारण है कि शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़े बालक संवेगात्मक सामाजिक और बौद्धिक विकास में उतने ही पीछे रह जाते हैं ।

2.6.8 सामान्य व विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का सिद्धान्त-

विकास की सभी क्रियाओं मे विशिष्ट क्रियाओं से पहले उनके सामान्य रूप के दर्शन होते हैं । यानि बालक का विकास सामान्य प्रतिक्रियाओं की ओर होता हैं । उदाहरण - शिशु अपने हाथों से कुछ वस्तु पकड़ने से पहले इधर-उधर यूं ही हाथ मारने या फैलाने की चेष्टा करता हैं । यानि शिशु अपने किसी एक अंग का संचालन करने से पूर्व अपने शरीर का संचालन करता हैं । इसी तरह शुरू मे एक नवजात शिशु के रोने और चिल्लाने मे उसके सभी अंग-प्रत्यंग भाग लेते हैं । परन्तु बाद में विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप यह क्रिया से उसके आंखों और वाक तन्त्र तक सीमित हो जाती हैं । भाषा विकास मे भी शिशु विशेष शब्दों से पहले सामान्य शब्द ही सीखता हैं । पहले सभी पुरुषों का "पापा"- "नाना" इत्यादि शब्दों से सम्बोधित करता है, इसके पश्चात् ही केवल अपने पिता को "पापा" कह कर सम्बोधित करना सीखता हैं ।

हरलॉक - "विकास की सब अवस्थाओं मे बालक की प्रतिक्रियायें विशिष्ट बनने से पूर्व सामान्य प्रकार की होती है । "

2.6.9 विकास क्रम की एकरूपता -

विकास की गति एक जैसी न होने तथा पर्याप्त वैयक्तिक अन्तर पाए जाने पर भी विकास क्रम मे कुछ एकरूपता के दर्शन होते हैं । इस क्रम में एक ही जाति विशेष के सभी सदस्यों में कुछ एक जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं ।

हरलॉक - "प्रत्येक जाति, चाहे वह पशु जाति हो या मानव जाति अपनी जाति के अनुरूप विकास के प्रतिमान का अनुसरण करती हैं ।" उदाहरणार्थ संसार के प्रत्येक भाग में मानव जाति के शिशुओं के विकास प्रतिमान एक ही है और उसमें किसी प्रकार का अन्तर होना सम्भव नहीं हैं।

2.6.10 वंशानुक्रम व वातावरण की अन्त: क्रिया का सिद्धान्त -

बालक के विकास को किसी स्तर पर वंशानुक्रम और वातावरण की संयुक्त देन माना जाता हैं । विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम जहां बुनियाद का कार्य करता है वहां वातावरण इस बुनियाद पर बनाए जाने वाले व्यक्तित्व सम्बन्धी भवन के लिए आवश्यक सामग्री एवं वातावरण जुटाने में सहयोग देता हैं । इस प्रकार बालक का विकास न केवल वंशानुक्रम के कारण और न केवल वातावरण के कारण, वरन दोनों की अन्त: क्रिया के कारण होता हैं ।

स्किनर - " यह सिद्ध किया जा चुका है कि वंशानुक्रम उन सीमाओं को निश्चित करता है, जिनके आगे बालक का विकास नहीं किया जा सकता है । उसी प्रकार, यह भी प्रमाणित किया जा चुका हैं कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में दूषित वातावरण, कुपोषण या गम्भीर रोग जन्मजात योग्यताओं को कुंठित या निर्बल बना सकते हैं । "

2.6.11 विकास लम्बवत सीधा न होकर वर्तुलाकार होता हैं -

बालक का विकास लम्बवत सीधा न होकर वर्तुलाकार (spiral) होता हैं । वह एक सी गति से सीधा चल कर विकास को प्राप्त नहीं होता, बल्कि बढ़ते हुए पीछे हटकर अपने विकास को परिपक्व और स्थायी बनाते हुए (वर्तुलाकार आकृति की तरह) आगे बढ़ता हैं । किसी एक अवस्था में तेजी से आगे बढ़ते हुए उसी गति से आगे नही जाता हैं, बल्कि अपनी विकास की गति को धीमा करते हुए आगे के वर्षों में विश्राम लेता हुआ प्रतीत होता है ताकि प्राप्त विकास को स्थायी रूप दिया जा सके । यह सब करने के पश्चात् ही वह आगामी वर्षों में फिर कुछ आगे बढ़ने की चेष्टा करता हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विकास का क्या अर्थ हैं?
2. विकास क्यों लम्बवत् सीधा न होकर वर्तुलाकार हैं? स्पष्ट कीजिए ।

2.7 विकास की जैव-मनोवैज्ञानिक अवधारणा

विकास के विषय मे विद्वानों ने अनेक धारणाएं व्यक्त की हैं । बालक के विकास की प्रक्रिया मे विद्वानों ने जैव-मनोवैज्ञानिक धारणा का विकास किया हैं । व्यक्ति केवल हाडमांस का पुतला ही नहीं बल्कि वह मन, आत्मा, चेतना एवं व्यवहार का सम्मिलित रूप हैं ।

एलिजाबेथ हरलॉक तथा गेसेल ने जैव मनोवैज्ञानिक अवधारणा की ओर ही संकेत किया हैं । यह धारणा निम्न दो तथ्यों पर आधारित हैं :-

1 **शारीरिक (Phsyiological)**:- व्यक्ति के शरीर का आन्तरिक एवं बाह्य विकास इसमें निहित हैं! गर्भावस्था के शिशु का विकास इसी के अन्तर्गत आता हैं । और जन्म के पश्चात् से लेकर प्रौढ़ावस्था तक शरीर के विभिन्न अंगों का विकास होता हैं ।

2 **मनोदैहिक एवं सामाजिक (Pscho-Physical and Social)**:- विकास का यह पक्ष समग्रवादी विचारधारा पर आधारित हैं । गेसले ने अभिवृद्धि (Growth) को विकास से अलग बताया हैं, तथा विकास को मनोदैहिक तथा सामाजिक रूप में अभिव्यक्त किया हैं ।

इरिक्सन (Erickson) ने अभिवृद्धि को विकास का मूल बताया हैं लेकिन उनके अनुसार शरीर के आकार मे वृद्धि मात्र ही विकास नहीं है जैसे-जैसे जैविक विकास होता है उसके साथ-साथ मनो सामाजिक स्थिति भी बदलती हैं । इसमें व्यक्ति का व्यवहार उसके सामाजिक स्वरूप का निर्धारित करता हैं । मनोविकास की आठ अवस्थाएं इरिक्सन ने बताई हैं । जिसमें से प्रत्येक व्यक्ति को गुजरना पड़ता हैं ।

– विश्वास बनाम अविश्वास

- स्वायत्तता बनाम. लज्जा एवं शक
- पहल बनाम आस्था
- अध्यवसाय बनाम हीन भावना
- पहचान बनाम भूमिका अस्तव्यस्तता
- घनिष्ठता बनाम एकाकीपन
- जननात्मकता बनाम एकाकीपन
- अहं सम्पूर्णता बनाम निराश

इरक्सिन ने विकास की धारणा मे उन सभी तत्वों का समावेश किया हैं, जो मनुष्य को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं । उनके अनुसार विकास का रूख किसी एक तरफ न होकर अनेक दिशाओं मे होता हैं यह एक बहु कोणीय दृष्टिकोण हैं । विकास में बालक की सामाजिकता विकास की ओर अग्रसर होती हैं ।

2.8 विकास की विशेषताएँ

विकास की प्रक्रिया अपनी कुछ विशेषताओं को लेकर आगे बढ़ती है और उनके आधार पर मार्ग प्रदर्शन की सम्भावनाएं हो जाती हैं । विकास प्रक्रिया के दौरान ये विशेषताएँ दिखाई देती हैं -

2.8.1 आकार तथा भार -

विकास की प्रक्रिया में शारीरिक वृद्धि के समय बालक के आकार तथा भार में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता हैं । जैसे-जैसे शरीर के आकार में वृद्धि होती है उसका वजन (Weight), कद (Height) मे वृद्धि होती हैं । बालक के आन्तरिक अंगो (Internal Parts) ऑते, हृदय, फेफड़े इत्यादि मे भी वृद्धि होती हैं । इसके साथ ही उसका मानसिक विकास भी होता जाता हैं ।

2.8.2 अनुपातिक परिवर्तन -

विकास की प्रक्रिया के मध्य बालक के शारीरिक विकास में आनुपातिक परिवर्तन होता हैं । बालक के मानसिक विकास मे भी आनुपातिक परिवर्तन स्पष्ट दिखलाई पड़ता हैं । उस के साथ-साथ बालक रूचि (Interest), योग्यता (ability), क्षमता (Capacity), कार्यकुशलता (Efficiency), मे भी आनुपातिक परिवर्तन होता !

2.8.3 रूपरेखा मे परिवर्तन -

जैसे-जैसे विकास की प्रक्रिया चलती है उसके साथ-साथ बालक की शारीरिक रूपरेखा में परिवर्तन होते रहते हैं । ये परिवर्तन होते हैं । जैसे - छाती (Chest), जांघ (thigh), दांत (Tooth) इत्यादि । इसी प्रकार चलना,रेंगना (Crawling), स्वाद (Taste), घ्राण (Listening) शक्ति आदि मे भी परिवर्तन होते रहते हैं ।

2.8.4 नवीन रूपरेखा ग्रहण करना -

विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप बालक के विकास की पुरानी रूपरेखा समाप्त होती है और उसके स्थान पर बालक का शरीर नवीन रूपरेखा ग्रहण करने लगता हैं । उसका शारीरिक एवं मानसिक स्वरूप नवीन रूप से उभरने लगता हैं । जैसे यौन विशेषताओं का उभरना इत्यादि।

2.8.5 विकास की भविष्यवाणी -

विकास का स्वरूप क्या होगा ? विकास की गति कैसी होगी ? इन सबके बारे मे घोषणा करना सम्भव हैं । बालक के विकास की गति को ध्यान में रखते हुए भावी योजना का निर्माण आसानी से किया जा सकता हैं ।

2.8.6 विकास का निश्चित प्रतिमान

विकास का प्रारूप निश्चित होता हैं । देखने में भले ही विकास कई बार अव्यवस्थित सा प्रतीत होता हैं, परन्तु वह निश्चित क्रम मे ही होता हैं । इसलिए गैसले ने इसे प्रकृति का नियम माना हैं ।

2.8.7 विकास मे विशिष्टताएँ होती है

विकास की प्रत्येक अवस्था में कुछ शीलगुणों (Traits) का विकास होता है । फील्ड मैन (Fieldman) के अनुसार - "मानव जीवन अनेक अवस्थाओं में गुजरता हैं, मानव जीवन गर्भीय अवस्था से किसी भी अवस्था में कम नही हैं । प्रत्येक अवस्था में प्रभावशाली विशेषतायें उभरती हें, उनमें एकता तथा वैशिष्ट्य पाया जाता हैं ।"

उपरोक्त वर्णन के आधार पर निष्कर्ष के रूप मे निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते है

- विकास एक सतत् क्रिया हैं ।
- विकास की दर में भिन्नता पाई जाती हैं ।
- विकास का निश्चित स्वरूप होता हैं ।
- विकास सामान्य से विशेष की ओर होता हैं ।
- विकास प्रकृति द्वारा निर्धारित क्रम से होता हैं ।
- विकास के अधिकांश शीलगुण (Traits) पारस्परिक रूप से सम्बन्धित होते हैं ।
- विकास की अनेक अवस्थाओं की अपनी-अपनी विशेषताऐं होती हैं ।
- प्रत्येक व्यक्ति (Individual) विकास की प्रक्रिया से होकर गुजरता हैं ।
- विकास के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती हैं ।
- विकास की प्रक्रिया के दौरान किये जाने वाले व्यवहार असामान्य प्रतीत होते है लेकिन वास्तव में सामान्य होते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विकास की जैव मनोवैज्ञानिक अवधारणा मुख्य रूप से दो तथ्यों पर आधारित हैं' - इन तथ्यों को स्पष्ट कीजिए ।
2. विकास मे आनुपातिक परिवर्तन किस प्रकार होता हैं ? स्पष्ट कीजिए ।

2.9 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विकास रूपी प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कई कारक होते हैं । लेकिन इनमें से तो कारक महत्वपूर्ण हैं - (1) जैविक कारक (Biological Factor)(2) सामाजिक कारक (Social Factor) ।

जैविक कारक मानव के जैविक विकास को प्रभावित करता हैं । जैविक विकास के लिए बालक के माता-पिता उत्तरदायी होते हैं क्योंकि माता-पिता जिस शिशु को जन्म देते है उसका विकास गर्भकाल से प्रारम्भ हो जाता हैं और जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता हैं ।

सामाजिक कारक मानव के सामाजिक विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं । यानि वातावरण (environment) ही बालक के सामाजिक विकास के जिम्मेदार होता हैं । सामाजिक विकास जन्म के पश्चात् मिले वातावरण द्वारा होता हैं ।

मानव के जन्म से सम्बन्धित विकास को वंशक्रम (Heredity) तथा समाज से सम्बंधित विकास को वातावरण (Environment) कहा गया हैं । कई जगह इन्हें क्रमश: (Nature) तथा पोषण (Nature) भी कहा गया !

यदि हम केवल वंशानुक्रम के सिद्धान्त को ही मानकर चले तो इस समस्या का समाधान नही हो सकता हैं क्योंकि वंशानुक्रम के अनुसार मानव "जैसे के तैसे" ही होने चाहिए । अत: ऐसी कोई दूसरी शक्ति अवश्य है जो मानव के व्यक्तित्व निर्माण में योगदान देती हैं । और यह शक्ति है वातावरण । अच्छे वंशानुक्रम की सन्तान यदि दूषित वातावरण मे पलेगी तो वो बिगड़ भी सकती हैं । अत: यहां यह स्पष्ट है कि मानव के विकास में वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों का ही योगदान महत्वपूर्ण होता हैं ।

2.9.1 वंशानुक्रम का अर्थ एवं परिभाषा

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि जैसे माता-पिता होते हैं वैसे ही उनकी सन्तान होती हैं (Like begets like) । यानि बालक को अपने माता-पिता से शारीरिक एवं मानसिक गुण प्राप्त होते हैं । जैसे यदि माता-पिता बुद्धिमान है तो संतान भी बुद्धिमान है परन्तु कई बार यह भी देखा जाता है कि बुद्धिमान माता-पिता की संतान मन्दबुद्धि और मन्दबुद्धि माता-पिता की संतान बुद्धिमान हो जाती हैं ।

इसके आधार पर यह निष्कर्ष है कि बालक को केवल अपने माता-पिता से ही नही वरन् अपने पूर्वजों से भी अनेक शारीरिक एवं मानसिक गुण प्राप्त होते हैं । इसकी को हम वंशानुक्रम (Heredity), वंश परम्परा या आनुवंशिकता आदि नामों से जानते हैं ।

परिभाषाएँ

(1) **जेम्स ड्रेवर** - "माता-पिता की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का सन्तानों में हस्तांतरण होना वंशानुक्रम हैं ।"

James Drever- "Heredity is the transmission from parents to offsprings of physical and mental characteristics"

(2) **रूथ बेंडिक्ट** -"वंशानुक्रम माता-पिता से सन्तान को प्राप्त करने वाले गुणों का नाम हैं।"

Ruth Bendict - Heredity is transmission of traits from parents to offspring."

(3) **बी.एन झा** - "वंशानुक्रम, व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओं का पूर्ण योग हैं ।"

B.N. Jha - "Heredity is the sum total of inborn individual trains"

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वंशानुक्रम की अवधारणा का स्वरूप अमूर्त (Abstract) है तथा इसकी अनुभूति हम शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं के आधार पर करते हैं।

2.9.1.1 वंशानुक्रम-एक प्रक्रिया

प्रत्येक मनुष्य का शरीर कोषों (Cells) से निर्मित होता हैं । गर्भावस्था की प्राथमिक स्थिति में भ्रूण की रचना केवल एक ही कोष (Cell) से होती है जो संयुक्त कोष (Zygote) कहलाती हैं । संयुक्त कोष पुरूष के शुक्र (Sperm) और स्त्री के अण्ड (Ovum) के संयोग पर निर्मित होती हैं ।

शुक्र (Sperm) तथा अण्ड (Ovum) दोनों ही बीज कोषा (Germ Cell) के रूप मे कुछ विशेषगुणों (Traits)ए के वाहक होते हैं । ये समस्त गुण भ्रूण (Embryo) में आ जाते हैं और जन्म के पश्चात् वंशानुक्रम कहलाते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि माता-पिता के बीजकोष एक निश्चित मात्रा में आपस मे मिलते है और वे ही सन्तान के विशिष्ट गुणों (Traits) का निर्धारण करते हैं । जैसे संतान का काला, गोरा, मोटा, लम्बा, बुद्धिमान इत्यादि होना ।

पुरूष और स्त्री के प्रत्येक कोष में 23-23 गुणसूत्र (Chromosome) होते हैं । यानि संयुक्त कोष मे गुणसूत्रों के 23 जोड़े होते हैं । प्रत्येक गुण सूत्र क्योंकि विशेष गुण का वाहक होता हैं अत: असंख्य प्रकार के व्यक्ति उत्पन्न होते हैं । चूंकि प्रत्येक गुणसूत्र की मिलावट भिन्न प्रकार से होती है अत: कोई भी दो व्यक्ति बिलकुल एक दूसरे से नहीं मिलते हैं ।

प्रत्येक गुणसूत्र (Chromosome) मे और भी सूक्ष्म पदार्थ होते है जिन्हें पित्रैक (Gens) कहते हैं । एक गुणसूत्र में अनेक पित्रैक होते है जो एक रेखीय आकृति में श्रृंखलाबद्ध होते हैं । एक गुणसूत्र में 40 से 100 तक पित्रैक होते हैं । प्रत्येक पित्रैक एक गुण (Trait) या विशेषता को निर्धारित करता हैं । व्यक्ति के वंशानुक्रम में कुछ ऐसे विशेष गुण होते हैं । जो एक पित्रैक या पित्रैकसमूह द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे संक्रमित (Transmite) होते हैं इसलिए इन पित्रैको को वंशानुक्रम निर्धारक (Heredity Determiners) कहते हैं ।

माता-पिता के 23-23 गुणसूत्रों के पित्रैको का सायुज्जन (Fusion) एक रासायनिक क्रिया के रूप मे होता है । यही रासायनिक संयोग (Fertilization) सन्तान के वंशानुगत गुणों का निर्धारक होता हैं ।

मन (Munn) :- "हमारी सब असंख्य परम्परागत विशेषताएँ इन 46 गुणसूत्रों मे निहित रहती हैं । ये विशेषताएँ गुणसूत्रों में विद्यमान पित्रैको (Genes) मे होती हैं ।"

सोरेनसन (Sorenson) "पित्रैक बालकों की मुख्य विशेषताओं और गुणों को निर्धारित करते हैं। पित्रैको के सम्मिलन के परिणाम को ही हम वंशानुक्रम कहते हैं ।"

1953 के बाद हमें यह पता लगा है कि पित्रैक एक प्रोटीन अणु नहीं हैं । अब पता लगा है कि वंशानुक्रम का वाहक एक रसायन होता हैं जिसे DNA (Desoxyribo-uncleic acid) डासोक्सोरिबो-यूक्लिक एसिड कहते हैं ।

डी.एन.ए की मूल आकृति दो आपस में गुथे कुण्डलित वक्र (Inter locking spirals) के रूप मे होती है चार प्रकार की कड़ी कुण्डलित वक्र की श्रृंखला को जोड़े रखती हैं । डी.एन.ए. वंशानुक्रम की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता हैं ।

हालांकि बालक के गुणों (Trait) पर वंशानुक्रम का प्रभाव होता है फिर भी बालक के विकास मे गर्भाधान के समय के वातावरण के कारण भी उसमें परिवर्तन आ जाता हैं जैसे माता को दी जाने वाली खुराक माता का स्वास्थ्य इत्यादि ।

कई परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका हैं कि इसी प्रकार कई अर्जित गुणों का संक्रमण भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हो सकता हैं ।

2.9.1.2 वंशानुक्रम के नियम

वंशानुक्रम के कुछ नियम सर्वाधिक प्रचलित हैं जो कि निम्नलिखित हैं -

(1) **समानता का नियम (Law of Resemblance)** :- इसके अनुसार जैसे माता-पिता की संतान बुद्धिमान या सुन्दर एवं आकर्षक दिखने वाले माता-पिता की सन्तान सुन्दर एवं आकर्षक होती हैं । हालांकि यह नियम भी पूर्ण रूप से सत्य नही हो सकता हैं क्योंकि कई बार देखने में आता हैं कि मन्द बुद्धि वाले माता-पिता की सन्तान बुद्धिमान होती है । यानि माता-पिता के गुणों से विपरीत गुण (Traits) वाली सन्तान की उत्पत्ति भी होती हैं ।

(2) **भिन्नता का नियम (Law of Variation)** :- यह नियम बतलाता हैं कि सन्तान माता-पिता के समान न होकर उनसे भिन्नता लिए भी होती हैं । एक ही माता-पिता की अनेक संतान भी एक दूसरे के समान होते हुए भी बुद्धि रंग, और व्यवहार मे एक दूसरे से भिन्न पाई जाती हैं । इस विभिन्नता का कारण माता-पिता के बीज कोषों (Germs Cells) की विशेषतायें हैं । चूंकि बीजकोषों में अनेक प्रकार के पित्रैक (Genes) होते हैं, जो विभिन्न संयोजनों से मिलने तथा आपस में भिन्न होने के कारण ऐसी सन्तान की उत्पति करते है जो आपस मे भिन्न होती हैं ।

भिन्नता का नियम प्रतिपादित करने वालो में डार्विन (Darwin) तथा लिमार्क (Lemark) ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि उपयोग न करने वाले अव्यव तथा विशेषताएँ विलुप्त आगामी पीढ़ियों में हो जाती हैं । इसके साथ ही नवोत्पत्ति (Mutation) तथा प्राकृतिक चयन (Natural Selection) द्वारा वंशानुक्रम मे भी परिवर्तन आता रहता हैं ।

(3) **प्रत्यागमन का नियम (Law of Regression)** :- इस नियम के अनुसार बालक में अपने माता-पिता के विपरीत गुण पाये जाते हैं । यानि कम प्रतिभाशाली माता-पिता की सन्तान अधिक प्रतिभाशाली तथा अधिक प्रतिभाशाली माता-पिता की सन्तान कम प्रतिभाशाली होती हैं ।

प्रकृति मे ऐसा नियम है कि वह प्रत्येक गुण (Traits) को सामान्य रूप से प्रकट करना चाहती हैं जाति के प्राणियों को एक ही स्तर पर रखने का प्रयास किया जा सके । इस नियम के अनुसार संतान अपने माता-पिता के विशिष्ट गुणों (Best Traits) को त्याग कर

सामान्य गुणों को ग्रहण करते हैं । इससे यह तात्पर्य नहीं है कि सदैव सब प्राणियों मे प्रत्यागमन होता हैं ।

इस प्रत्यागमन (Regression) के कारण निम्न है :-

(A) सन्तान के माता-पिता मे उनके पूर्वजों (Ancestors) मे से किसी एक का पित्रैक (Genes) अधिक शक्तिशाली होता हैं ।

(B) सन्तान के माता-पिता के पित्रैक (Genes) मे से एक कम और एक अधिक शक्तिशाली होता हैं ।

(4) अर्जित गुणों के संक्रमण का नियम (Inheritance of Acquired Traits)

इस नियम के अनुसार माता-पिता द्वारा अपने जीवन काल मे अर्जित किये जाने वाले गुण उनकी सन्तान को प्राप्त नहीं होते हैं ।

इस नियम को कुछ विद्वानों ने अस्वीकार किया है, जैसे वुडवर्थ इत्यादि । इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने स्वीकार किया है जैसे लेमार्क (Lemark), मैक्डूगल (McDongall), हैरीसन (Harrison) इत्यादि ।

(5) **मैंडल का नियम (Law of Mendel)**:- मैंडल नामक पादरी ने यह नियम प्रतिपादित किया कि वर्णसंकर प्राणी या वस्तुएँ अपने मौलिक (Origional) या सामान्य रूप की ओर अग्रसित होती हैं । यही सिद्धान्त आगे चलकर मैंडल वाद (Mendelism) के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उन्होंने मटर तथा चूहों पर प्रयोग करके इस नियम को प्रतिपादित किया हैं ।

2.9.1.3 वंशानुक्रम का बालक पर प्रभाव

वंशानुक्रम के अध्ययन के पश्चात् अनेक मनोवैज्ञानिकों ने यह पाया कि बालक के विकास के प्रत्येक पहलू पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता हैं जो कि निम्नलिखित हैं :-

(1) मूल शक्तियों पर प्रभाव

थार्नडाइक के अनुसार बालक में जो भी मूल शक्तियां पाई जाती हैं वे उसके वंशानुक्रम से ही उसे प्राप्त होती हैं ।

(2) प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव

क्लिनबर्ग (Klinberg) का मानना हैं कि बुद्धि की श्रेष्ठता का कारण प्रजाति हैं । और प्रजाति में पाये जाने वाले गुण (Traits) वंशानुक्रम पर ही आधारित होते हैं ।

(3) शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि सन्तान में माता-पिता के ही अधिकांश शारीरिक लक्षण पाये जाते हैं । जैसे गोरे माता-पिता की गोरी सन्तान इत्यादि ।

(4) व्यावसायिक योग्यता पर प्रभाव

एक अध्ययन के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला गया कि व्यावसायिक योग्यता का भी मुख्य कारण वंशानुक्रम ही है ।

(5) सामाजिक स्थिति पर प्रभाव

विभिन्न अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रतिष्ठित परिवारों की सन्तान भी प्रतिष्ठा प्राप्त करती है और विपरीत स्थिति में उसीके अनुरूप सन्तान होती है ।

(6) चरित्र पर प्रभाव

अध्ययनों के मुताबिक पाया गया है कि जिन सन्तानों के माता पिता चरित्रहीन होते है वे स्वयं भी चरित्रहीन पाये गये है । यानि वंशानुक्रम का प्रभाव चरित्र पर भी पड़ता है ।

डगडेल (Dugdale) भी इस मत के समर्थक रहे ।

अन्त में मनोवैज्ञानिक प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति के शारीरिक (Physical) तथा मानसिक (Mental) विकास पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । यह प्रभाव पित्रैक (Genes) के कारण होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारक लिखिए ।
2. वंशानुक्रम को परिभाषित कीजिए ।
3. गुणसूत्र से आप क्या समझते हैं?

2.9.2 वातावरण का अर्थ एवं परिभाषा

वातावरण का अर्थ (Meaning of Environment) :- व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है वह उसका वातावरण है । इसके अन्तर्गत वे सब तत्व आते है जो व्यक्ति के जीवन एवं व्यवहार को प्रभावित करते हैं ।

परिभाषाएँ (Definitions) :-

(1) **एनास्तसीस**:- वातावरण वह हर वस्तु है जो व्यक्ति के पित्रैक के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को प्रभावित करता है ।

Anastasi-"The Environment is every thing that affects the individual except his genes."

(2) **रॉस**:- "वातावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है ।'

Ross:-"Environment is an external force which influence us".

(3) **जिस्बर्ट**:-वातावरण वह हर वस्तु है जो किसी अन्य वस्तु को घेरे हुए है और उस पर सीधे अपना प्रभाव डालती है ।'

Gisburt-"The environment is anything immediately surrounding an object and existing a direct influence on it."

निष्कर्षत -

(1) वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है ।

(2) वातावरण किसी एक तत्व से नहीं बल्कि सामूहिकतत्व का नाम है ।

(3) यह वह हर वस्तु है जो व्यक्ति पर प्रभाव डालती है

(4) इसमें बाह्य तत्व आते है ।

2.9.2.1 बालक पर वातावरण का प्रभाव

अनेकों प्रकार के अध्ययनों में मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालक के विकास पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है । व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक वातावरण भी अपना प्रभाव दिखाते है । ये प्रभाव निम्नलिखित है :-

(1) शारीरिक विकास पर प्रभाव

ऐसा अध्ययनों में पाया गया है कि विश्व में पाई जाने वाली कई प्रजातियों के शारीरिक विकास में जो अन्तर है उसका कारण वातावरण है न कि वंशानुक्रम । कई प्रजातियों को जब भिन्न वातावरण में पाला गया तो कालान्तर में उनके शारीरिक लक्षण (Physical Features) में वातावरण के अनुसार परिवर्तन पाया गया ।

(2) मानसिक विकास पर प्रभाव

बालक कुछ सहज योग्यताएँ लेकर जन्म लेता है । यदि उसे अनुकूल वातावरण द्वारा कोई उपयुक्त उद्दीपन नहीं प्रदान किया जाता तो वे योग्यताएँ अपने प्रकृत स्वरूप में विकसित होती है । उचित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण न मिलने पर मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है ।

(3) व्यक्तित्व पर प्रभाव

ऐसा पाया गया है कि व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का प्रभाव अधिक देखा गया हैं ।

(4) बालक पर बहु मुखी प्रभाव

बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि सभी पक्षों पर वातावरण अपना प्रभाव अवश्य डालता हैं ।

इसका उदाहरण - भारत में सोमू नामक भेड़िया बालक तथा अमला-कमला नामक भेड़िया बालिकाओं के हैं । जो वातावरण के कारण ही पशुओं की भाँति चलने, खाने, तथा व्यवहार करने लगे ।

(5) बुद्धि पर प्रभाव

वैसे तो बुद्धि को वंशानुक्रम की देन ही माना जाता है लेकिन बुद्धि वातावरण से भी प्रभावित होती है । अध्ययनों में पाया कि जिन बालकों को निम्न वातावरण से अच्छे वातावरण में रखा गया तो उनकी बुद्धि लब्धि (I.Q.) में वृद्धि पाई गई । लेकिन बालक जितनी छोटी उम्र में होगा वातावरण पर उसका प्रभाव अधिक होगा ।

(6) जुड़वां बच्चों पर प्रभाव

चूंकि जुड़वां बच्चों में काफी शारीरिक एवं मानसिक, समानताएं पाई जाती है लेकिन अनेक शोधो के पश्चात यह पाया गया है कि जुड़वां दोनों बच्चों का यदि अलग-अलग वातावरण मिलता हैं तो उनका विकास भी अलग ढंग से होता है तथा दोनों पर वातावरण की भिन्नता का प्रभाव दिखाई देता है ।

यानि हम कह सकते हे कि बालक जितने समय तक उत्तम पर्यावरण में रहता हैं, वह उतना ही अधिक इस वातावरण की ओर प्रबल होता हैं ।

2.9.2.2 वंशानुक्रम व वातावरण मे सम्बंध

प्राचीनसमय में वंशानुक्रम तथा वातावरण को एक दूसरे से पृथक मानते थे । लेकिन वर्तमान में बालक के विकास वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभावों के पारस्परिक सम्बंधो का परिणाम माना जाता हैं । इस तथ्य की पुष्टि अनेक अध्ययनों के पश्चात् की गई हैं ।

क्रो एवं क्रो (Crow and Crow) - "व्यक्ति का निर्माण न केवल वंशानुक्रम और न केवल वातावरण से होता है । वास्तव में वह जैविक दाय और सामाजिक विरासत के एकीकरण की उपज हैं ।"

(Crow and Crow- “A person is neither ‘born’ to be nor ‘made’ what he is Rathere is the product of the integration of biological inheritance and Social heritage.”)

वंशानुक्रम तथा वातावरण का सापेक्षिक महत्व

बालक के विकास में वंशानुक्रम तथा वातावरण का सापेक्षिक महत्व है जो कि निम्नलिखित है :-

(1) वंशानुक्रम एवं वातावरण की समान महता

बालक के विकास मे वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं । किसी भी एक के अभाव मे पूर्ण विकास सम्भव नहीं जैसे बालक के विकास में माता-पिता दोनों का ही समान महत्व हैं । कोई भी कम या ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं हैं । दोनों मे से प्रत्येक पूर्ण रूप से अनिवार्य हैं ।

(2) वंशानुक्रम एवं वातावरण की पारस्परिक निर्भरता

वंशानुक्रम एवं वातावरण एक दूसरे के पूरक हैं, सहयोगी हैं । ये दोनों आपस में अर्न्तनिर्भर है । यानि बालक में जो गुण (traits) / विशेषताएँ आती है वे वंशानुक्रम के कारण होती है लेकिन उनका विकास वातावरण के कारण ही सम्भव होता हैं ।

यदि किसी बालक में एक गायक बनने के गुण वंशानुक्रम से प्राप्त हो गये है लेकिन इस कला को उभारने वाला वातावरण (यानि संगीत की शिक्षा, अभ्यास, अवसर इत्यादि) नहीं मिलता है तो वह एक अच्छा गायक नही बन सकता है । ठीक इसी प्रकार यदि किसी बालक मे वंशानुक्रम में गायक बनने के गुण (आवाज स्वर, इत्यादि) नही है तो चाहे उसे कितना ही उपयुक्त वातावरण दे दो लेकिन वो एक अच्छा गायक नही बन सकता हैं ।

निष्कर्षत: बालक का सम्पूर्ण व्यवहार -वंशानुक्रम एवं वातावरण की अन्तःक्रिया द्वारा होता हैं ।

मोर्स एवं विंगो (Morse and Wingo) - " मानव व्यवहार की प्रत्येक विशेषता वंशानुक्रम और वातावरण की अन्त: क्रिया का फल हैं ।"

(3) वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभावों में अन्तर करना मुश्किल

बालक की परवरिश मे माता और पिता का कितना प्रभाव पड़ता है यह बताना मुश्किल है ठीक उसी प्रकार बालक के विकास में वंशानुक्रम तथा वातावरण का कितना प्रभाव पड़ता है यह बताना कठिन हैं । वंशानुक्रम में जन्म से पूर्व गर्भाधान के समय की बातें आती है और

वातावरण मे जन्म के पश्चात् वे सभी बाह्य तत्व आ जाते हैं जो उसको प्रभावित करते हैं । ये दोनों मिलकर संयुक्त रूप से प्रभाव डालती हैं कि इनके प्रभावों में अन्तर करना कठिन हो जाता हैं ।

(4) वंशानुक्रम एवं वातावरण की उपज - बालक

बालक का विकास वंशानुक्रम एवं वातावरण का योगफल न होकर गुणनफल हैं । यानि यह नही कहा जा सकता है कि वह अपने वंशानुक्रम और वातावरण में किसकी अधिक उपज हैं।

निष्कर्ष मे बालक के विकास के लिए वंशानुक्रम और वातावरण का समान महत्व हैं । उसके निर्माण में दोनों का योगदान हैं । किसी भी एक को पृथक नही किया जा सकता हैं । ये दोनों एक दूसरे के पूरक है तथा दोनों ही परस्पर आत्म निर्भर भी हैं ।

2.9.2.3 बालक के विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारक

बालक का विकास वैसे तो मुख्य रूप से वंशानुक्रम एवं वातावरण से प्रभावित होता है लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी है जो बालक के विकास को प्रभावित करते है वो निम्नलिखित हैं :-

(1) प्रजाति -प्रजाति तत्वों का प्रभाव बालक के विकास पर देखा गया हैं ।

कुछ शोधों में पाया गया है कि कुछ प्रजाति के बालकों का विकास अन्य की अपेक्षा शीघ्र हो जाता हैं जैसे नीग्रो बालक, श्वेत बालकों की अपेक्षा (80%) शीघ्र परिपक्व हो जाते हैं।

(2) संस्कृति

डेविस महोदय ने शोध किया तथा पाया कि शैशवकाल मे तो बालक के विकास की विशेषताएँ समान रहती हैं लेकिन धीरे-धीरे संस्कृति उनमें भिन्नता उत्पन्न करती हैं । उन्होंने अमेरिका में रेडइंडियन बालकों एवं शेष सामान्य श्वेत बालकों पर अध्ययन किया था ।

(3) बालक का परिवार में स्थान

बालक का विकास कुछ हद तक इस बात पर भी निर्भर है कि परिवार में उसकी स्थिति कैसी हैं ? अत्यधिक संख्या में भाई-बहिन होंगे तो बालक के विकास पर प्रभाव पड़ता हैं प्राय: देखा गया हैं कि परिवार का पहला या अन्तिम बालक को बहुत लाड़ प्यार से पाला जाता हैं तथा उसका विकास भी इससे प्रभावित होता हैं । छोटे भाई बहिन बड़ों के अनुकरण से शीघ्र कई बाते सीख जाते हैं ।

(4) रोग एवं चोट

बालक के विकास मे तब बाधा आ जाती है जब वो किसी गम्भीर रोग से पीड़ित हो जाता हैं गर्भकाल के दौरान उसकी माता बीमार हो या फिर मादक पर्दाथों का सेवन करती हो । जन्म के पश्चात् भी यदि बालक के सिर पर चोट लग जाये तो उसका मानसिक विकास अवरूद्ध हो जाता हैं । लम्बी बीमारी भी उसके शारीरिक विकास पर भी प्रभाव डालती हैं ।

(5) पोषण

बालक के विकास को पोषण भी प्रभावित करता हैं । संतुलित भोजन (Balance Diet) बालक के विकास को सही दिशा प्रदान करती हैं । प्रोटीन, विटामिन, वसा, लणन, शर्करा, काब्रोहाइड्रेट आदि ऐसे तत्व है जो शारीरिक तथा मानसिक विकास में योगदान देते हैं ।

(6) यौन

यौन का बालक के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान होता हैं । यौन का प्रभाव बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर पड़ता हैं । लड़के तथा लड़कियों के विकास की गति में भिन्नताएं पाई जाती हैं । जैसे जन्म के समय लड़कियाँ लड़कों की तुलना में आकार में छोटी होती है लेकिन यौन परिपक्वता (Sexual Maturity) लड़कियों मे शीघ्र आती है तथा लड़कियों में मानसिक परिपक्वता (Mental Maturity) भी लड़कों की अपेक्षा जल्दी आती हैं ।

(7) ग्रन्थियों का स्त्राव

बालक के विकास पर ग्रन्थियों के अन्त: स्त्राव (Secretion) का भी प्रभाव पड़ता हैं । यह प्रभाव गर्भावस्था (Pregnancy) एवं जन्म के पश्चात् दोनों दशाओं में पड़ता हैं इन ग्रन्थियों में थॉयराइड (Thyroid), पैरा थॉयराइड (Para- Thyroid),परिनियल (Pineal) प्रमुख हैं । इनसे स्त्रावित होने वाले हारमोन्र्स (Harmones) मे विकार के कारण बालक का विकास बहुत प्रभावित होता हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. 'विकास' से आप क्या समझते हैं?
2. वंशानुक्रम एवं वातावरण के मध्य संबंध की विवेचना कीजिए ।
3. बालक के विकास मे अन्य कारकों का क्या योगदान है ? उल्लेख करें ।

2.10 विकास के अध्ययन की पद्धतियाँ

बालक राष्ट्र का निर्माता हैं अत: प्रत्येक बालक को विकसित होने का पूरा अवसर प्रदान किया जाना चाहिए । यदि कोई बालक सही ढंग से अपना विकास नहीं कर पाता हैं तो उसे विकसित करने के उपाय किये जाने चाहिए । इसके पहले हमें बालक का विकास कैसा हो रहा है इसकी जानकारी होना भी जरूरी है तभी अभिभावक उसे दिशा निर्देश दे सकेंगे । अत: बाल विकास का अध्ययन करना जरूरी हैं और उसके लिए अनेक पद्धतियाँ (Method) चलन में है जो कि निम्नलिखित हैं -

2.10.1 आत्मनिष्ठ अंकन पद्धति

इसके अन्तर्गत बालक के अनौपचारिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता हैं । बालक जो कुछ कहता है तथा करता है उसमें उसका व्यक्तित्व झलकता हैं । उसी के आधार पर बालक के संबन्ध में अनुमान लगाये जाते हैं ।

2.10.2 मनोभौतिकी पद्धति

इसमें मन तथा शरीर के सम्बन्धों के आधार पर व्यवहार का अध्ययन किया जाता हैं। इसमें उद्दीपन (Stimulus), अनुक्रिया (Response) के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता हैं । यानि उद्दीपन से शरीर तथा व्यवहार में क्या परिवर्तन होते हैं ।

2.10.3 प्रश्नावली पद्धति

इसमें विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के उत्तर बालकों से प्राप्त किये जाते हैं तथा उसके विकास का अध्ययन किया जाता हैं ।

2.10.4 चिकित्सात्मक पद्धति

बालक के व्यक्तित्व एवं आचरण सम्बन्धी व्यवहार में समस्याएं पाई जाती हैं उसके कारण बालक का विकास सही नहीं हो पाता हैं । इस पद्धति द्वारा समस्या के कारणों का पता लगाकर उपचार किया जाता हैं ।

2.10.5 सांख्यिकी पद्धति

इस विधि में विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण करके बालक के विकास की जानकारी हासिल की जाती हैं ।

2.10.6 जीवन वृतान्त विधि

इसमें बालकों के जीवन क्रम का लेखा जोखा एकत्र किया जाता हैं । माता-पिता, रिश्तेदार तथा अन्य से भी सूचनाएँ प्राप्त करके फिर बालक के विकास के बारे में विश्लेषण किया जाता हैं ।

2.10.7 प्रयोगात्मक पद्धति

इसके अन्तर्गत दो वर्ग (प्रयोज्य) होते हैं । एक वर्ग नियन्त्रित रहता है और एक वर्ग प्रयोगात्मक । दोनों वर्गो से प्राप्त परिणामों की तुलना की जाती हैं । इसमें निश्चित परिस्थितियों या दशा (conditions) में मानव व्यवहार से सम्बंधित विचार / विश्वास का परीक्षण किया जाता हैं ।

2.10.8 नियंत्रित निरीक्षण पद्धति

इसमें बालक के व्यवहार का निरीक्षण करके उसके सम्बंध में विश्लेषण किया जाता हैं।

बालक के विकास का अध्ययन अभिभावकों, समाज एवं स्वयं बालक के लिए जरूरी है ताकि बालक का विकास सही एवं उपयुक्त दिशा मे हो सके । इसके लिए कोई एक पद्धति पूर्णरूप सही नही है । इसलिए परिस्थितियों के अनुसार पद्धतियों की सहायता की जानी चाहिए।

2.11 विकास की अवस्थाएँ

विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं किन्तु इसका विभाजन अनेक अवस्थाओं में होता हैं । व्यक्ति का विकास अनेक चरणों मे पूर्ण होता हैं । विभिन्न विद्वानों में विकास की अवस्थाओं को लेकर अनेक मतभेद पाये जाते हैं ।

सामान्य रूप से इनका वर्गीकरण चार भागों में विभाजित किया जाता है :-

2.11.1	शैशवावस्था (Infancy)	जन्म से 5 या 6 वर्ष तक ।
2.11.2	बाल्यावस्था (Childhood)	5 या 6 वर्ष से 12 वर्ष तक ।
2.11.3	किशोरावस्था (Adolescence)	12 वर्ष से 18 वर्ष तक ।
2.11.4	प्रौढ़ावस्था (Adulthood)	18 वर्ष के बाद ।

प्रत्येक बालक का विकास उपरोक्त अवस्थाओं से गुजरकर ही होता हैं । इन अवस्थाओं का विस्तृत वर्णन अलग अध्यायों में किया गया हैं ।

2.12 विकास के आयाम

विकास रूपी प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं । बालक का विकास चहुमुखी होता हैं । यानि बालक के विकास के अनेक आयाम हैं । और सभी आयामों का विकास लगभग साथ-साथ चलता रहता हैं । तभी बालक के व्यक्तित्व का विकास सही होता हैं तथा वह विकास सर्वांगीण विकास कहलाता हैं ।

विकास के मुख्य आयाम निम्नलिखित हैं :-

(1) शारीरिक विकास

(2) मानसिक विकास

(3) सामाजिक विकास

(4) संवेगात्मक विकास

(5) चारित्रिक एवं नैतिक विकास

2.12.1 शारीरिक विकास

इसके अन्तर्गत बालक के शारीरिक विकास से सम्बंधित जैसे लम्बाई, चौड़ाई, वजन, आकृति, सिर, दाँत इत्यादि के बारे में जानकारी हासिल की जाती हैं ।

विकास के इस पहलू में भी प्रत्येक अवस्था (शैशव, बाल्या, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था) के आधार पर शारीरिक विकास से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता हैं ताकि विकास की प्रत्येक अवस्था पर उचित शारीरिक विकास किया जा सकें ।

2.12.2 मानसिक विकास

इसके अन्तर्गत बालक की मानसिक शक्तियों (Mental abilities) जैसे ज्ञान (Knowledge) अवबोध (Understanding), बुद्धि (Intelligence), तर्क (Reasoning), कल्पना (Imagination), चिन्तन (Thinking), इत्यादि आती हैं ।

विकास के इस पहलु में भी प्रत्येक अवस्था के आधार पर मानसिक विकास से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है ताकि प्रत्येक अवस्था पर बालक का उचित मानसिक विकास हो सकें ।

2.12.3 सामाजिक विकास

बालक द्वारा सामाजिक आदर्शों (Ideals), सामाजिक परम्पराओं (Traditions), एवं रूचियों के अनुसार समाज के अन्य लोगों के सहयोग से जो व्यवहार किया जाता हैं उसे सामाजिक विकास के अन्तर्गत रखा जाता हैं । बालक का सामाजिक विकास ही समाजीकरण (Socialization) की प्रक्रिया हैं ।

बालक के विकास की प्रत्येक अवस्था मे सामाजिक विकास से सम्बंधित अध्ययन किया जाता है ताकि बालक का सामाजीकरण सही ढंग से हो सकें तथा वो समाज का एक जिम्मेदार सदस्य बन सकें ।

2.12.4 संवेगात्मक विकास

इसके अन्तर्गत बालक में पाये जाने वाले संवेगों (Emotion) के विकास के सम्बन्ध में अध्ययन किया जाता हैं । ये संवेग हैं-. प्रेम (Love), ईर्ष्या (Jealous), क्रोध (Anger), भय (Coward), हर्ष (Happiness) इत्यादि.। इन संवेगों के कारण बालक का विकास प्रभावित होता हैं ।

विकास की प्रत्येक अवस्था में संवेगात्मक विकास का अध्ययन करके बालक की संवेगात्मक परिपक्वता को बढ़ाया जा सकता है । ताकि वो एक अच्छे व्यक्तित्व का मालिक बन सके ।

2.12.5 चारित्रिक एवं नैतिक विकास

चरित्र व्यक्तित्व (Personality) नैतिकता (Morality) या स्वभाव (Temperament) या फिर इन सबका योग होता हैं । चरित्र व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं । इसमें बालक के चरित्र का निर्माण करने वाले कारक मूल प्रवृतियॉ (Instincts), संवेग (Emotions), आदतें (Habits), स्थायीभाव (Sentiments), इच्छाशक्ति (Will Power), आत्म सम्मान (Self Respect), स्वभाव (Temprament) इत्यादि से सम्बन्धित जानकारी हासिल की जाती हैं ।

विकास की प्रत्येक अवस्था में बालक का चारित्रिक विकास से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता हैं ताकि बालक सही चरित्र निर्माण के लिए प्रेरित किया जा सकें ।

उपरोक्त विकास के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन अगले अध्यायों में किया गया हैं ।

2.13 उपयुक्त वृद्धि व विकास एवं सुझाव

वृद्धि व विकास की प्रक्रिया पर कोई एक घटक प्रभाव नहीं डालता हैं बल्कि अनेक कारक है जो बालक के विकास पर प्रभाव डालते हैं जैसे बालक का परिवार (Family), विद्यालय (School) तथा समुदाय (Community) इत्यादि । बालक का विकास सही हो तथा वो समाज के लिए एक जिम्मेदार नागरिक बने उसके लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :-

- परिवार बालक की प्रथम पाठशाला हैं । परिवार में ही विकास के सभी आयामों का प्रारम्भिक विकास होता हैं । अत: बालक के सम्पूर्ण विकास के लिये परिवार के सदस्यों द्वारा उपयुक्त सहयोग दिया जाना चाहिये । बालक के शारीरिक, सामाजिक, मानसिक एवं संवेगात्मक इत्यादि विकास के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किये जाने चाहिये । परिवार मे उपयुक्त खान-पान, पालन-पोषण, स्वस्थ पारिवारिक परम्पराओं, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक, संवेगात्मक विकास के बेहतर अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए ।

- परिवार के सभी सदस्य बालक के लिये आदर्श (Role-Model) के रूप में होने चाहिए जिसका वो अनुकरण (Imitation) कर सकें । बालक का सही ढंग से सामाजीकरण होना चाहिए ।
- परिवार के बाद में विद्यालय वह स्थान है जहाँ बालक प्रवेश सामाजीकरण के लिए लेता हैं । विद्यालय समाज का लघुरूप हैं । यह संस्था बालक के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं बालक बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक विद्यालय में रहता है । जो कि उसके विकास की महत्वपूर्ण अवस्थाएँ हैं ।
- विद्यालय का भौतिक एवं सामाजिक वातावरण (Physical and Social Environment), विद्यालय के सदस्यों का आपसी व्यवहार, शिक्षक-छात्र सम्बंध, विद्यालय की परम्पराएँ (Traditions), अनुशासन (Discipline) मित्रमण्डली (Play-Group), विद्यालय के आदर्श (Ideals), इत्यादि बालक के विकास को प्रभावित करते हैं । विद्यालय सम्बन्धी ये सभी कारक सकारात्मक रूप (Positive Forms) में बालक पर अपना प्रभाव छोड़े ऐसे प्रयास भरसक किये जाने चाहियें ।
- बालक अपना काफी समय खेल समूह (Play-Group), तथा मित्र मण्डली (Play-Group) मे व्यतीत (Spend) करता हैं । जहां पर वो अनेक आदतें, विचारधाराएं एवं व्यवहार विकसित कर लेता हैं । अत: परिवार, विद्यालय एवं समुदाय को बालक को सही साथियों के चयन में मदद करनी चाहिए ।
- हमारे समाज में धार्मिक संस्थाएँ भी बालक के सामाजिक, मानसिक, चारित्रिक एवं नैतिक विकास को प्रभावित करती हैं । ऐसे में इन संस्थाओं की जिम्मेदारी बनती है कि वो सही भूमिका का निर्वाह करे ताकि धर्म के प्रति कट्टर बालक का विकास न हो तथा उसमें धार्मिक सहिष्णुता पैदा की जा सकें, जो बालक समाज, देश एवं राष्ट्र के लिए जरूरी हैं ।
- समुदाय (Community) बालक के विकास में अपना प्रभाव छोड़ते है । प्रत्येक समुदाय अनेक रूप से विकास को प्रभावित करते हैं जैसे समुदाय का सांस्कृतिक प्रभाव, राजनैतिक प्रभाव, साम्प्रदायिकता का प्रभाव, समुदाय द्वारा शिक्षा की व्यवस्था इत्यादि।

अत: समुदाय द्वारा किये गये उपयुक्त प्रयास बालक के विकास को सही दिशा प्रदान करें ।

अन्त: में बालक के लिए संयुक्त रूप से बेहतर प्रयास किये जाने चाहिए । तथा स्वयं बालक भी अपने विकास के सम्बन्ध मे सोच समझकर उपलब्ध अवसरों का उपयोग करें ।

बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं विकास के विभिन्न आयामों के राही विकास के लिए विस्तृत जानकारी अगले अध्यायों में दी गई हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विकास की प्रमुख अवस्थाएँ कौनसी हैं?
2. विकास के मुख्य आयामों को लिखिए ।
3. बालक के उपयुक्त अभिवृद्धि एवं विकास के लिए कुछ सुझाव दीजिए ।

2.14 सारांश

अभिवृद्धि एवं विकास ये दोनों शब्द प्राय: बिना कोई भेदभाव किये पर्यायवाची के रूप में लिये जाते हैं ।

अभिवृद्धि का तात्पर्य केवल आकार बढ़ने से हैं तथा इसे विभिन्न प्रकार की इकाइयों में मापा जा सकता हैं । विकास ऐसे परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त होता है जिससे बालक की कार्यक्षमता, और व्यवहार में प्रगति होती हैं । विकास अपने आप में विस्तृत अर्थ रखता है तथा यह एक सतत् प्रक्रिया हैं । अधिकांश लेखकों द्वारा दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता हैं परन्तु बारीकी से देखे तो दोनों में अन्तर पाया जाता हैं ।

अभिवृद्धि कई दशाओं पर निर्भर करती है जैसे भोजन, अनुवांशिकता, व्यायाम इत्यादि ।

विकास का अर्थ परिवर्तन से है यह प्रगतिशील परिवर्तन किसी भी प्राणी में भ्रूणावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक होता रहता है । प्रत्येक प्राणी मे विकास कुछ सिद्धान्तों के आधार पर होता है । जैसे व्यैक्तिक भिन्नता का सिद्धान्त, एकीकरण का सिद्धान्त, इत्यादि विकास की कुछ विशेषताएँ होती हैं जैसे आनुपातिक परिवर्तन, आकार तथा भार, रूपरेखा मे परिवर्तन इत्यादि । विकास को अनेक कारक प्रभावित करते है जिनमें से प्रमुख रूप से

(1) वंशानुक्रम (2) वातावरण

(1) **वंशानुक्रम का तात्पर्य है** - माता-पिता की शारीरिक-मानसिक विशेषताओं का सन्तान में हस्तांतरण होना हैं । इन विशेषताओं / गुणों का हस्तांतरण एक जैविकीय क्रिया के कारण होता हैं । वंशानुक्रम बालक के विकास को प्रभावित करता है ।

(2) **वातावरण का तात्पर्य है** - इसके अन्तर्गत वे सब तत्व आते हैं जो व्यक्ति के जीवन एवं व्यवहार को प्रभावित करते हैं । बालक के विकास पर वातावरण का भी बहुत प्रभाव पड़ता हैं । संयुक्त रूप से दोनों कारक विकास पर प्रभाव डालते हैं । इसके लिए अलावा प्रजाति, संस्कृति, पोषण आदि भी विकास को प्रभावित करते हैं ।

बालक के विकास के मापन के लिए अनेक पद्धतियाँ चलन में है । बालक का विकास विभिन्न अवस्थाओं में होता है (1) शैशवास्था (2) बाल्यावस्था (3) किशोरावस्था । इन विभिन्न अवस्थाओं मे विकास के अनेक आयाम है जैसे - (1) शारीरिक विकास (2) मानसिक विकास (3) सामाजिक विकास (4) संवेगात्मक विकास इत्यादि ।

बालक के उपयुक्त विकास के लिए परिवार, विद्यालय, धार्मिक संस्थाओं एवं समुदाय को मिलकर प्रयास करने चाहिए ।

2.15 मूल्यांकन प्रश्न

1 अभिवृद्धि को परिभाषित कीजिए । अभिवृद्धि एवं विकास मे अन्तर कीजिए ।
2 विकास के मुख्य सिद्धान्त कौन से हैं ' उल्लेख कीजिए ।
3 विकास की मुख्य विशेषताओं को लिखिए ।
4 "वंशानुक्रम माता-पिता से सन्तान को प्राप्त करने वाले गुणों का नाम हैं । ' -इस कथन की विवेचना कीजिए ।
5 वंशानुक्रम के नियमों का विस्तृत उल्लेख कीजिए ।
6 बालक के विकास में वंशानुक्रम के प्रभाव का विवेचनात्मक वर्णन कीजिए ।
7 बालक के विकास पर वातावरण के प्रभाव की विवेचना कीजिए ।
8 वंशानुक्रम एवं वातावरण का सम्बन्ध बताते हुए उनके सापेक्षिक महत्व पर प्रकाश डालिए ।
9 बालक के विकास मे परिवार, विद्यालय, समुदाय एवं अन्य संस्थाओं के योगदान की विवेचना कीजिए ।

2.16 संदर्भ ग्रंथ

1 Bigge and Hunt: Psychological Foundations of Education.
2 Blair, Johns & Simpsons : Education Psychology
3 Carmichael, Leonard : Manual of Child Psychology
4 Cole& Bruch : Educational Psychology
5 Crow & Crow : Educational Psychology
6 Drever, James: An Introduction to Psychology of Education.
7 Jha, B N: Modern Education Psychology
8 Kuppuswamy, B: Advanced Educational Psychology
9 Skinner & Hariman: Child Psychology
10 Sorenson, Herbert: Psychology in Education.
11 Strang Ruth: An Introduction to Child Study
12 Bhatnagar, Suresh: Educational Psychology
13 Mathur, S.S.: Educational Psychology
14 Pathak, P.D.: Educational Psychology
15 शर्मा जी.एस. एवं व्यास एच. सी. : अधिगम शिक्षण और विकास के मना सामाजिक आधार
16 शर्मा, रामनाथ एवं रचना शर्मा.: उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान
17 मंगल, एस. के.: विद्यार्थी विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया
18 तिवारी, सुबोध नारायण. शिक्षण अधिगम एवं अधिगम का मनोविज्ञान

इकाई 3

बालक का शारीरिक एवं गामक विकास

(Physical and Motor Development of Child)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

3.2.1 शैशवावस्था

3.2.2 बाल्यावस्था

3.2.3 किशोरावस्था

3.3 विकास के विभिन्न आयाम

3.3.1 शारीरिक विकास

3.2.2 गामक विकास

3.3.3 मानसिक विकास

3.3.4 सामाजिक विकास

3.3.5 संवेगात्मक विकास

3.3.6 चारित्रिक विकास

3.4 शारीरिक विकास

3.4.1 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

3.4.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

3.4.3 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

3.4.4 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

3.5 गामक विकास

3.5.1 शैशवावस्था में गामक विकास

3.5.2 बाल्यावस्था में गामक विकास

3.5.3 किशोरावस्था में गामक विकास

3.5.4 गामक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 मूल्यांकन प्रश्न

3.9 सन्दर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- विकास की विभिन्न अवस्थाओं को परिभाषित कर सकेंगें ।
- शैशवावस्था में विकास के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- बाल्यावस्था में विकास के स्वरूप को समझ सकेंगें ।
- किशोरावस्था में-विकास के स्वरूप को समझ सकेंगें ।
- विकास के विभिन्न आयामों का वर्गीकरण कर सकेंगें ।
- शारीरिक विकास की व्याख्या कर सकेंगें ।
- गामक विकास की व्याख्या कर सकेंगें ।
- मानसिक विकास की व्याख्या कर सकेंगें ।
- सामाजिक विकास की व्याख्या कर सकेंगें ।
- संवेगात्मक एवं चारित्रिक विकास की व्याख्या कर सकेंगें ।
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास की विस्तृत व्याख्या कर सकेंगें ।
- विभिन्न अवस्थाओं में गामक विकास की विस्तृत व्याख्या कर सकेंगें ।
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं के शैक्षिक महत्व को समझ सकेंगें ।

3.1 प्रस्तावना

"विकास बड़े होने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है । विकास के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ तथा नवीन योग्यताएँ प्रकट होती हैं ।

-हरलॉक

“Development is not limited to growing larger it consists of a progressive series of changes towards the goal of maturity. Development results is new abilities on the part of individual.

(-Hurlock)

"विकास सतत् एवं क्रमिक प्रकिया है ।"

-स्किनर

“Development is continuous and gradual process.”

-Skinner

"विकास, अभिवृद्धि, परिपक्वता और अधिगम - ये सब शब्द उन शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक और नैतिक परिवर्तनों का उल्लेख करते हैं जिनका व्यक्ति अपने जीवन में आगे बढ़ते समय अनुभव करता है ।“

-कोलेसनिक

“The terms growth, development, maturation and learning refer to the physical, mental, Social, Emotional and moral changes ehich a person experiences as he advance through the life.”

-Kolesnik'

बालक का विकास एक जटिल प्रकिया है । यह व्यवस्थित, निरन्तर एवं क्रमिक रूप से चलती रहती है । जन्म से ही बालक सीखना प्रारम्भ करता है तथा अन्त तक सीखता ही रहता है । अर्थात् विकास के साथ-साथ सीखने का क्रम भी जारी रहता है । सीखने की प्रकिया में विकास का महत्वपूर्ण योगदान होता है । विकास के साथ-साथ अभिवृद्धि एवं परिपक्वता का भी महत्वपूर्ण योगदान है । अभिवृद्धि (Growth) एवं विकास एक दूसरे के पूरक हैं तथा दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं । अभिवृद्धि का अर्थ शारीरिक अंगों की लम्बाई, चौड़ाई एवं भार आदि का बढ़ना एवं शरीर के आन्तरिक अंगों और मस्तिष्क के आकार एवं उसकी संरचना में वृद्धि होना है । परिपक्वता (Maturation) को ड्रेवर ने अभिवृद्धि की पूर्णता (Completion of Growth) माना है । यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता प्राप्त होने पर अभिवृद्धि स्वत: ही रूक जाती है ।

3.2 विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

बालक का विकास निरन्तर होता है, किन्तु यह विकास भी विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है । विकास की अवस्थाओं का शाब्दिक अर्थ है - विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने पर होने वाले परिवर्तन । सामान्य रूप से विकास की अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं-

1. शैशवावस्था (Infancy) 2. **बाल्यावस्था** (Childhood) 3. **किशोरावस्था** (Adolescence)

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विकास की अवस्थाओं की अवधि भिन्न-भिन्न बताई है । उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

रौस (ROSS) के अनुसार विकास की अवस्थाएँ -

अवस्था (Stage)	अवधि (Duration)
(1) गर्भकाल या गर्भावस्था (Pre-Natal)	गर्भाधान से जन्म तक
(2) आरम्भिक शैशवावस्था (Early Infancy)	1 माह से 15 माह तक
(3) उत्तर शैशवावस्था (Late Infancy)	15 माह से 30 माह तक
(4) आरम्भिक बाल्यावस्था (Early Childhood)	30 माह से 5 वर्ष तक
(5) मध्य बाल्यावस्था (Middle Childhood)	5 वर्ष से 9 वर्ष तक
(6) उत्तर बाल्यावस्था (Late Childhood)	9 वर्ष से 12 वर्ष तक
(7) किशोरावस्था (Adolescence)	12 वर्ष से 21 वर्ष तक

विकास की इन अवस्थाओं के दौरान बालक के व्यवहार का अध्ययन किया जा सकता है । शैक्षिक दृष्टिकोण से विकास की समस्त अवस्थाओं में से शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा

किशोरावस्था का सर्वाधिक महत्व है । इसी कारण हम यहाँ विकास की इन तीन अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगें ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विकास की विभिन्न अवस्थाओं से आप क्या समझते हैं?
2. रौस के अनुसार विकास की अवस्थाएँ कौन-कौन सी हैं?
3. कोलेसनिक के अनुसार विकास की अवस्थाएँ कौन-कौन सी हैं?

3.2.1 शैशवास्था (Infancy)

के जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है, क्योंकि इसी अवस्था से बालक के भावी जीवन का निर्धारण किया जाता है । इस अवस्था में सीखी गई बातों का प्रभाव सम्पूर्ण जीवन में रहता है । इसके महत्व के सम्बन्ध में एडलर ने कहा है - "बालक के जन्म के कुछ माह बाद ही यह निश्चित किया जा सकता है कि जीवन में उसका क्या स्थान है ।"

- एडलर

"One can determine how child stands in relation to life a few months after his birth."

- Adler

शैशवावस्था के सम्बन्ध में स्ट्रैंग ने कहा है - "जीवन के प्रथम दो वर्षों में बालक अपने भावी जीवन का शिलान्यास करता है । यद्यपि किसी भी आयु में उसमें परिवर्तन हो सकता है, पर प्रारम्भिक प्रवृत्तियाँ और प्रतिमान सदा बने रहते हैं ।

- स्ट्रैंग

"During him first two years of life, the child lays the foundation for his future. Although change is possible at any stage, early trends and patterns tend to persist."

-Strang

शैशवावस्था में बालक के मानसिक विकास के सम्बन्ध में गुडएनफ ने कहा है - "व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है, उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है ।"

-गुडएनफ

"One half of an individual's ultimate mental status has been attained by the age of three years."

-Goodenough

शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में भी शैशवावस्था को महत्वपूर्ण बताया गया है - "3 वर्ष से 10 वर्ष के बीच के वर्ष बालक के शारीरिक, संवेगात्मक और मानसिक विकास के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं । अत: हम पूर्व प्राथमिक शिक्षा के अधिक से अधिक सम्भव विस्तार की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं ।"

शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन

“The years between 3 years and 10 years are of great importance in child’s physical, emotional and intellectual development. We therefore, recognize the need to develop pre-primary education as extensively as possible”

-Report of Education Commission

3.2.2 बाल्यावस्था

बालक शैशवावस्था के बाद बाल्यावस्था में प्रवेश करता है । 6 वर्ष से लेकर किशोरावस्था प्रारम्भ होने तक का समय (6-12वर्ष) बाल्यावस्था कहलाता है । इस अवस्था से बालक वातावरण से काफी परिचित हो जाता है । इसके साथ-साथ बालक व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार करना भी सीख जाता है । इसी अवस्था में बालक की औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ भी होता है । इस समय बालक में बहुत अधिक स्फूर्ति होती है अत: बाल्यावस्था को स्फूर्ति अवस्था (Smart Age) भी कहा जाता है । खेल-कूद, भाग-दौड़, उछल-कूद के कारण इस अवस्था में बालक प्राय: गन्दा (dirty) तथा लापरवाह रहता है । अत: कुछ मनोवैज्ञानिक इसे गन्दी अवस्था भी कहते हैं । ब्लेयर, जोन्स, तथा सिम्पसन ने इसकी महत्ता इस प्रकार बताई है -

"शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन चक्र में बाल्यावस्था से अधिक कोई महत्वपूर्ण अवस्था नहीं है । जो शिक्षक इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देते हैं, उन्हें बालकों का, उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी समस्याओं एवं उनकी परिस्थितियों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिये जो उनके व्यवहार को रूपान्तरित और परिवर्तित करती है ।"

- ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन

“No period during the life cycle is more important than childhood from an educational point of view. Teachers who work at this level should understand children, their fundamental needs, their problems and the forces. Which modify and produce behaviour change.”

-Blair, Jones and Simpson.

कोल एवं ब्रूस ने बाल्यावस्था को 'अनोखा-काल' बताया है - 'वास्तव में माता-पिता के लिए बाल विकास की इस अवस्था को समझना कठिन है ।"

कोल एवं ब्रूस

“This is indeed, a difficult period of child development for parents to understand.”

-Cole and Bruce

3.2.3 किशोरावस्था

सामान्यत: बाल्यावस्था की समाप्ति अर्थात् 12 वर्ष से लेकर 19 वर्ष तक की अवस्था किशोरावस्था कहलाती है । यह अवस्था प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ तक चलती रहती है । व्यक्तिगत

विकास की दृष्टि से यह अवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस अवस्था में ही अधिकतम शारीरिक, गामक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं । यह काल बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के बीच का संक्रमण काल (Transition Period) है, अत: इसे जीवन का सर्वाधिक कठिन काल माना जाता है । इसके सम्बन्ध में जरशील्ड ने कहा है- "किशोरावस्था वह समय है जिसमें विचारशी व्यक्ति बाल्यावस्था से परिपक्वता की ओर संक्रमण करता है ।"

- जरशील्ड

"Adolescence is a period, which a growing person makes transition from childhood to maturity."

-Jersild

स्टेनले हॉल के अनुसार -

"किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान तथा विरोध की अवस्था है ।"

- स्टेनले हॉल

"Adolescence is a period of great stress and strain, storm and straife."

-Stanaley Hall

बिगी एवं हन्ट ने किशोरावस्था को परिवर्तन का समय माना है -

"किशोरावस्था की विशेषताओं को सर्वोत्तम रूप से व्यक्त करने वाला एक शब्द है - परिवर्तन । ये परिवर्तन - शारीरिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं ।"

- बिगी एवं हन्ट

"The one word which best categorizes adolescence is change. The change is phydiological, sociological and psychological."

-Bigge and Hunt

ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन के अनुसार -

"किशोरावस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में वह काल है, जो बाल्यावस्था के अन्त में आरम्भ होता है और प्रौढ़ावस्था के आरम्भ में समाप्त होता है ।

ब्लेयर, जोन्स तथा सिम्पसन

"Adolescence is that period in life of a person which starts at the end of childhood and ends at the starting of adulthood."

-Blair, Jones and Simpson.

शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था ये तीनों ही शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अवस्थाएँ हैं, क्योंकि शिक्षक का सम्बन्ध इन तीन अवस्थाओं से ही होता है । इन अवस्थाओं में होने वाले विकास के अनुसार शिक्षा प्रदान करना ही शिक्षक का प्रमुख कर्तव्य है ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. शैशवकाल को विकास की आधारशिला क्यों कहा गया है ?
2. बाल्यावस्था में क्या शारीरिक परिवर्तन होते हैं ?
3. किशोरावस्था तनाव की अवस्था क्यों है ?

3.3 विकास के विभिन्न आयाम

बालक का विकास विभिन्न दिशाओं (dimensions) में होता है तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है । विकास की ये दिशाएँ एवं प्रकार विकास के आयाम कहलाते हैं । ये इस प्रकार हैं -

(1) शारीरिक विकास
(2) गामक विकास
(3) मानसिक विकास
(4) सामाजिक विकास
(5) संवेगात्मक विकास
(6) चारित्रिक या नैतिक विकास

3.4 शारीरिक विकास

स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है । अत: शारीरिक विकास का अध्ययन सर्वप्रथम करना आवश्यक है । भ्रूण (Embryo) के स्थापित होते ही बालक का शारीरिक विकास प्रारम्भ हो जाता है । यह विकास जीवन की विभिन्न अवस्थाओं - शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है । विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं ।

3.4.1 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

शैशवावस्था, जन्म से पूर्व आ स्थापित होने की अवस्था के बाद आरम्भ हो जाती है । इस अवस्था में अर्थात् जन्म से 5 वर्ष तक शारीरिक विकास बहुत तीव्र गति से होता है । शैशवावस्था में शारीरिक विकास के समय शिशु के शरीर में निम्नलिखित शारीरिक परिवर्तन होते हैं -

1 **लम्बाई** (Height): - प्राय: यह देखा गया है कि जन्म के समय लड़के लड़कियों की तुलना में अधिक लम्बे होते हैं, यह अन्तर 0.5 इन्च होता है । लड़कों की लम्बाई लगभग 18.5 इन्च तथा लड़कियों की लम्बाई 18 इन्च रहती है । प्रथम तीन वर्ष में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की लम्बाई अधिक बढ़ती है । इसके बाद लड़कों की लम्बाई लड़कियों से अधिक बढ़ने लगती है । एक वर्ष में शिशु की लम्बाई 27 से 28 इन्च, 2 वर्ष में 31 से 33 इन्च एवं 6 वर्ष की आयु में 40 से 42 इन्च तक पहुँच जाती है।

2 **भार** (Weight): - जन्म के शिशु का औसत भार 7.13 पौंड होता है, किन्तु लड़के एवं लड़कियों के भार में जन्म के समय अन्तर पाया जाता है । लड़कों का भार लड़कियों के भार से 0.02 पौन्ड अधिक होता है । 85 प्रतिशत शिशुओं का भार 6 से 9 पौन्ड के बीच होता है । जन्म के बाद के एक सप्ताह में शिशु का वजन पहले कम होता है, किन्तु इसके बाद भार में तीव्र गति से वृद्धि होती है । यह देखा गया है कि प्रथम चार माह में 14 पौन्ड, 1 वर्ष में 21 पौन्ड एवं 6 वर्ष में 40 पौन्ड के लगभग भार होता है ।

3 **मांसपेशियाँ** (muscles): - जन्म के मांसपेशियाँ छोटी तथा कोमल होती हैं किन्तु आयु के बढ़ने के साथ-साथ नवजात शिशु की मांसपेशियाँ अधिक विकसित होने लगती हैं। जन्म के मांसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का 23 प्रतिशत होता है ।

4 **हड्डियाँ:** (Bones): - जन्म के समय शिशु के शरीर में कुल 270 हड्डियाँ होती हैं । ये हड्डियाँ कोमल तथा लचीली होती हैं । आयु में वृद्धि के साथ-साथ हड्डियाँ कठोर होती जाती हैं । हड्डियों के कठोर होने की प्रक्रिया को 'अस्थिकरण' कहते हैं । अस्थिकरण की प्रक्रिया में कैल्शियम, फॉसफोरस व अन्य खनिजों का योगदान होता है।

5 **दाँत** (Teeth): - जन्म के शिशु के मुख में एक भी दाँत नहीं होता है, किन्तु 6 माह की आयु में उसके दूध के दाँत निकलने प्रारम्भ होते हैं । 4 वर्ष की आयु में लगभग सभी दाँत निकल आते हैं । 5 वर्ष की आयु से बालक के स्थायी दाँत भी निकलने लगते हैं ।

6 **शारीरिक अंगों का विकास** (Development of Physical Organs): - शरीर के सभी अंगों के विकास का अनुपात समान नहीं होता है । भ्रूणावस्था में विकास सिर से पैरों की ओर होता है, अत: नवजात शिशु का सिर उसके हाथ-पैरों की अपेक्षा अधिक बड़ा होता है । आयु बढ़ने के साथ-साथ सिर अपेक्षाकृत छोटा रह जाता है और हाथ-पैर लम्बाई में बढ़ते जाते हैं ।

7 **आन्तरिक अंगों का विकास** (Development of Internal Organs): - शरीर के आन्तरिक अंगों जैसे- फेफड़े, स्नायुमंडल, नाड़ियाँ, पाचन अंग आदि का विकास भी जन्म के तुरन्त बाद आरम्भ हो जाता है ।

8 **हृदय एवं मस्तिष्क** (Heart and Brain): - जन्म के साथ ही श्वास लेना एवं रक्त प्रवाह दोनों क्रियाएँ आरम्भ हो जाती हैं । जब नवजात शिशु क्रन्दन करता है तो उसके फेफड़ों में हवा भर जाती है, और उसकी श्वसन क्रिया आरम्भ हो जाती है । जन्म के समय हृदय की धड़कन बड़ी तेज रहती है । प्रथम माह तक शिशु के हृदय की धड़कन 140 बार प्रति मिनट होती है । 6 वर्ष तक की आयु तक हृदय की धड़कन में स्थिरता के कारण धड़कन 100 बार प्रति मिनट तक पहुँच जाती है ।

मस्तिष्क का भार जन्म के समय 350 ग्राम तक होता है, जो सम्पूर्ण शरीर के भाग का 1/8 होता है । चार वर्ष तक की आयु की मस्तिष्क का भार 80 प्रतिशत तक बढ़ जाता है, शेष 20 प्रतिशत भार में वृद्धि शैशवावस्था के बाद होती है ।

3.4.2 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

6 से 12 वर्ष के मध्य का काल बाल्यावस्था होता है । प्राय: यह देखा गया है कि बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की गति मन्द (Slow) हो जाती है । इसके कारण बालक परिपक्व सा दिखाई देता है किन्तु होता नहीं है । रौस (ROSS) ने इसको मिथ्या परिपक्वता (Pseudo-Maturity) का काल बताते हुए लिखा है - "शारीरिक और मानसिक स्थिरता बाल्यावस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है ।" बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1 **भार** (Weight) - बाल्यावस्था में बालक का भार तेज गति से बढ़ता है । 6 से 8 वर्ष की आयु में लड़कों भार लड़कियों से अधिक होता है किन्तु 11 वर्ष की आयु की बाद लड़कियों के भार में लड़कों से अधिक वृद्धि होती है ।

2 **लम्बाई** (Height) - शैशवावस्था की तुलना में बाल्यावस्था में लम्बाई बढ़ने की गति धीमी रहती है । इस अवस्था में बालक के शरीर की लम्बाई में 10 से 12 इंच तक की वृद्धि होती है । लड़के लड़कियों की लम्बाई में अन्तर 8 वर्ष की आयु से आरम्भ हो जाता है । 8 वर्ष की आयु से डलियों के शरीर की लम्बाई लड़कों से अधिक हो जाती है । यह अन्तर लगभग एक इन्च का रहता है ।

3 **मस्तिष्क** (Brain) - मस्तिष्क का भार भी बाल्यवस्था में बढ़ता है । 8 वर्ष तक की आयु प्राप्त करने तक मस्तिष्क का 90 प्रतिशत तक आकार पूरा हो जाता है ।

4 **हड्डियाँ** (Bones) - बालक के हड्डियों की संख्या इस अवस्था में बढ़ने लगती है । साथ ही साथ अस्थिकरण (Ossification) में वृद्धि होती है । 6 से 10 वर्ष तक की आयु के मध्य हड्डियों की संख्या 350 हो जाती है । इसके बाद 2 वर्ष तक हड्डियों का अस्थिकरण होता है । लड़कियों में अस्थिकरण की प्रक्रिया लड़कों से पहले प्रारम्भ हो जाती है ।अस्थिकरण की प्रक्रिया की प्रक्रिया के फलस्वरूप हड्डियों का लचीलापन समाप्त होने लगता है तथा उनमें कड़ापन (Stiffness) आने लगता है ।

5 **माँसपेशियाँ** (Muscles) - माँसपेशियों का विकास का धीमी गति से होता है । 9 वर्ष की आयु के बालक की माँसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का 27 प्रतिशत होता है।

6 **पैर एवं भुजाएँ** (Legs and Arms) - बाल्यावस्था में पैरों के विकास की गति हाथों के विकास की गति से कुछ मन्द होती है ।

7 **दाँत** (Teeth) - 6 वर्ष की आयु में बालकों के स्थाई दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं। 8 वर्ष तक की आयु तक 7 दाँत, 10 वर्ष की आयु में लगभग 15 दाँत और 12 वर्ष की आयु में लगभग 25 दाँत निकल आते हैं ।

8 **आन्तरिक अंग** (Internal Organs) - जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती है आन्तरिक अंगों का भी विकास होता है । 6-9 वर्ष की आयु तक फेफड़ों का आकार नहीं बढ़ता है । पाचन क्रिया के अंग 12 वर्ष तक की आयु में परिपक्व हो जाते हैं ।

9 **सिर का आकार** (Size of Head) - बाल्यावस्था में सिर का अनुपात क्रमश: शरीर के अन्य अंगों की तुलना में पहले से कम हो जाएगा । बाल्यावस्था के अन्त तक सिर का आकार तथा भार दोनों में वृद्धि होती है ।

3.4.3 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

बाल्यावस्था की समाप्ति पर अर्थात् 12 वर्ष के पश्चात किशोरावस्था का प्रारम्भ होता है । किशोरावस्था को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के बीच का संक्रमण काल (Transistation Period) माना गया है । इस अवस्था में ही प्रजनन क्षमता (Reproductive Power) का विकास होता है । यह अवस्था 19 वर्ष तक चलती है । किशोरावस्था में लड़के तथा लड़कियों का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है । इस अवस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन निम्नलिखित हैं -

1 **लम्बाई** (Height) - किशोरावस्था में लड़के तथा डलियों दोनों की लम्बाई बढ़ती है । लड़कों की लम्बाई प्राय: 18 वर्ष तक तथा लड़कियों की लम्बाई 16 वर्ष तक बढ़ती है, और वे अपनी अधिकतम लम्बाई प्राप्त कर लेते हैं । किशोरावस्था में लड़कों की लम्बाई, लड़कियों की तुलना में अधिक होती है । अठारह वर्ष की आयु का औसत बालक इसी आयु की औसत बालिका से अधिक लम्बा होता है ।

2 **भार** (Weight) - इस अवस्था में लड़के-लड़कियों के भार में तीव्र वृद्धि होती है । लड़कों का भार लड़कियों की भार की अपेक्षा तेजी से बढ़ता है । किशोरावस्था के अंत में लड़कों का औसत लडकियों के औसत भार की तुलना में अधिक होता है ।

3 **हड्डियाँ** (Bones) - किशोरावस्था में बालक की हड्डियों के अस्थिकरण अर्थात् कठोर बनने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है । इसके कारण हड्डियों का लचीलापन (Flexibility) कम हो जाता है, और वे कठोर हो जाती हैं । इस अवस्था में हड्डियों की संख्या कम होने लगती है । कुछ हड्डियाँ आपस में जुड़ कर एक हो जाती हैं । प्रौढ़ व्यक्ति मे हड्डियों की संख्या 206 रह जाती हैं ।

4 **सिर तथा मस्तिष्क** (Head and Brain) - सिर तथा मस्तिष्क का विकास बहुत मन्द गति से होता है । 16 वर्ष की आयु तक सिर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है ।

5 **दाँत** (Teeth) - बाल्यावस्था के अन्त तक 27-28 स्थाई दाँत निकल जाते हैं । किशोरावस्था के अन्त में या प्रौढ़ावस्था के आरम्भ में प्रज्ञादन्त या अक्लदाढ़ (Wisdom Teeth) निकलते हैं । कुछ व्यक्तियों में अक्लदाढ़ नहीं निकलती है ।

6 **माँसपेशियाँ** (Muscles) - किशोरावस्था में शरीर की माँसपेशियों का विकास तेजी से होता है । इस अवस्था की समाप्ति पर माँसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का

लगभग 45 प्रतिशत हो जाता है । माँसपेशियाँ बाल्यावस्था की अपेक्षा कठोर होने लगती हैं ।

7 **अन्य परिवर्तन** (Other Changes) - किशोरावस्था की समाप्ति तक किशोरों तथा किशोरियों की ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, कान, नाक, त्वचा तथा जिह्वा) तथा कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुख आदि) का पूर्ण विकास हो जाता है । ये अंग शारीरिक दृष्टि से पूरी तरह परिपक्व हो जाते हैं । इसी कारण किशोरावस्था में सभी अंग पुष्ट तथा सुडौल दिखाई देते हैं । किशोरों के कन्धे चौड़े हो जाते हैं एवं मुख पर दाढ़ी तथा मूँछ आने लगती है । किशोरियों के शरीर में भी काफी परिवर्तन होते है । प्रजनन अंगों का विकास भी किशोरावस्था का मुख्य शारीरिक परिवर्तन है । पीयूष ग्रन्थि (Pitutary Gland) का स्त्राव अधिक होने लगता है । थायराइड ग्रन्थि के सक्रिय हो जाने के कारण किशोरों की आवाज भारी होने लगती है तथा किशोरियों की आवाज सुरीली होती जाती है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विकास के विभिन्न आयाम कौन-कौन से हैं ?
2. बाल्यावस्था को मिथ्या परिपक्वताकाल क्यों कहा जाता है?
3. किशोरावस्था में क्या शारीरिक परिवर्तन होते हैं?

3.4.4 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शैशवावस्था, बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास पर बहुत से कारकों का प्रभाव होता है । उनमें से प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं -

1 **वंशानुक्रम** (Heredity) - शारीरिक विकास की गति तथा प्रकार पर बालक के माता-पिता के स्वास्थ्य शारीरिक संरचना तथा पूर्वजों के शारीरिक दोषों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । प्राय: यह देखा गया है कि स्वस्थ माता-पिता की संतान भी शारीरिक रूप से स्वस्थ होती है तथा अस्वस्थ माता-पिता की सन्तान भी अस्वस्थ ही होती है । इसका कारण पूर्वजों तथा माता-पिता की अनुवांशिकता का सन्तान में स्थानान्तरण है ।

2 **वातावरण** (Environment) - बालक के शारीरिक विकास पर उसको मिलने वाले वातावरण का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप तथा स्वच्छ वातावरण ये मुख्य तीन तत्व हैं जो बालक के शारीरिक विकास को उचित दिशा प्रदान करते हैं । अंधेरा वातावरण, शुद्ध वायु का अभाव तथा अस्वच्छ वातावरण में रहने वाले बालक प्राय: रोगी होते हैं एवं शारीरिक विकास मन्द गति से होता है ।

3 **संतुलित भोजन** (Balanced Diet) - समस्त पौष्टिक तत्वों से भरपूर तथा संतुलित भोजन भी शारीरिक विकास को सामान्य गति से होने में सहायक होता है । उत्तम शारीरिक स्वास्थ के लिए सही समय पर, नियमित रूप से पौष्टिक एवं संतुलित आहार का मिलना आवश्यक है । निर्धन परिवारों में पौष्टिक भोजन के अभाव के कारण तथा नियमित आहार नहीं लेने वाले बालकों का शारीरिक विकास समुचित रूप से नहीं होता है ।

4 **खेल तथा व्यायाम** (Play and Exercise) - खेल तथा व्यायाम से माँसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं तथा रक्त संचार की गति नियमित होती है । बालकों को खुली हवा में खेलने देने तथा नियमित व्यायाम करवाने से भी शारीरिक विकास सही तरह से होता है ।

5 **दिनचर्या** (Daily Routine) - बालक की दिनचर्या का भी उसके शारीरिक विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । नियमित रूप से सही समय पर दैनिक क्रियाएँ जैसे - खाना, नहाना, सोना, पढ़ना, खेलना आदि करने से भी शरीर का विकास सही ढंग से होता है ।

6 **परिवार की स्थिति** (Family Status) - परिवार की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्थिति से भी बालक का शारीरिक विकास प्रभावित होता है । शारीरिक विकास सदैव रहन-सहन के तरीकों, खान-पान आदि से प्रभावित होता है ।

7 **निद्रा तथा विश्राम** (Sleep and Rest) - स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए निद्रा तथा विश्राम भी आवश्यक हैं । थकान अधिक होने पर शारीरिक विकास में अवरोध होता है । निद्रा एवं विश्राम थकान को दूर करके बालक के शारीरिक विकास को गति प्रदान करती है । शैशवावस्था में बालक को निद्रा की सर्वाधिक आवश्यकता होती है । नवजात शिशु अधिकांश समय सोते ही रहते हैं । आयु बढ़ने पर निद्रा की अवधि कम होती जाती है । 3-4 वर्ष का शिशु 12 घंटें सोता है । बाल्यावस्था में दस घंटे की निद्रा तथा किशोरावस्था में आठ घंटे की निद्रा पर्याप्त होती है ।

8 **प्रेम तथा सहानुभूति** (Love and Sympathy) - माता-पिता अध्यापकों, परिवार के सदस्यों तथा अन्य व्यक्तियों से मिलने वाला प्रेम, स्नेह तथा सहानुभूतिपुर्ण व्यवहार बालक के विकास को दुगुना कर देता है । वे बालक जो माता-पिता का यथोचित स्नेह प्राप्त नहीं कर पाते, कुण्ठित हो जाते हैं, अत: उनका शारीरिक विकास भी सही प्रकार से नहीं हो पाता है । सहानुभूति तथा प्रेम की कमी से बालक में आत्मविश्वास की कमी आती है, जिससे शारीरिक विकास पर ऋणात्मक प्रभाव होता है । इसके विपरीत अध्यापकों, पारिवारिक सदस्यों तथा सम्बन्धियों का स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा बालक में सुरक्षा की भावना शारीरिक विकास को सही दिशा प्रदान करती है ।

9 **अन्य कारक** (Other Factors) - कुछ अन्य कारक भी शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं । ये कारक हैं - (1) रोगों से शारीरिक विकृति (2) भौगोलिक परिस्थितियाँ (3) गर्भवती माता का स्वास्थ ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. शारीरिक विकास पर वंशानुक्रम तथा वातावरण का क्या प्रभाव होता है ?
2. निद्रा तथा विश्राम शारीरिक विकास को कैसे प्रभावित करते हैं ?
3. शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारक कौन-कौन से हैं ?

3.5 गामक विकास

गामक नवजात शिशु अपनी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर करता है । शिशु का स्वयं पर कोई नियन्त्रण नहीं होता है, इसी कारण उसकी गतियाँ भी आकस्मिक ही होती हैं । गामक विकास नवजात शिशु में बहुत कम होता है किन्तु धीरे-धीरे उसमें वृद्धि होती जाती है । अपनी क्रियाओं पर नियन्त्रण करने का प्रयास करने पर गामक विकास तेजी से होता है, जो कि जन्म के कुछ समय पश्चात् ही प्रारम्भ हो जाता है । गामक विकास को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है -

"गामक विकास का तात्पर्य उन शारीरिक क्रियाओं से है जो स्नायुओं तथा माँसपेशियों की क्रियाओं के समन्वय द्वारा सम्भव होती हैं । इन दोनों के समन्वय से बालक की क्रियाओं में स्थिरता तथा स्पष्टता आ जाती है । जैसे - शिशु के हाथ-पैरों की माँसपेशियाँ (Muscles) तथा तन्त्रिकाएँ (Nerves) विकसित रहती हैं और उन दोनों के बीच ठीक ढंग से समन्वय होता है, उस शिशु के चलने की प्रकिया भी तेजी से होती है ।

"Motor development is concerned with those activities which are possible due to co-ordination of activities of nerves and muscles. As a result of co-ordination between these activities movement of child become distinct."

बालक का गामक विकास एक निश्चित क्रम में होता है, फिर भी यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के द्वारा प्रभावित होता है । कुछ बालक जल्दी चलना प्रारम्भ करते हैं तो कुछ विलम्ब से चलना प्रारम्भ करते हैं । हरलॉक ने गामक विकास के सम्बन्ध में कहा है - "गामक विकास का अर्थ है माँसपेशियों, तन्त्रिकाओं तथा तन्त्रिका केन्द्रों की समन्वित क्रियाओं द्वारा शारीरिक गति पर नियन्त्रण प्राप्त करना ।"

- हरलॉक

"Motor development means the development of control over the bodily movements through the coordinated activity of nerve centers, nerves and muscles."

गामक विकास के नियम

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने गामक विकास के निम्नलिखित नियम बताये हैं -

(1) **माँसपेशियों तथा तन्त्रिकाओं मे परिपक्वता का सिद्धान्त** (Principles of Maturation of Muscles and Nerve) - बालक के जन्म के समय उसकी सहज क्रियाओं (Reflex Action) का नियन्त्रण होता है । 1 वर्ष बाद बालक कुछ क्रियाएँ करना प्रारम्भ कर देता है । जैसे - चलना, वस्तुओं को पकड़ना आदि । 5 वर्ष का होने पर इन सब क्रियाओं में सन्तुलन भी दिखाई पड़ता है ।

(2) **परिपक्वता तत्परता का सिद्धान्त** (Principle of Maturational Readiness) - बालक को किसी प्रकार का गामक कौशल (Motor Skill) तब तक नहीं सिखाया जा

सकता है जब तक उसकी परिपक्वता (Maturity) पूर्ण नहीं हो जाये । परिपक्वता पूर्ण होने की अवस्था ही परिपक्वता तत्परता (Maturational Readiness) कहलाता है । इससे पहले दिया जाने वाला प्रशिक्षण स्थाई नहीं होता है ।

(3) **एकरूपता का सिद्धान्त** (Principle of Uniform Pattern) - बालकों के गामक विकास में निश्चित क्रम होते हैं, वे क्रम हैं - **(1) मस्तकाधोमुखी विकास क्रम** (Cellalocaudal Sequence of Development) **(2) निकट-दूर विकास क्रम** (Proximodistal sequence of Development)

मस्तकाधोमुखी विकास क्रम में गामक विकास सिर से पैर की ओर होता है । विकास पहले सिर तथा गर्दन के भाग में, फिर बाँह तथा हाथ के हिस्सों में, फिर धड़ में और अन्त में पैर तथा अँगुलियों में होता है । इससे बालक सिर तथा गर्दन की माँसपेशियों को नियन्त्रित करना सीखता है, उसके बाद हाथ, बाँह तथा पेट की माँसपेशियों पर नियन्त्रण करता है और अन्त में पैर की माँसपेशियों पर नियन्त्रण करता है ।

निकट दूर विकास में गामक विकास पहले शरीर के केन्द्र में स्थित अंगों का होता है, फिर शरीर के छोर (Preiphery) पर आने वाले अंगो का विकास होता है ।

(4) **गामक विकास के लिए मानक स्थापित करने की संभावना का सिद्धान्त** (Principle of Possibility of Establishment of Norms for Motor Development) - कोई भी शिशु किस तरह का गामक व्यवहार करेगा इसके लिए मानक भी स्थापित किये जा सकते हैं । मनोवैज्ञानिको ने बालकों के बैठने, खड़े होने, चलने, पकड़ने आदि के तरीकों से गामक विकास के मानक स्थापित कर दिये हैं ।

(5) **व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त** (Principle of Individual Differences) - भिन्न-भिन्न बालकों का गामक विकास भी भिन्न-भिन्न होता है, जैसे कोई बालक 6 माह पर बैठता है तो कोई 10 माह पर बैठता है । अत: यह कहा जा सकता है कि गामक विकास व्यक्तिगत भिन्नता से प्रभावित होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. गामक विकास से आप क्या समझते हैं ?
2. गामक विकास के नियम कौन-कौन से हैं ?
3. मस्तकाधोमुखी विकास- क्रम क्या होता है ?

3.5.1 शैशवावस्था में गामक विकास

जन्म के कुछ समय पश्चात् ही शिशु का गामक विकास प्रारम्भ हो जाता है । शिशु पहले सिर हिलाता है, फिर धड़ तथा अन्त में पैरों को हिलाने लगता है । 2 माह का शिशु पेट के बल लेटने पर सिर का ऊपर उठाता है । शिशु 3 माह का होने पर धड़ को उठाना सीख जाता है । 4 माह का शिशु पीठ के बल लेटने पर सिर उठाने का प्रयास करता है । शिशु जब 5 माह का हो जाता है तो माँ-बाप के हाथों या तकिये के सहारे के साथ बैठना प्रारम्भ कर देता

है । 5 माह का होने पर शिशु गोद में बैठ जाता है । इसके पश्चात् 6 माह पूर्ण करने पर शिशु कुर्सी पर स्वयं के नियन्त्रण से बैठने लगता है । शिशु 7 माह का होने पर बिना किसी सहारे के बैठ जाता है । 8 माह होने पर शिशु टेबल, कुर्सी, चारपाई आदि को पकड़कर खड़ा होना सीख जाता है । जब शिशु 9 माह का हो जाता है तो सामान पकड़कर स्वयं खड़ा होने लगता है । इसके बाद 10 माह का होने पर घुटनों के बल चलने लगता है । 11 माह का शिशु हाथ की उंगली पकड़कर एक-दो कदम चलने लगता है । जब शिशु 12 माह अर्थात् 1 वर्ष का हो जाता है तो टेबल, कुर्सी, चारपाई आदि को पकड़कर चलने लगता है । 13 माह का शिशु होने पर घिसट-घिसट तक सीढ़ी पर चढ़ना सीख जाता है । 14 माह पर शिशु अकेले खड़ा होने लगता है । शिशु 15 माह का होने पर अकेले ही बिना सहारे के चलने लगता है । इससे यह स्पष्ट है कि प्रारम्भ में शिशु का गामक विकास क्रम होता है अत: वह अपनी गामक क्रियाओं पर नियन्त्रण कम कर पाता है, किन्तु धीरे-धीरे वह गामक क्रियाओं पर सफलतापूर्वक नियन्त्रण करने लगता है । साथ ही साथ शिशु में आँखों की गति (Eye Movement) करने की क्षमता भी उत्पन्न हो जाती है । 4 माह का शिशु दूसरों को मुस्कराते देख कर स्वयं भी मुस्कराने लगता है । यह सामाजिक मुस्कान (Social Smile) कहलाती है । गामक विकास में तीन तरह की क्रियाएँ शामिल की जाती हैं - शरीर को घुमाना, बैठना तथा मल-मूत्र त्यागने के अंगों की क्रियाओं पर नियन्त्रण । सिर और धड़ की क्रियाओं के साथ-साथ हाथ और बाँह की क्रियाओं में भी विकास होता है । ये क्रियाएँ हैं - अँगूठा चूसना, वस्तु की ओर हाथ बढ़ाना, वस्तु को पकड़ना (Grasping), अपना बचाव (Defenssive Activities) करना आदि ।

11 से 15 माह की उम्र में जब शिशु चलना प्रारम्भ कर देता है तो उसका माँसपेशियों पर नियन्त्रण और अधिक बढ़ जाता है ।

3.5.2 बाल्यावस्था में गामक विकास

बाल्यावस्था में बालक का अपनी गतियों पर नियन्त्रण अधिक हो जाता है अत: सभी क्रियाएँ सुडौलता के साथ कर पाता है । स्नायु क्रियाओं तथा माँसपेशी क्रियाओं में समन्वय बढ़ने के कारण बालक अपने कार्य स्वयं करने लगता है । जैसे - दाँत साफ करना, नहाना, बाल सवाँरना, कपड़े पहनना, खाना आदि । शरीर में स्फूर्ति अधिक होने की वजह से बालक ऐसे खेलों में भाग लेना पसन्द करता है जिनमें शारीरिक श्रम ज्यादा करना पड़े । इसके साथ-साथ विभिन्न कौशलों में भी बालक की रूचि बढ़ती जाती है । जैसे - चित्रकारी, कसीदाकारी, काष्ठ कला, चिकनी मिट्टी के खिलौने बनाना आदि । बालक गेंद को सरलता से पकड़ने में सक्षम हो जाता है, अत: विभिन्न प्रकार के खेलों जिनमें गेंद का प्रयोग होता है जैसे - क्रिकेट, वॉलीबाल आदि में रूचि लेने लगता है । बाल्यावस्था में दौड़ना, चढ़ना, उछलना-कूदना, संतुलन रखना और नृत्य करना आदि क्रियाएँ भी बालक सरलता से सम्पादित कर लेता है । बालक वृत्त बनाना, रेखा खींचना, चित्र खण्ड पहेली बनाना आदि सीख जाता है । गामक कौशल का विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है । पहले बालक सरल कार्यो को करना सीखता है, फिर विशिष्ट कार्यो को करना सीखता है । बालक अपने विशिष्ट कार्य स्वयं करने लगता है । यदि

इन कार्यो को करने में कोई बाधा पहुँचाता है तो बालक को बुरा लगता है । माता-पिता, शिक्षकों का यह कर्तव्य है कि बालक को आत्म-निर्भर बनने में सहायता प्रदान करें । बाल्यावस्था में लड़कों की गामक निपुणता लड़कियों से अधिक होती है (Jenkins) ।

बाल्यावस्था में गामक विकास केवल स्नायु-पेशीय क्रिया (Neuro Muscular Activity) तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि अन्य क्रियाएँ भी इसमें सम्मिलित की जाती हैं। विभिन्न खेल क्रियाएँ तथा आँख एवं हाथ के समन्वित गति से होने वाली क्रियाएँ भी बालक सीखने लगता है । जैसे - सुई में धागा डालना, चित्रों में रंग भरना, कागज को विभिन्न आकृति में काटना आदि ।

3.5.3 किशोरावस्था में गामक विकास

किशोरावस्था में भी गामक विकास यथेष्ट होता है, क्योंकि इस आयु में सभी प्रकार का विकास होता है, तथा इस आयु में लड़के लड़कियों की रूचियाँ सृजनशीलता (creativity) में बदल जाती है । इस अवस्था में स्नायु विकास (Nervous Development) भी अधिक होता है । इस अवस्था में माँसपेशियों का विकास अलग-अलग रूप में होने के कारण किशोरों की क्रियाएँ भी भिन्न-भिन्न हो जाती हैं । कुछ किशोर कुश्ती लड़ने में रूचि लेते हैं, कुछ मुग्दन घुमाने में निपुण होतें हैं । बहुत से किशोर शक्ति एकत्रित करने के लिए वजन उठाने (Weight Lifting) की क्रिया करते हैं । कुछ किशोर पिंडलियों को मजबूत बनाने वाले खेल हाँकी, फुटबॉल आदि खेलते हैं । भुजाओं को सुडौल बनाने वाले खेल जैसे - वॉलीबॉल, बास्केटबॉल क्रिकेट आदि में भी किशोरों की विशेष रूचि होती है । लड़कियाँ प्राय: खो-खो, हाँकी, योग से सम्बन्धित क्रियाएँ आदि अधिक पसन्द करती हैं । आँखों और हाथों में समन्वय अधिक हो जाने के कारण विशिष्ट कौशलों में दक्षता प्राप्त करना किशोरों को ज्यादा अच्छा लगता है । विभिन्न शिल्प क्रियाएँ जैसे - लकड़ी के खिलौने बनाना, सूत कातना, किताबों की बाइन्डिग करना बागवानी करना, सिलाई कार्य करना आदि भी गामक विकास के फलस्वरूप देखने को मिलती है । किशोरावस्था में लिंग भिन्नता (Sex Difference) होने पर भी गामक विकास का प्रारूप अलग--अलग होता है । प्राय: एक औसत लड़के की गामक योग्यताएँ एक औसत लड़की से अधिक होती है । लड़कियों की गामक योग्यता 14 वर्ष की आयु में अधिकतम होती है जबकि लड़कों की गामक योग्यता 18 वर्ष की आयु तक बढ़ती रहती है । शक्ति तथा गति का व्यय करवाने वाली क्रियाओं में लड़के अधिक योग्यता दर्शाते हैं, जबकि ध्यान केन्द्रित करने वाली क्रियाओं, सूक्ष्म निरीक्षण करने वाली क्रियाओं में लड़कियाँ ज्यादा योग्य होती हैं । कुछ खेल जैसे - बैडमिन्टन, टेबल-टेनिस तथा नष्त्य-नाटक आदि में लड़के-लड़कियाँ समान रूचि प्रदर्शित करते हैं ।

स्व-मूल्यांकन प्रश्न

1. शैशवास्था में गामक विकास कैसे होता है ?
2. बाल्यावस्था में गामक विकास में क्या परिवर्तन होते हैं?
3. किशोरों तथा किशोरियों के गामक विकास में क्या अन्तर होता है?

3.5.4 गामक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1 **वंशानुक्रम** (Heredity) - वंशानुक्रम का गामक विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है । बालक के गुण स्वभाव, रंग, शारीरिक संरचना आदि पर पैतृक जिन्स का प्रभाव पड़ता है । मानव व्यवहार और संस्कारों पर भी इसकी छाया पड़ती है ।

2 **वातावरण** (Environment) - बालक के चारों ओर का वातावरण शुद्ध हो तो गामक विकास पर्याप्त मात्रा में होता है । वातावरण दो प्रकार का होता है प्रकृति का वातावरण, दूसरा होता है सामाजिक वातावरण । दोनों ही वातावरण बालक के गामक विकास को प्रभावित करते हैं । प्राकृतिक वातावरण में बालक प्रकृति के करीब रह कर शुद्ध वातावरण पाता है । सामाजिक वातावरण में परिवार और समाज, विद्यालय आदि का प्रभाव पड़ता है ।

3 **व्यक्तिगत भिन्नता** (Individual Differences) - प्राय: यह देखा गया है कि गामक विकास व्यक्तिगत भिन्नताओं द्वारा प्रभावित होता है । कुछ बालक अपनी माँसपेशियो (Muscles) तथा स्नायुओं (Nerves) में समन्वय करना जल्दी सीख जाते हैं तथा कुछ देरी से सीखते हैं । अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वयं की गति से सीखता है ।

4 **रोगों की उपस्थिति** (Presence of Disease) - रोगग्रस्त बालकों का गामक विकास कम हो पाता है । शारीरिक रूप से स्वस्थ बालकों का गामक विकास अधिक होता है । शरीर में रोग होने पर बालक का स्नायविक क्रियाओं (Nervous Activities) पर कोई नियन्त्रण नहीं रह जाता है ।

5 **खेल तथा व्यायाम** (Play and Exercise) - गामक विकास पर खेलों का सर्वाधिक प्रभाव होता है । गामक विकास अधिक होने पर बालक खेल तथा व्यायाम में अधिक रूचि लेते हैं । किशोरावस्था में गामक विकास की चरम अवस्था होती है, उस समय किशोर अधिक से अधिक खेल खेलना पसंद करते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. वातावरण का गामक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. व्यक्तिगत भिन्नताएँ गामक विकास को कैसे प्रभावित करती हैं?
3. खेल तथा व्यायाम का विकास में क्या योगदान है?

3.6 सारांश

बालक की वृद्धि तथा विकास का अत्यन्त महत्व होता है । वृद्धि शारीरिक अभिवृद्धि को बताती है जबकि विकास प्रगतिशील परिवर्तनों को दर्शाता है । विकास प्रकिया को शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में बाँटा जा सकता है । शैक्षिक दृष्टि से प्रथम तीन अवस्था अधिक महत्वपूर्ण है । विकास की प्रकिया वंशानुक्रम वातावरण, भोजन, बुद्धि, स्वास्थ्य, पारिवारिक परिस्थिति आदि कारकों द्वारा प्रभावित होती है । विकास की प्रकिया में शारीरिक विकास तथा गामक विकास का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है । विभिन्न अवस्थाओं - शैशवास्था,

बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में होने वाले विकास को पृथक-पृथक अवस्थाओं में अध्ययन किया जा सकता है । विकास की प्रारम्भिक अवस्था शैशवास्था होती है । इसमें तीव्र शारीरिक एवं गामक विकासात्मक परिवर्तन होते हैं । बाल्यावस्था में बालक काफी आत्म-निर्भर हो जाता है । साथी बनाने की प्रकिया प्रारम्भ हो जाती है । बालक अपनी जगह स्वयं बनाने का प्रयत्न करता है । किशोरावस्था में शारीरिक विकास परिपक्वता को प्राप्त कर लेता है । इसके बाद शारीरिक परिवर्तन एवं गामक परिवर्तन नही के बराबर होते हैं । शैक्षिक दृष्टि से शारीरिक एवं गामक विकास का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है । शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा विकास के विभिन्न आयामों को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान करे ।

3.7 शब्दावली

नवजात	–	नया जन्म लेने वाला ।
शैशवास्था	–	जन्म से 5 वर्ष तक की अवस्था ।
बाल्यावस्था	–	6 वर्ष से 12 वर्ष तक की अवस्था ।
किशोरावस्था	–	13 वर्ष से 19 वर्ष तक की अवस्था ।
परिपक्वता	–	वह अवस्था जब वृद्धि रूक जाती है ।
गामक विकास		स्नायु तथा पेशियों में समन्वय तथा नियन्त्रण करने की योग्यता ।

3.8 मूल्यांकन प्रश्न

1 विकास की अवस्थाओं से आप क्या समझते हैं? सविस्तार वर्णन कीजिए ।
2 अभिवृद्धि तथा विकास में क्या अन्तर है? इनका परिपक्वता से क्या सम्बंध है?
3 शैशवास्था में बालक के शारीरिक विकास का वर्णन कीजिए ।
4 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास किस प्रकार होता है? सविस्तार वर्णन कीजिए ।
5 किशोरावस्था में क्या-क्या शारीरिक परिवर्तन होते हैं? व्याख्या कीजिए ।
6 बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये ।
7 वंशानुक्रम तथा वातावरण का बालक के शारीरिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है? व्याख्या कीजिये ।
8 शैशवावस्था में गामक विकास की व्याख्या कीजिये ।
9 बाल्यावस्था में होने वाला शारीरिक विकास शैशवास्था में होने वाले शारीरिक विकास से किस प्रकार भिन्न है
10 गामक विकास का अभिप्राय क्या है? यह शारीरिक विकास से किस प्रकार भिन्न है?
11 किशोरावस्था में गामक विकास की व्याख्या कीजिये ।
12 गामक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये ।

3.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. अरूण कुमार सिंह	:	शिक्षा मनोविज्ञान ।
2. जी0 एस0 वर्मा	:	अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का मनोविज्ञान
3. भाई योगेनद्रजीत	:	शिक्षा मनोविज्ञान ।
4. एस0 पी0 गुप्ता	:	उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान ।
5. एस0 एस0 माथुर	:	शिक्षा मनोविज्ञान ।
6. जे0 सी0 अग्रवाल	:	एसेन्शियल्स ऑफ एजूकेशन साइकोलॉजी ।
7. बी.एन0 शर्मा	:	शिक्षा मनोविज्ञान
8. Crow and Crow	:	Educational Psychology.
9. Cole and Bruce	:	Educational Psychology.
10. Bigge and Hunt	:	Psychological Foundation of Education.
11. Dravet Hanes	:	An Introduction to Psychology of Education.
12. Gigge and Hunt	:	Psychological Foundation of Education.
13. Gates, Jeshield and Others	:	Educational Psychology.
14. Jha B.N.	:	Mordern Educational Psychology.
15. Goodenough	:	Manual of Child.
16. Ruth Strang	:	Guided Study and Home Work.
17. Ruth Strang	:	An Introduction to Child Psychology.
18. Valentine, C.W.	:	Psychology and Its Bearing on Education.
19. Skinner and Marimam	:	Child Psychology.
20. Hurlock, Elizabeth	:	Child Development.
21. Koleshik, Walter B	:	Educational Psychology.

इकाई 4

पियाजे के अनुसार बालक का ज्ञानात्मक विकास
(Cognitive Development According to Piaget)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 ज्ञानात्मक विकास परिचय

4.2 पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास ।

4.3 पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक कार्यविधि ।

4.4 संज्ञानात्मक विकास के प्रमुख चरण

- 4.4.1 संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण का विकास
- 4.4.2 प्रत्यय निर्माण
- 4.4.3 भाषा विकास
- 4.4.4 स्मृति विकास
- 4.4.5 समस्या समाधान योग्यता

4.5 बालकों का ज्ञानात्मक विकास तथा शिक्षा

4.6 पियाजे की ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाऐं

- 4.6.1 संवेदनात्मक गामक अवस्था
- 4.6.2 पूर्व संक्रियात्मक अवस्था
- 4.6.3 मूर्त संक्रिया अवस्था
- 4.6.4 औपचारिक संक्रिया अवस्था

4.7 ज्ञानात्मक विकास एवं शिक्षा

4.8 सारांश

4.9 मूल्यांकन प्रश्न

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

बालक के ज्ञानात्मक पक्ष का विकास उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है यह निरतंर वाली प्रक्रिया है । इस इकाई का उद्देश्य पियाजे के अनुसार बालक के ज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्था को जानना है इस इकाई की समाप्ति के बाद आशा है शिक्षार्थी जान सकेगा -

- ज्ञानात्मक विकास का अर्थ समझ सकेंगे ।
- पियाजे के ज्ञानात्मक विकास की कार्यविधि को समझ सकेंगे ।
- संगठन एवं अनुकूलन की प्रक्रिया को आत्मसात् कर सकेंगें ।

- विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले ज्ञानात्मक विकास के चरणों को समझ कर अंतर कर सकेंगे।
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं को जान सकेगें ।
- ज्ञानात्मक विकास को दृष्टिगत रखते हुए सीखने की और प्रवृत हो सके ।

4.1 ज्ञानात्मक विकास परिचय

बालक के ज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया के, अन्तर्गत मानसिक योग्यताओं व शक्तियों के विकास को समाहित किया जाता है । मानसिक योग्यता से आशय तर्क, चिंतन, मनन, ध्यान, स्मृति, कल्पना शक्ति, अनुमान शक्ति, प्रत्यक्षीकरण की शक्ति से होता है । बालकों में यह विकास तीव्र गति से न होकर एक लम्बी व धीरे-धीरे चलने वाली प्रक्रिया से होता है । बालक जन्म के समय की अवस्था में समस्त मानसिक एवं बौद्धिक कार्य करने की स्थिति में नहीं होता किंतु जैसे-जैसे शारीरिक विकास एवं वृद्धि की, क्रिया चलती है । वैसे-वैसे अवस्थानुरूप उसके कार्य एवं व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है । विकास की अवस्था के चक्र में बाल्यवस्था में बौद्धिक विकास तीव्रता से होता है जो किशोरवस्था के आते-आते पूर्णता या चरमता को प्राप्त करता है ।

संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में बौद्धिक स्तर एवं बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

4.2 पियाजे अनुसार संज्ञानात्मक विकास

जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोवैज्ञानिकों में सबसे अधिक योगदान रहा है । इनका जन्म 9 अगस्त सन् 1896 को स्विटजरलैण्ड में हुआ था । इन्होंने मात्र बाईस वर्ष की आयु में जन्तु विज्ञान Zoology में पी.एच.डी. की थी व जीव विज्ञान व ज्ञान प्राप्ति के साधनों के संदर्भ में 400 से अधिक लेख प्रकाशित किये । विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान देते हुए 16 सितम्बर 1980 को इनका निधन हो गया ।

4.3 पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक कार्यविधि

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक कार्यविधि की दो प्रमुख विशेषताएं होती है । संगठन (Organization) तथा अनुकूलन (Adaptation) । संगठन से तात्पर्य किसी भी घटना, व्यक्ति, सूचना के प्रत्यक्षीकृत बौद्धिक सार्थक पैटर्न से होता है । प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक स्तर के आधार पर सूचनाओं व तथ्यों को स्मृति में एकत्र करता है या निर्माण करता है । इसी आधार पर नवीन परिस्थिति व वातावरण में वह स्वयं को समायोजित करता है । साथ ही नवीन ज्ञान व सूचनाओं को समायोजित करता है । मनुष्य जन्म से क्रियाशील प्राणी है । वह सभी प्रकार की सूचनाओं एवं तथ्यों के संगठन की प्रक्रिया को उस समय भी अपनाता है जबकि उसके पास भाषा एवं बोली नहीं होती है । अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक पूर्व ज्ञान व नवीन अनुभव के मध्य संतुलन स्थापित करता है ।

सीखने की प्रक्रिया में संज्ञानात्मक विकास की कार्यविधि के अन्तर्गत अनुकूलन की प्रक्रिया के दो चरण है- आत्मसातकरण तथा समाविष्टकरण। आत्मसातकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत नवीन सूचनाओं एवं तथ्यों को पूर्ववर्ती विद्यमान संरचनाओं में व्यवस्थित करने से है जबकि समाविष्टकरण से तात्पर्य नवीन अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती विद्यमान बौद्धिक संरचनाओं में परिवर्तन करने की प्रक्रिया से है । इस प्रक्रिया के आधार पर नवीन अनुभव अथवा ज्ञान को उचित व सही ढंग से व्यवस्थित किया जाता है ।

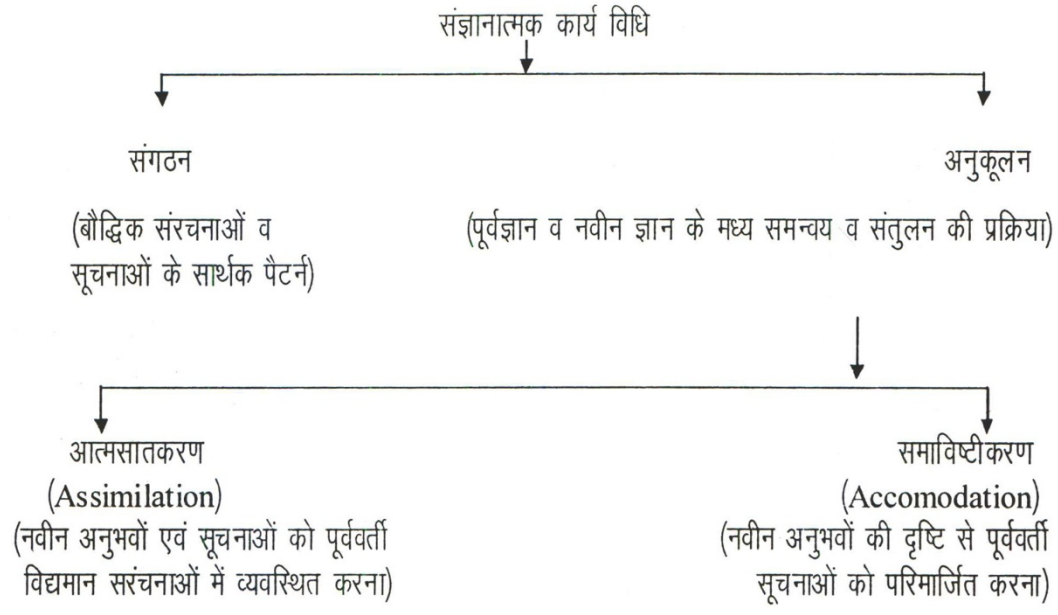

सीखने की प्रक्रिया में नए अनुभव एवं विचारो के समक्ष उपस्थित होने पर बालक पहले उन्हें पूर्व अनुभवों के साथ आत्मसात करने की कोशिश करता है किन्तु यदि उसे लगता है कि वह सही ढंग से सूचनाओं को व्यवस्थित नहीं कर पा रहा है तो पूर्व निर्मित बौद्धिक संरचनाओं में परिवर्तन करके वह समाष्टिकरण की प्रक्रिया अपनाता है । पियाजे का मानना है कि बौद्धिक विकास हेतु व्यक्ति एवं वातावरण के मध्य परस्पर अंतक्रिया होना आवश्यक है ।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है । दो वर्ष का बालक सीखने की प्रक्रिया के अन्तर्गत बौद्धिक संरचना निम्न प्रकार बनाता है । बालक को उसकी माँ दूध का गिलास देती है बालक पूछता है कि यह क्या है ? माँ कहती है यह दूध है । इस आधार पर बालक दूध की संरचना, रंग व स्वाद को आत्मसात कर लेता है । कुछ दिनों के बाद माँ उसे छाछ का गिलास देती है जिसे पहले वह दूध समझ बैठता है ऐसी स्थिति में माँ उसको इन दोनों का अंतर स्पष्ट करती है । माँ के अंतर स्पष्ट करने से पूर्व उसने आत्मीकरण के आधार पर विचार प्रकट किया किंतु अंतर स्पष्ट किये जाने पर समाविष्ट किया । अर्थात् बालक की आयु मानसिक स्तर को दृष्टिगत रखते हुए उसे ज्ञान दिया जाना चाहिए ।

संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में बालक विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न तरीके अपनाते हुए सीखने की क्रिया करता है । पियाजे के अनुसार 18 वर्ष की आयु तक सम्पूर्ण बौद्धिक संरचनाओं के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है । बौद्धिक विकास की प्रक्रिया गतिशील स्व संचालित प्रक्रिया है जो वातावरण एवं परिस्थितियों के परस्पर समन्वय व तालमेल के

आधार पर स्वत: चलती है । बालक पूर्व बौद्धिक संगठनों व नवीन अनुभवों में तालमेल बिठाते हुए सीखने की प्रक्रिया को पूर्ण करता है ।

4.4 संज्ञानात्मक विकास के प्रमुख चरण

बालक के संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया निम्न चरणों में पूर्ण होती है । इस प्रक्रिया के माध्यम से बालक के ज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण चरण मानसिक योग्यता व शक्तियों का विकास होता है । विकास की प्रक्रिया अनवरत चलती है । इसमें परिवर्तन भी धीरे-धीर आता है । बालक स्वयं की आयु के विभिन्न सोपानों में इसके विकास की गति को नियंत्रित करता है यह कभी कम तो कभी तीव्र होती है । बालक के बौद्धिक विकास के चरण निम्न प्रकार है-

4.4.1 संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण का विकास

संवेदन तथा प्रत्यक्षीकरण बौद्धिक विकास प्रक्रिया का आरंभिक चरण माना जाता है । पियाजे के अनुसार मनुष्य जन्म से क्रियाशील प्राणी होता है अर्थात् बालक जन्म के कुछ समय बाद स्वत: ही इन क्रियाओं को करना आरम्भ कर देता है । इस चरण में बालक के द्वारा देखने, सुनने, रोने, स्वाद लेने व महसूस करने की प्रक्रिया की अनुभूति ही को संवेदनात्मक विकास कहा जाता है । इस चरण के आरंभ प्रत्यक्षत: बालक के व्यवहार करने से पता लगता है। बालक अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से घटनाओं एवं क्रियाओं की अनुभूति करता है । इस अवस्था में वह केवल भूख, प्यास, एवं दर्द की अनुभूति करने की स्थिति में होता है । इस अवस्था में आंखें अस्थिर होती है किंतु धीरे-धीरे उसकी दृष्टि में स्थिरता आने लगती है । यही से उसके संवेगात्मक विकास का प्रथम चरण आरंभ होता है । इस अवस्था में अपने परिचित को पहचानना व रोने की अवस्था में माँ के सामने आने पर चुप हो जाना ।

4.4.2 प्रत्यय निर्माण

मानसिक विकास की प्रक्रिया के द्वारा ही बालकों में प्रत्यय या सम्बोधो का निर्माण होने लगता है । प्रत्यय से आशय उस विचार या सोच से है जिसका निर्माण विभिन्न प्रत्यक्षीकृत अनुभवों व आगमनात्मक तर्क प्रणाली के प्रयोग द्वारा सामान्यीकृत विचार के रूप में होता है ।

प्रत्यय निर्माण प्रक्रिया में ही विभेदीकरण (Discrimination) व सामान्यीकरण (Generalization) से सम्बन्धित योग्यताओं का विकास होता है । प्रत्यय निर्माण की मानसिक प्रक्रिया में विभिन्न विचारों में अंतर या विभेदीकरण कर सकने की योग्यता बालक में शीघ्रता से विकसित होती है । इसी योग्यता के आधार पर वह प्रत्यक्षीकरण सम्बद्ध अनुभवों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करता है तो प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया स्वत: आरम्भ हो जाती है । प्रत्यय निर्माण में बालक के पूर्व अनुभवों व वर्तमान अनुभवों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

बालक के बाल्यावस्था में प्राप्त स्थूल अनुभव व वास्तविक अनुभव प्रत्यय निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है । इस अवस्था का प्रत्यय निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान

होता है । सीखने की प्रक्रिया में जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है व पूर्व अनुभवों को नए अनुभवों से जोड़ते हुए स्वत: ही नवीन प्रत्यय निर्माण करने लगता है ।

प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया स्थूल से सूक्ष्म की ओर, अस्पष्टता से स्पष्टता की ओर, अनिश्चितता से निश्चितता की ओर, अपर्याप्तता से पर्याप्तता की ओर चलती है । विकास के साथ-साथ परिपक्वता आने पर विचारों व सोच में स्पष्टता, विशिष्टता, निश्चितता आती जाती है ।

4.4.3 भाषा विकास

मानसिक विकास प्रक्रिया का महत्वपूर्ण चरण है भाषा विकास । शैशवास्था में बालक के अंदर भाषा विकास प्रक्रिया आरम्भ होती है । आरम्भ में भाषा का विकास अनुकरण के द्वारा होता है लेकिन जैसे-जैसे उसमें समझ विकसित होती है वैसे-वैसे सीखने व बोलने की प्रक्रिया तीव्र होने लगती है । इस स्तर पर अभिभावकों व शिक्षकों को बालकों के सही उच्चारण व शब्द भण्डार की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि किशोरवस्था तक उसमें शब्द भण्डार एवं उच्चारण में शुद्धता व दक्षता आ सके ।

4.4.4 स्मृति का विकास

मनोवैज्ञानिक हरलाक का मानना है कि प्रथम 6 माह में बालक केवल उन्हीं बातों व घटनाओं का स्मरण रखता है जिसकी उसके मन पर गहरी छाप पड़ती है किन्तु एक वर्ष की अवस्था पूर्ण करते-करते उसकी स्मरण शक्ति का विकास होने लगता है । प्रथम वर्ष में ही वातावरण व वस्तुओं के सम्पर्क में आने के कारण वह घटनाओं को लम्बे समय तक याद रखने में समर्थ होने लगता है । दो वर्ष की आयु तक उसमें विचार बनने लगते है व विकसित होने लगते है । इस अवस्था में बालक की ग्रहणशक्ति में भी वृद्धि होती है । छ: वर्ष की अवस्था तक स्मरण शक्ति पूर्णतया विकसित हो जाती है । सीखने की प्रक्रिया में आरम्भ में बालक एक ही कार्य या व्यवहार की आवृत्ति करती है किंतु धीरे-धीरे या प्रवृत्ति तर्क शक्ति एवं स्मरण शक्ति को पूर्णतया विकसित कर देती है ।

4.4.5 समस्या समाधान योग्यता

मानसिक विकास प्रक्रिया का अंतिम एवं महत्वपूर्ण चरण जो कि संज्ञानात्मक विकास से जोड़ा होता है वह है समस्या समाधान योग्यता का विकास । मनुष्य सामाजिक प्राणी है अत: उसके चारों तरफ के वातावरण में अनगिनत समस्याएँ आती रहती है उनका समाधान करने के लिए इन सभी योग्यताओं के विकास की आवश्यकता पडती है । सोचने, विचारने व तर्क करने की शक्ति, समस्या समाधान में सहायक सिद्ध हो सकती है इन सभी शक्तियों का विकास 2 से 3 वर्ष तक आयु तक होती है । इस स्तर पर बालक की विचार शक्ति सूक्ष्म के स्थान पर स्थूल होती है । वह अमूर्त चिन्तन, सूक्ष्म चिन्तन व विचारशक्ति का मौलिक ढंग से उपयोग कर पाने में असमर्थ होता है । शनै: शनै: वृद्धि व विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप उसमें मौलिक व अमूर्त विचारो, काल्पनिक चित्रों, सूत्रों संकेतों की सहायता से विभिन्न समस्याओं को सुलझाने की क्षमता विकसित हो जाती है ।

संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया में बालकों का मानसिक विकास प्रभावी ढंग से करने की दिशा में अध्यापक एवं अभिभावकों को उसकी प्रारम्भिक अवस्था में ऐसा वातावरण निर्मित करना चाहिए जिससे वह अधिक से अधिक सीखने की ओर प्रवृत्त हो सके । जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती जाती है तो स्वत: चिन्तन एवं मनन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है व कल्पना शक्ति, विचार शक्ति, तर्क शक्ति, अनुमान शक्ति, अवधान, चिन्तन शक्ति व प्रत्यक्षीकरण शक्ति, सामान्यीकरण शक्ति जैसे योग्यताऐं विकसित होने लगती है । बालकों में आयु व परिपक्वता के आधार पर ये क्षमताएँ विकसित हो जाती है ।

4.5 बालकों का ज्ञानात्मक विकास व शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य है बालक का सर्वांगीण विकास । सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में अन्तर्निहित शक्तियों को बाहर निकालने के लिए किये जाने वाले तमाम प्रयास सम्मिलित होते है । सर्वांगीण विकास की इस कड़ी में महत्वपूर्ण पक्ष है संज्ञानात्मक विकास । बालक के संज्ञानात्मक पक्ष के मजबूत होने पर ही भावात्मक व क्रियात्मक पक्ष मजबूत बनते है व सही ढंग से कार्य कर पाते है । बालक के मानसिक विकास को सही ढंग से करने हेतु अध्यापकों को व्यूह रचना बनानी पड़ती है जिसके अन्तर्गत वह बालक के मानसिक स्तर को दृष्टिगत रखते हुए उसके समक्ष परिस्थितियों को उत्पन्न या विकसित करता है । मानसिक विकास या संज्ञानात्मक विकास सबसे अधिक बाल्यावस्था में होता है तो प्राथमिक स्तर पर अध्यापक का दायित्व है कि उसका समुचित विकास सही ढंग से करे इस हेतु निम्न बातों को दृष्टिगत रखना चाहिए-

(i) पाठ्यक्रम का निर्धारण विभिन्न आयु वर्ग के बालकों की दृष्टिगत रखते हुए किया जाये।

(ii) अध्यापकों को शिक्षण व्यूहरचना एवं विधियों आदि को निर्मित करने से पूर्व भी बालकों के मानसिक विकास का अधिकतम उपयोग करना चाहिए ।

(iii) अधिगम सामग्री व सहायक सामग्री का निर्धारण करने में भी सुविधा रहती है ।

(iv) बालकों के मानसिक क्षमता का ज्ञान प्राप्त कर उसको विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

4.6 पियाजे की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

जीन पियाजे ने बालकों के विकास की अवस्था को चार भागों में विभक्त किया है जो निम्न प्रकार है-

4.6.1 संवेदनात्मक गामक अवस्था

पियाजे के अनुसार यह बालक की विकास की प्रथम अवस्था है जो 0 से लेकर 2 वर्ष तक अर्थात् जन्म से लेकर 2 वर्ष तक चलती है इस अवस्था में बालक केवल संवेदनाओं एवं शारीरिक क्रियाओं की सहायता से अभिव्यक्ति करता है । इस अवस्था में बालक के पास भाषा का अभाव होता है । वह इन्द्रियों की सहायता से महसूस कर क्रिया के द्वारा अपना व्यवहार

प्रस्तुत करता है । उसका प्रत्येक व्यवहार प्रयास एवं त्रुटि पर आधारित होता है जैसे भूख लगने पर रोना, किसी वस्तु को पकड़ने का प्रयास करना, चिल्लाना आदि ।

4.6.2 पूर्व सक्रियात्मक अवस्था या प्री-ऑपरेशनल स्टेज

संज्ञानात्मक विकास की दूसरी अवस्था पूर्व संक्रियात्मक काल अवस्था है । पियाजे के अनुसार यह अवस्था 2 से 7 वर्ष तक चलती है इस अवस्था को दो भागों में विभक्त किया गया है । प्रथम पूर्व प्रत्ययात्मक काल जो 2 से 4 वर्ष तक चलती है यह परिवर्तन व खोज की अवस्था है । इसमें अनुकरण प्रवृत्ति आधारित अधिगम होता है दूसरी अवस्था आंतप्रज्ञा काल अवस्था है जो 4 से 7 वर्ष तक चलती है इसमें बालक में तार्किक विचार प्रक्रिया के बिना विचार प्रस्तुत करने की आदत होती है ।

4.6.3 मूर्त संक्रिया अवस्था

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की यह अवस्था 7 से 12 वर्ष तक चलती है । इस काल में निम्न मानसिक प्रक्रिया होती है-

(i) मूर्त चिन्तन के सन्दर्भ में तार्किक क्रिया करने लगता है ।

(ii) चिन्तन क्रमबद्ध, तर्कसंगता पर आधारित होता है ।,

(iii) इस स्तर पर विचारों में विलोभियता जैसे गुणों का विकास होने लगता है ।

(iv) इस अवस्था में बालक में आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति कम हो जाती है ।

पियाजे के अनुसार बालक के मानसिक विकास अवस्था में इस अवस्था का महत्वपूर्ण योगदान है

4.6.4 औपचारिक संक्रिया अवस्था

इस अवस्था का समय 12 वर्ष से 15 वर्ष होता है । यह अवस्था अमूर्त विषयों के सम्बन्ध में तार्किक चिन्तन की अवस्था है । इस अवस्था में सम्प्रत्ययों का पूर्ण विकास होने के साथ ही साथ भाषा सम्बन्धी योग्यता, सम्प्रेषणशीलता जैसे गुणों का भी विकास होने लगता है।

पियाजे के अनुसार इस अवस्था में मानसिक प्रक्रिया के सभी घटक यथा कल्पना, चिन्तन, मनन, ध्यान, स्मृति, अनुमान, प्रत्यक्षीकरण, व्याख्या, विश्लेषण. परीक्षण, व निष्कर्ष निकालने, सामान्यीकरण करने जैसी सभी योग्यताऐं पूर्णत: विकसित हो जाती है । चिन्तन अब मूर्त के स्थान पर अमूर्त व स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म होने लगता है । प्रयास एवं त्रुटि के स्थान पर बौद्धिक शक्तियों का विकास पूर्णत: संगठित होने लगता है ।

पियाजे प्रथम मनोवैज्ञानिक थे जिसने मनुष्य को जन्म से क्रियाशील प्राणी माना है व विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन शारीरिक परिपक्वता व वातावरण के आधार पर होता है ।

4.7 ज्ञानात्मक विकास एवं शिक्षा

पियाजे के अनुसार शैशवस्था बाल्यावस्था एवं किशोरवस्था के होने वाले मानसिक विकास की ही बालक के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है । शिक्षा के माध्यम से छात्रों की विभिन्न योग्यताओं का विकास करने हेतु उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सुयोग्य

शिशुओं बालकों व किशोरों का निर्माण व विकास को तीव्रता प्रदान करने में संज्ञानात्मक विकास की महती भूमिका होती है ।

4.8 सारांश

जीन पियाजे के संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य है बालक के मानसिक विकास की प्रक्रिया । पियाजे ज्ञानात्मक विकास के अन्तर्गत वंशानुक्रम वातावरण व परिपक्वता के बीच अंतक्रिया पर जोर देता है । संज्ञानात्मक विकास की कार्यविधि को पियाजे द्वारा दो भागों में बांटा गया है- संगठन एवं अनुकूलन । संगठन से तात्पर्य बौद्धिक सूचनाओं के सार्थक पैटर्न से है व अनुकूलन से आशय पूर्व ज्ञान व नवीन ज्ञान के मध्य समन्वय व संतुलन से है । अनुकूलन की प्रक्रिया में आत्मीकरण व समाविष्टकरण की प्रक्रिया के द्वारा सीखने की क्रिया की जाती है । पियाजे ने ज्ञानात्मक विकास की चार अवस्था बताई है । संवेदनात्मक गामक अवस्था, पूर्व संक्रियात्मक अवस्था मूर्त संक्रिया अवस्था, औपचारिक संक्रिया अवस्था ।

4.9 मूल्यांकन प्रश्न

1. पियाजे के अनुसार शैशवावस्था में ज्ञानात्मक विकास के प्रमुख लक्षण कौन कौनसे है?
2. संज्ञानात्मक विकास के प्रमुख चरण बताइये ।
3. पियाजे के अनुसार ज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएं बताते हुए पूर्व संक्रियात्मक अवस्था को स्पष्ट कीजिये ।
4. पूर्व प्रत्ययात्मक काल एवं अतंप्रज्ञा काल की विशेषताएं बताइये ।
5. औपचारिक संक्रिया अवस्था का शिक्षा में योगदान स्पष्ट कीजिये ।
6. पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक कार्यविधि को स्पष्ट कीजिये ।
7. संगठन एवं अनुकूलन में क्या अंतर है । स्पष्ट कीजिये ।

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

भटनागर सुरेश	शिक्षा मनोविज्ञान एवं शिक्षण शास्त्र
माथुर, एस. एस.	शिक्षा मनोविज्ञान
पाठक पी. डी.	शिक्षा मनोविज्ञान
गुप्ता, गुप्ता	शिक्षा मनोविज्ञान
बिष्ट एच.बी.	बाल मनोविज्ञान

इकाई 5

सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास - प्रक्रिया एवं परिवर्तन (Social and Emotional Development - Process and Change)

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सामाजिक विकास का अर्थ एवं प्रकृति

5.3 सामाजिक विकास के प्रमुख अभिकरण या संस्थाऐं

- 5.3.1 परिवार
- 5.3.2 खेल समूह
- 5.3.3 पडौस
- 5.3.4 विद्यालय
- 5.3.5 आर्थिक संस्थाऐं
- 5.3.6 धार्मिक संस्थाऐं
- 5.3.7 सांस्कृतिक संस्थाऐं

5.4 सामाजिक विकास की अवस्थाऐं

- 5.4.1 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
- 5.4.2 पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
- 5.4.3 उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
- 5.4.4 वय सन्धि अवस्था में सामाजिक विकास
- 5.4.5 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

5.5 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

5.6 सामाजिक प्रौढ़ता

5.7 संवेगात्मक विकास

- 5.7.1 संवेग का अर्थ
- 5.7.2 संवेग की विशेषताऐं
- 5.7.3 संवेग के प्रकार
  - 5.7.3.1 प्रेम
  - 5.7.3.2 आनन्द तथा उल्लास
  - 5.7.3.3 उदासी एवं मंदन
  - 5.7.3.5 डर एवं दुश्चिंता

5.7.3.6 क्रोध
5.7.3.7 ईर्ष्या या डाह
5.8 संवेगात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाऐं
5.8.1 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
5.8.2 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
5.8.3 किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास
5.8.4 प्रौढ़ावस्था में संवेगात्मक विकास
5.9 संवेगात्मक परिपक्वता का अर्थ
5.10 संवेगात्मक लब्धि
5.11 संवेग जागृत करने की परिस्थितियाँ
5.12 संवेग पर नियंत्रण
5.13 संवेग को दबाने के दुष्परिणाम
5.14 सारांश
5.15 मूल्यांकन प्रश्न
5.16 सन्दर्भ ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- संवेगात्मक विकास एवं सामाजिक विकास का अर्थ समझकर व्याख्या कर सकेगें ।
- सामाजिक विकास एवं संवेगात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तन को समझेंगे ।
- सामाजिक विकास के विभिन्न अभिकरण एवं संस्थाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारणों को जान सकेंगे ।
- सामाजिक प्रौढ़ता का अर्थ एवं उसके विभिन्न स्तर को जान सकेगें ।
- संवेगात्मक विशेषताओं को जान सकेगें ।
- संवेग के विभिन्न प्रकार को जान सकेगें ।
- संवेगात्मक लब्धि (ER) के महत्व को जान सकेंगे ।
- संवेगात्मक अपरिपक्वता के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- संवेग जागृत करने की विभिन्न परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे ।
- संवेगों को दबाने के दुष्परिणामों को जानेंगे ।
- संवेगों पर नियंत्रण रखना सीख सकेगें ।

5.1 प्रस्तावना

मानव शिशु जन्म के समय किसी भी मानव समाज में भाग लेने योग्य नही होता है । वह केवल एक शरीर के साथ इस संसार में आता हैं । जो केवल रक्त, माँस एवं हड्डियों से बना एक जीवंत मात्र होता हैं । उसमें किसी प्रकार के सामाजिक गुण नहीं होते । वह न तो

सामाजिक होता हैं और न ही असामाजिक और न ही समाजविरोधी ही । वह यह नही जानता कि किसके प्रति कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए और समाज उससे क्या अपेक्षाएँ रखता हैं । किन्तु वह कुछ शारीरिक क्षमताओं के साथ पैदा होता हैं, इन क्षमताओं के कारण ही वह बहुत कुछ सीख लेता हैं और समाज का क्रियाशील सदस्य बन जाता हैं ।

प्रारंभ में सामाजिक विकास की गति तीव्र होती है फिर विकास में पठार आता है, बाद में मन्द गति से विकास होता है । स्वस्थ, सुन्दर और मानसिक गुणों से युक्त बालक के लिए आवश्यक है कि उसमें पर्याप्त मात्रा में सामाजिक मूल्य और गुण विद्यमान है ।

5.2 सामाजिक विकास का अर्थ और प्रकृति

चाईल्ड (1954) के अनुसार, "सामाजिक विकास वह प्रक्रिया हैं, जिसके द्वारा व्यक्ति में उसके समूह मानकों के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता हैं" ।

"Social development is the process by which an individual is led to develop actual behaviour according to the standards of his group-I.L. Child, Quoted by G.Lindzy, 1954.

हरलॉक (1978) के अनुसार,

"सामाजिक विकास का अर्थ उस योग्यता को अर्जित करना हैं जिसके द्वारा सामाजिक प्रत्याशाओं (Expectations) के अनुसार व्यवहार किया जा सकें ।"

"'Social development means acquisition of the ability to behave in accordance with social expectations - E.H. Harlock, 1978"

सामाजिक विकास की उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता हैं, सामाजिक विकास वह प्रक्रिया हैं जिसके द्वारा व्यक्ति में अपने समूह मानकों (Norms) के अनुसार और सामाजिक प्रत्याशाओं (Expectations) के अनुसार व्यवहार करना सीखता है ।

सामाजिक प्रक्रिया में तीन प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं -

(1) वह प्रक्रिया जिसके द्वारा बालक में समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार का विकास (Development of approved behaviour) होता हैं । प्रत्येक समूह के व्यवहार सम्बन्धी कुछ मानक (Norms) होतें हैं । बच्चे यदि इन्हीं व्यवहार मानकों का अधिगम करते हैं तो उनका व्यवहार समाज द्वारा मान्य होता हैं ।

(2) सामाजिक विकास में दूसरी प्रक्रिया वह हैं जिसके द्वारा बालक मान्य सामाजिक भूमिका (Approved Social Roles) सीखता हैं । प्रत्येक समूह में विभिन्न आयु के लोगों के लिए तथा बालक एवं बालिकाओं के लिए अलग-अलग कुछ निश्चित व्यवहार प्रतिमान और सामाजिक भूमिका होते हैं । एक समाज के लोगों को इन्ही निश्चित (Roles) भूमिका को ही अपनाना होता हैं । उदाहरण के लिए विद्यार्थियों, अध्यापकों, माता और पिता आदि सबके लिए कुछ निश्चित भूमिका (Roles) होती हैं और उन्हें उसी के अनुरूप व्यवहार करना होता हैं ।

(3) सामाजिक विकास की तीसरी प्रक्रिया हैं - सामाजिक अभिवृत्तियों (Social Attitudes) का विकास इन अभिवृत्तियों के विकास के कारण ही बालक सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेता हैं एवं समाज के अन्य व्यक्तियों को पसंद-नापसंद करता हैं ।

सामाजिक व्यक्ति वह है जिसमें यह तीनों प्रक्रिया सामान्य रूप से चली हो तथा असामाजिक (Non-Social) व्यक्ति वह है, जो उपर्युक्त तीनों ही प्रक्रिया में सफलता न प्राप्त कर सका हो ।

सामाजिक विकास की परिभाषा में सामाजिक प्रत्याशाएँ (Social Expectations) शब्द आया हैं । सामाजिक प्रत्याषाओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हैं । प्रत्येक समूह अपने समूह के बालकों के लिए उनकी आयु के अनुसार कुछ आशा करता है उदाहरण के लिए बालक से यह आशा की जाती है कि वह माता-पिता का आदर करेगा, उनकी आज्ञा का पालन करेगा, अपने भाई-बहिनों के साथ प्रेमपूर्वक रहेगा अपने आयु के अनुसार घर के कार्यो में हाथ बँटायेगा एक निश्चित आयु हो जाने पर स्कूल में पढ़ना प्रारम्भ करेगा आदि । इसी प्रकार की आशाएँ समाज या समूह अपने भिन्न-भिन्न सदस्यों से भिन्न-भिन्न प्रकार से करता हैं ।

अपने दैनिक जीवन के अनुभवों में देखा जा सकता है कि यदि कोई बालक अपने परिवार और समूह के मानकों के अनुसार अनुरूपता (Conform) स्थापित नहीं करता हैं तो परिवार और समूह उसे स्वीकार नहीं करता हैं । भिन्न-भिन्न में अलग-अलग अनुरूपता की मात्रा स्वीकार्य हैं ।

5.3 सामाजिक विकास के प्रमुख अभिकरण या संस्थाएँ

मानव में सामाजिक विकास की प्रक्रिया बड़ी लम्बी एवं जटिल हैं । इस कार्य में अनेक समूहों एवं संस्थाएँ का योगदान होता हैं । ये संस्थाएँ समय-समय पर विभिन्न बाते सिखाती हैं। कभी तो यह एक दूसरे की पूरक या सहयोगी होती हैं तो कभी परस्पर स्वतंत्र एवं संघर्षकारी ।

बच्चे का सामाजिक विकास अनेक प्राथमिक संस्थाओं जैसे परिवार, पड़ोस, मित्रमण्डली, व्यवहार, नातेदारी समूह तथा द्वैतीयक संस्थाएँ जैसे विद्यालय, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं व्यवसायिक संगठनों आदि का योगदान होता हैं । व्यक्ति इन संस्थाओं और समूहों में जितना अनुकूलन करता हैं उसका सामाजिक विकास उतना ही सफल माना जाता हैं ।

यहाँ हम सामाजिक विकास की प्रमुख संस्थाओं वह समूहों का उल्लेख करेंगे ।

5.3.1 परिवार

परिवार सामाजिक विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि बालक परिवार में जन्म लेता है और सर्वप्रथम वह परिवार के सदस्यों के ही सम्पर्क में आता हैं । परिवार से ही उसे समाज में रीति-रिवाजों, लोकाचारो (Mores) प्रथाओं (Customes) एवं संस्कृति (Culture) का ज्ञान कराया जाता हैं ।

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था हैं अत-विश्व के सभी समाजों में सामाजिक विकास की यह आधारभूत संस्था हैं ।

परिवार का विपरीत प्रभाव भी बालक के सामाजिक विकास पर पड़ता है अगर परिवार विघटित हैं, माता-पिता में अनबन है या तनाव है, या भाई बहन अपराधी व्यवहार में संलग्न है तो बालक पर विपरीत प्रभाव पड़ता हैं ।

5.3.2 खेल समूह और मित्रों का समूह

खेल समूह एवं मित्रों का समूह बालक के सामाजिक विकास में बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं ।

वह अपने मित्रों एवं खेल के साथियों के सम्पर्क में आता है जो उसके हम उम्र होते हैं । ये लोग उसे अपनी प्रस्थिति (Status) एवं वर्ग (Class) के मूल्यों से परिचित कराते हैं । वह खेल के नियमों का पालन करना सीखता हैं । वह दूसरों के नियंत्रण में रहना, अनुशासन का पालन करना, नेतृत्व करना आदि सीखता हैं खेल के दौरान वह पारस्परिक सहयोग, प्रतिस्पर्धा और स्वस्थ संघर्ष की भावनाऐं ग्रहण करता हैं ।

5.3.3 पड़ौस

पड़ौस का बच्चे के सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान हैं । शहर की तुलना में गाँवों में पड़ोस का अधिक प्रभाव पड़ता हैं । बच्चे अनजाने में ही पड़ौस से कई बाते सीख लेते हैं । पड़ौस के लोग बच्चे को स्नेह एवं प्यार में कई नयी बातों का ज्ञान कराते हैं । उसकी प्रशंसा एवं निंदा के द्वारा उसे समाज-सम्मत व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं । पड़ौसी उसे समय समय पर यह बताते रहते है कि उससे किस प्रकार के आचरण की अपेक्षा की जाती हैं ।

5.3.4 विद्यालय

विद्यालय में बच्चा प्रमुख रूप से गुरुजनों, पाठ्य-पुस्तकों एवं साहित्य तथा कक्षा के साथियों से अनेक बाते सीखता हैं । कोई न कोई अध्यापक उसका मॉडल या आदर्श अवश्य होता है जिसके अनुरूप वह अपने आपको ढालना सीखता हैं । अध्यापक के आदर्श, विचार, आचरण तथा रहन-सहन के ढंग को छात्र अपनाता है । पुस्तकों व साहित्य से वह नवीन ज्ञान अर्जित करता हैं इससे उसकी मानसिक क्षमता का विकास होता हैं ।

5.3.5 आर्थिक संस्थाएँ

आर्थिक संस्थाएँ - व्यक्ति को जीवन-यापन के लिए समर्थ बनाती हैं । इसके द्वारा हम यह सीखते है कि बाजार, बैंक, दुकान में किस प्रकार का व्यवहार करें ? ये संस्थाएँ ही व्यक्ति को व्यावसायिक संघों से परिचित कराती है, व्यक्ति में सहयोग, प्रतिस्पर्धा एवं समायोजना के भाव पैदा करती हैं । बेईमानी एवं ईमानदारी के लक्षण भी व्यक्ति इन्ही संस्थाओं द्वारा सीखता हैं । मार्क्स एवं वेबलिन का मत है कि आर्थिक संस्थाएँ ही व्यक्ति के जीवन और सामाजिक ढाँचे को निर्धारित करती हैं ।

5.3.6 धार्मिक संस्थाएँ

व्यक्ति या बालक के जीवन पर धर्म का गहरा प्रभाव पड़ता हैं । ईश्वरीय भय एवं श्रद्धा के कारण वह नैतिकता तथा अन्य गुणों को ग्रहण करता हैं । व्यक्ति में पवित्रता, न्याय, शक्ति, सच्चरित्रता, कर्तव्यपरायणता, दया, ईमानदारी, आदि गुणों का विकास करने में धर्म

प्रमुख भूमिका निभाता हैं । मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वार एवं चर्च में हम किस प्रकार का आचरण करेंगें यह हमें धार्मिक संस्थाएँ ही सिखाती हैं ।

पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक की धारणा लोगों को सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप आचरण करने पर बल देती हैं । धार्मिक भय के कारण कई अपराधी, डाकू हत्यारे एवं क्रूर व्यक्ति अपने व्यवहार को नियंत्रित करते हैं ।

5.3.7 सांस्कृतिक संस्थाएँ

आधुनिक (Modern) समाज में अनेक सांस्कृतिक संस्थाएँ जैसे संगीत अकादमी, नाट्य मण्डली, कवि सम्मेलन एवं क्लब आदि व्यक्ति के विकास मे योगदान करती हैं । ये संस्थाएँ व्यक्ति को अपनी संस्कृति से परिचित कराती हैं ।

5.4 सामाजिक विकास की अवस्थाएँ

5.4.1 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

जन्म के समय से उस समय तक बालक दूसरे बच्चों में कोई रूचि नहीं लेता जब तक की उसकी सभी आवश्यकताओं की संतुष्टि सामान्य ढंग से होती रहती हैं । लगभग दो माह की आयु तक बालक वातावरण की केवल अधिक तीव्र उत्तेजनाओं के प्रति ही प्रतिक्रिया करता हैं ।

कोच (J.Koch, 1968) का विचार हैं कि तीन माह की आयु तक के बालक का श्रवण का सिस्टम इतना विकसित हो जाता है कि वह विभिन्न ध्वनियों में भेद पहचानने लग जाता है तथा उसका आँखों पर इतना नियंत्रण हो जाता है कि वह व्यक्तियों और वस्तुओं की गतियों का निरीक्षण करने लग जाता हैं । प्रारम्भ में वह केवल वयस्क व्यक्तियों के प्रति ही प्रतिक्रिया करता है क्योंकि वह केवल उन्हीं के सम्पर्क में आता हैं । तीसरे माह में वह अपने अधिक पास रहने वाले लोगों को, विशेष रूप से माँ को, पहिचानने लग जाता हैं ।

चार माह के बालक को यदि गोद मे उठाया जाता है तो वह पूर्वानुमानित (Anticipatory) समायोजन करने लग जाता हैं । इस अवस्था में बालक की सामाजिक उत्तेजनाओं के प्रति अनुक्रिया मुस्कराकर, हँसकर, रोकर तथा मुखाकृति और हाथों की अनुक्रिया द्वारा करता हैं ।

पाँच-छः माह की अवस्था में उसमें अपेक्षाकृत और अधिक सामाजिक विकास हो जाता हैं । वह इस अवधि में क्रोध और मित्रता सम्बंधी व्यवहार समझने लगता हैं । अपने परिवार के लोगों को अधिक अच्छी तरह पहचानने लगता हैं। वह अपरिचितों के प्रति भय प्रदर्शित करने लग जाता हैं।

आठ-नौ माह का बालक वाणी सम्बंधी ध्वनियों का अनुकरण करने लगता हैं । साथ ही साथ वह वयस्क व्यक्तियों और अपने से बड़े बच्चों का व्यवहार सम्बंधी अभिव्यक्तियों का अनुकरण भी करने लग जाता हैं । बच्चा जब एक वर्ष का हो जाता है तो व अपरिचितो को देखकर डरकर पीछे चल पड़ता है, रोने लगता हैं । लगभग पन्द्रह माह का बालक वयस्क व्यक्तियों में इतनी रूचि लेने लगता है कि उन्हे के साथ रहना पसंद करता हैं । दो वर्ष का बालक वयस्कों के साथ दैनिक जीवन के छोटे-मोटे काम करवाते देखा जा सकता हैं ।

बचपन अवस्था के कुछ विशिष्ट सामाजिक व्यवहार :

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि जन्म से लगभग दो वर्ष की अवधि तक बालक अनेक सामाजिक अनुक्रियाएँ करने लग जाता हैं । वे निम्न प्रकार से है :-

1. **अनुकरण**

   बच्चा पहले मुखाकृतियों का, फिर हाव-भाव का, फिर भाषा का और अंत में सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान का अनुकरण करना सीखता हैं, अनुकरण ही वह प्रक्रिया है जिसकी सहायता से बच्चा आगे चलकर सामाजिक प्राणी बनता हैं ।

2. **आश्रितता**

   बच्चा जब अकेला होता है तब वह रोता हैं । जब उसे गोद में लिया जाता है तो वह चिपकता हैं । इस प्रकार बालक के व्यवहार उसकी आश्रितता की ओर संकेत करते हैं । बच्चे की जितनी ही अधिक देखभाल और उसका लाड़-प्यार किया जाता हैं, उसमें आश्रितता का गुण उतना ही अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाता हैं ।

3. **ईर्ष्या**

   बालकों मे ईर्ष्या के भाव लगभग नौ माह से बारह माह की अवधि मे उत्पन्न होते हैं । ईर्ष्या बच्चों में उस समय देखी जा सकती हैं । जब वे खिलौने के लिए एक दूसरे से छीना-झपटी करते हैं ।

4. **सहयोग**

   लगभग डेढ (1.5) वर्ष की अवस्था से बच्चों में दूसरे बच्चों के प्रति सहयोग के लक्षण दिखाई देते है परन्तु दूसरे बच्चों की अपेक्षा वयस्क लोगों के प्रति बच्चों में सहयोग की इच्छा अधिक होती हैं ।

5. **शर्माना**

   बालक जब लगभग 1 वर्ष का होता है तब उसमें शर्म के कुछ लक्षण दिखाई देते है, विशेष रूप से जब बालक के सामने कोई अपरिचित व्यक्ति आता हैं ।

6. **ध्यान आकर्षित करना**

   दूसरे वर्ष के प्रारम्भ से ही बच्चा वयस्क व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए विशेष ढंग से आवाज निकालता हैं, कपड़े खींचता हैं, मारता हैं, या जो काम मना किया जाये उसे करके ध्यान आकर्षित करता है।

7. **अवरोधी व्यवहार**

   बालक में लगभग एक वर्ष की अवस्था में अवरोधी व्यवहार प्रारम्भ हो जाता हैं । वह रोकर या शरीर को कड़ा करके इस प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन करने लगता हैं ।

5.4.2 पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

पूर्व बाल्यावस्था दो वर्ष से छः वर्ष तक की अवस्था हैं । इससे पूर्व की अवस्था मे बालक सामाजिक अधिगम (Social Learning) मुख्यतः घर में रहकर करता हैं । परन्तु छः वर्ष बाद वह सामाजिक अधिगम घर से बाहर पड़ौस और स्कूल में करता हैं । एक अध्ययन (W.Emmerich 1966) ने पाया की इस अवधि में बालकों मे जो सामाजिक अभिवृत्तियाँ निर्मित होती है अथवा जो सामाजिक व्यवहार सीखता हैं वही आगे तक बना रहता हैं, उसमें

बहुत थोड़ा परिवर्तन होता हैं । एक अन्य अध्ययन (J.B. Raph et.a al-1968) ने पाया की जो बच्चे इस अवधि में स्कूल जाना प्रारम्भ कर देते हैं उनका सामाजिक विकास अन्य बच्चों की अपेक्षा अधिक व तीव्र गति से होता हैं । इस अवस्था में उन्हें वयस्कों के प्रति अवरोधी विचार उत्पन्न होने लगते हैं । एक अध्ययन (H.W. Stevenson, 1967) में पाया कि इस अवधि में बच्चों में माता पिता की अपेक्षा बाह्य व्यक्तियों का अधिक प्रभाव होता हैं ।

पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के कुछ प्रकार

1. **आक्रमकता**

   पूर्व बाल्यावस्था (2-6 वर्ष) मे लगभग सभी बच्चों के व्यवहार में कुछ मात्रा में आक्रामक होता हैं। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था तक आक्रमकता का व्यवहार चरमसीमा तक पहुँच जाता हैं । इसके बाद इस व्यवहार में तीव्रता एवं आवृति दोनों कम होने लगती हैं । आक्रमक व्यवहार बच्चों में अनेक कारणों से उत्पन्न होता हैं- (1) माता-पिता का तिरस्कार पूर्ण व्यवहार (2) अधिक ध्यान आकर्षित करने की इच्छा (3) ईर्ष्या (4) बालक या बड़े बच्चे के आक्रमक व्यवहार से तादात्मीकरण (identification) (5) बालक को गलतियों के लिए उसे मार-पीटकर दण्डित किया जाना (6) पारिवारिक तनाव के कारण बालक मे उत्पन्न संवेगात्मक तनाव (7) अपनी उच्चता (Superiority) प्रदर्षित करने की इच्छा (8) उसके आवश्यक लक्ष्य में व्यवधान । इस आयु का बालक जब आक्रमकता का व्यवहार अपनाता है तब वह हाथ पैर पटक सकता हैं । जिस व्यक्ति के प्रति आक्रमक व्यवहार अपनाता है उसे मार-पीट सकता हैं । लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में उसका आक्रमकता सम्बंधी व्यवहार प्रत्यक्ष की अपेक्षा अप्रत्यक्ष होता जाता हैं ।

2. **झगड़ा**

   यद्यपि यह आक्रमकता से ही उत्पन्न होता है, परन्तु यह आक्रमकता से भिन्न है क्योंकि झगड़ों में दो या अधिक बच्चों की आवश्यकता होती है जबकि आक्रमकता पूर्णत: वैयक्तिक किया (Individual Act) हैं दूसरा अन्तर यह है कि झगड़े में बच्चा सुरक्षात्मक प्रवृति अपनाता हैं जबकि आक्रामकता में एक ही प्रकार की अनुक्रिया होती हैं ।

3. **चिढ़ाना**

   चिढ़ाना एक प्रकार का मौखिक आक्रमण हैं जिसके द्वारा बालक दूसरे बालक को क्रोधित करता है और उस बच्चे के लक्ष्य को केवल मौखिक आक्रमण से ही प्राप्त करना चाहता हैं । बहुधा बच्चे अपने से कमजोर या छोटे बच्चों को चिढ़ाते हैं ।

4. **निषेधात्मक व्यवहार**

यह आज्ञा के विपरीत कार्य या व्यवहार करने की प्रवृति हैं । निषेधात्मक व्यवहार का आरम्भ लगभग 18 माह की आयु से होता है तथा पाँच वर्ष तक चरमसीमा पर पहुँच जाता हैं । छ: वर्ष की अवस्था में इस प्रकार का व्यवहार कम होने लगता हैं । लेकिन पुन: एक बार फिर यह व्यवहार दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था में चरमसीमा पर पहुँच जाता हैं ।

5. ईर्ष्या

तीन से छ: वर्ष की आयु के बच्चे बहुधा ईर्ष्या मे अपने आप को दूसरों से उच्च सिद्ध करते है अथवा यह सिद्ध करने का प्रयास करते है जो उसके पास चीजे या खिलौने है वे किसी अन्य बच्चे के पास नही है ।

6. उदारता

बहुधा यह देखा गया है कि छोटा बच्चा आत्मकेन्द्रित (egocentric) होता हैं । यदि वह कोई चीज माँगता है और वह चीज उसे नही दी जाती है तो वह चिखने चिल्लाने लगता हैं बच्चा स्वार्थी होता हैं । चार या छ: वर्ष की अवस्था तक उसका यह स्वार्थीपन चरमसीमा पर पहुँच जाता हैं । इसके बाद कुछ ही समय में वह यह समझने लगता है कि स्वार्थीपन (Selfishness) से सामाजिक स्वीकृति (Social Acceptance) नही मिलती हैं । इस अवस्था से वह परिस्थितियों के साथ ठीक प्रकार से समायोजन करना प्रारम्भ कर देता हैं और यही से वह दूसरों के समान व्यवहारों को अपनाने लगता हैं । बालक का स्वार्थीपन जैसे-जैसे घटता है उसमें उदारता के लक्षण का विकास होता जाता हैं ।

5.4.3 उत्तर बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

यह छ: वर्ष से ग्यारह वर्ष तक की अवस्था हैं । इस अवस्था में सामाजिक विकास के अन्तर्गत उन्हीं गुणों और विशेषताओं का विकास होता है जिनका प्रारम्भ पूर्व बाल्यावस्था में हुआ था । इस अवस्था में बालक का शारीरिक, मानसिक, गत्यात्मक और भाषा आदि का विकास काफी कुछ हो जाने के कारण बच्चा खेल की ओर ज्यादा उन्मुख हो जाता है, वह अपनी इच्छाओं और विचारो को भाषा के द्वारा ढंग से व्यक्त करने लग जाता हैं । इस अवस्था मे वह अनेक कौशलों को भी दूसरों बच्चों के सम्पर्क में आकर सीखता हैं । बच्चों का सामाजिक क्षेत्र बढ़ जाता है । उसका घर के बाहर के बच्चों में और अधिक मन लगता हैं । बालकों की छ: से दस वर्ष की अवस्था Gang Age कही जाती हैं । इस अवधि में बालक का सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है । इस अवधि में बालक किसी साथी समूह (Peer Group) का सदस्य बन जाता हैं । बालक कभी एक साथी समूह का सदस्य रहता है तो कभी दूसरे का और कभी-कभी इन समूहों से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से व्यवहार करता हैं । बालकों का भिन्न-भिन्न साथी समूहों में सम्मिलित होना उनकी मित्रता पर आधारित न होकर उनके खेल की क्रियाओं या खेलो पर अधिक आधारित होता हैं ।

5.4.4 वय: सन्धि अवस्था में सामाजिक विकास

वय: सन्धि अवस्था ग्यारह वर्ष से प्रारम्भ हो जाती हैं । इस अवस्था के प्रारम्भ होते ही बालकों के शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ उनकी अभिवृत्तियों (Attitude) मे परिवर्तन आ जाता हैं । वह समूह की क्रियाओं में अपेक्षाकृत कम भाग लेना पसंद करता हैं । बहुधा वह एकांत में रहना पसंद करता हैं ।

अध्ययनों में यह देखा गया है कि वय: सन्धि अवस्था का समय जैसे-जैसे बढ़ता जाता हैं, बालक में समाज विरोधी व्यवहार में वृद्धि होती जाती हैं । यही कारण है कि वय: सन्धि अवस्था Negative Phase कहलाती हैं । इस अवस्था में बालक मे जीवन के प्रति विरोधी अभिवृत्ति होती हैं । अत: वय: सन्धि अवस्था मे सामाजिक विकास सामान्य रूप से बालक की समाज विरोधी या जीवन विरोधी भावनाओं के कारण चल नही पाता हैं । वास्तविकता यह है कि अगर इस अवस्था मे उनके सामाजिक विकास का ग्राफ खींचा जाए तो ग्राफ की वक्ररेखा में पठार (Plateau) प्राप्त होगा । कुछ बालकों में सामाजिक विकास में इस अवस्था का व्यवधान कोई विशेष अन्तर नहीं डालता है जबकि अन्य में इसका कोई स्थायी प्रभाव भी हो सकता हैं ।

वय: सन्धि अवस्था में बालक मे कब समाज विरोधी व्यवहार उत्पन्न होगा ? इसकी भविष्यवाणी करना वैयक्तिक भिन्नताओं के कारण कठिन हैं, फिर भी, लगभग ग्यारह-बारह वर्ष की अवस्था में बालक में समाज विरोधी व्यवहार उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता हैं ।

वय: सन्धि अवस्था के लगभग आठ दस माह बाद बालक मे समाज विरोधी व्यवहार चरमसीमा पर होते हैं । लड़कियों में यह चरमसीमा लगभग तेरह वर्ष की अवस्था में तथा लड़कों मे यह चरमसीमा लगभग चौदह वर्ष की अवस्था में हाती हैं । लड़कों में यह चरमसीमा लगभग एक वर्ष बाद इसलिए प्रारम्भ होती है कि लड़कियों में लड़कों से एक वर्ष पहले वय: सन्धि अवस्था प्रारम्भ हो जाती हैं ।

वय: सन्धि अवस्था मे बालक का व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक आक्रामक होता है बालक अधिक झगड़ालू हो जाता है वह अपने साथ समूह के सदस्यों से अक्सर झगड़ा करता हैं । इस अवस्था के बालक के शरीर और व्यवहार में जो परिवर्तन होते हैं, उनके कारण वह चिन्तित होता है और चिन्ता के कारण शर्माता हैं ।

5.4.5 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

वय: सन्धि अवस्था के समाप्त होते ही बालक मे सामाजिक विकास एक बार पुन: तीव्र गति से होने लग जाता हैं । प्रारम्भ मे यह गति मंद होती है परन्तु धीरे-धीरे यह गति तीव्र होती जाती हैं । किशोरावस्था लगभग 3 वर्ष से 18 वर्ष तक की अवस्था हैं । इस अवस्था के अन्त तक उसका सामाजिक विकास पूर्णता की ओर अग्रसर हो जाता है । इस अवस्था में बालक सामाजिक व्यवहार लगभग वैसा ही करने लग जाता है जैसा कि वह विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में वयस्क व्यक्तियों को करता हुआ देखता हैं । सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित उसके व्यवहार प्रतिमान लगभग वयस्क व्यक्तियों के समान होते हैं ।

एक अध्ययन मे यह देखा गया (D.C.Dumpy, 1963) कि किशोरावस्था मे सामाजिक क्रियाएँ चरमसीमा पर पहुँच जाती है । अधिकांश समय वह बाहर अपने साथी समूह (Peer

Group) में रहना चाहता हैं । इस अवस्था उसकी अभिवृत्तियों, रूचियों, मूल्य और व्यवहार आदि पर परिवार की अपेक्षा उसकी सामाजिक क्रियाओं और साथी समूह का प्रभाव पड़ता हैं (B.M. Berger 1965) एक अध्ययन (E.L.Gaier & W.F. White, 1965) मे यह रखा गया है कि गाँव के बालकों पर परिवार का प्रभाव अधिक पड़ता है और शहर के बालकों पर साथी समूह का प्रभाव सर्वाधिक पड़ता हैं ।

कुछ अध्ययनों (B.Mehlman 1962, A.Gesell et.al. 1956) मे यह देखा गया है कि लड़कों के यह साथी समूह लड़कियों की अपेक्षा बड़े और अधिक संगठित होते हैं ।

इस अवस्था में लड़के व लड़कियाँ अपने अन्तरंग मित्र भी बनाते हैं । बहुधा यह मित्र समान यौन के होते हैं अर्थात लड़के-लड़कों को अन्तरंग मित्र बनाते हैं और लकड़ियाँ लकड़ियों को बनाती है । इनमें यदि लड़ाइयाँ भी होती है तो अति घनिष्ठ मित्रता के कारण शीघ्र ही समझौता हो जाता हैं । इस अवस्था के किशोर छोटे सामाजिक समूहों के सदस्य भी बनते हैं । यह समूह कहलाते हैं । इन समूहों मे तीन चार मित्र समान रूचियों और योग्यताओं वाले होते हैं ।

किशोरावस्था मे मित्रों के चुनाव की कसौटी अपेक्षाकृत अधिक खरी होती हैं । इस अवस्था में किशोर की आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे इसे सामाजिक कार्यक्रमों मे भाग लेने के अधिक अवसर प्राप्त होने लगते हैं । फलस्वरूप उसमें सामाजिक सूझ (Social Insight) बढ़ जाती हैं । आयु बढ़ने के साथ-साथ उसका झगड़ा करना कम हो जाता हैं । इस अवस्था मे अधिकांश बच्चे गैंग (Gang) छोड़ देते है इनके समूह (Cliques) भी टूटने लग जाते है या टूट जाते हैं ।

इस अवस्था के अन्त तक किशोर बहुधा उन्हीं लोगों को मित्र बनाना अधिक पसंद करते हैं जिनमें समान रुचियाँ और समान मूल्य होते हैं । इस अवस्था के अन्त तक उसमें पर्याप्त मात्रा में सामाजिक परिपक्वता आ जाती हैं, वह सामाजिक प्रत्याषाओं (Expectations) के अनुसार अनेक सामाजिक भूमिका (Roles) करने लग जाता हैं । उसमें उत्तरदायित्व की पर्याप्त भावना आ जाती हैं । वह समाज के साथ अनुरूपता काफी कुछ स्थापित कर चुका होता हैं । सामाजिक परिपक्वता के कारण वह बिना पक्षपात के दूसरे लोगों के साथ अच्छे समायोजन करने में सफल होता हैं । वह अपने परिवार के प्रति स्नेह और आदर रखता हैं । वह परिवार के सदस्यों के साथ मित्रवत् व्यवहार अधिक करता हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. सामाजिक विकास के अर्थ को परिभाषित कीजिए ।
2. "परिवार सामाजिक विकास का प्रमुख अभिकरण है" व्याख्या कीजिए
3. वय: सन्धि अवस्था में किस प्रकार सामाजिक विकास होता है ?

5.5 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्न है -

5.5.1 शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य

5.5.2 परिवार

5.5.3 पड़ौस और विद्यालय

5.54. मनोरंजन

5.5.5 व्यक्तित्व

5.5.6 सम्बर्द्धन अभिप्रेरक

5.5.7 हीनता की भावना

5.5.8 साथी समूह

इन सभी कारकों को एक-एक करके हम अध्ययन करेंगें :-

5.5.1 शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य

जिन बालकों का शरीर सुसंगठित और सुन्दर होता हैं, उन्हे अपने समूह और समाज में अच्छा स्थान प्राप्त होता हैं । इस प्रकार के बच्चों का समाज की भिन्न परिस्थितियों में समायोजन अच्छा होता हैं । फलस्वरूप इनका सामाजिक विकास अन्य बालकों की अपेक्षा शीघ्र और सामान्य होता हैं । स्वस्थ सुन्दर बच्चे खेलकूद मे होशियार और आगे रहते हैं । अत: इन्हें सामाजिक परिस्थितियों में सीखने के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं। शरीर और स्वास्थ्य की दृष्टि से कमजोर बच्चे अपनी कमजोरियों के कारण धीरे-धीरे अन्तर्मुखी हो जाते हैं । इन बच्चों मे सामाजिकता के गुण, मित्रता और सहयोग आदि गुणों का अधिक विकास नही हो पाता हैं ।

5.5.2 परिवार

परिवार का वातावरण तथा परिवार का सामाजिक स्तर -

आर्थिक स्तर (SES) बालकों के सामाजिक विकास को बड़े महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता हैं । इन कारकों के अतिरिक्त विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता हैं । डिंकमेयर (D.C. Dinkmeyer, 1965) का विचार हैं कि छोटे परिवारों मे बच्चों को अधिक लाड़-प्यार तो मिलता ही हैं, साथ ही उनकी देखभाल भी अच्छी होती हैं इस अवस्था में उनमें सद्गुणों के विकसित होने की तथा सामान्य सामाजिक विकास होने की सम्भावना कम होती हैं । बड़े परिवार में बच्चों का लाड़-प्यार और देखभाल उतनी नहीं हो पाती हैं । परन्तु उन्हें अन्य बच्चों के व्यवहार के अनुकरण के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं । फलस्वरूप उनका सामाजिक विकास शीघ्र होता हैं । परन्तु उन बच्चों के अनुरूप होता है जिनके व्यवहार का अनुकरण किया हैं । सहयोग, उत्तरदायित्व, पक्षपात तिरस्कार प्रारम्भ में बालक, परिवार से ही सीखते हैं । परिवार के सदस्यों का जैसा सामाजिक व्यवहार होता हैं, बालक भी बहुत कुछ उसी प्रकार का व्यवहार सीख लेता हैं । परिवार का आर्थिक सामाजिक स्तर भी बालक के सामाजिक समायोजन को प्रभावित करता हैं । निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवारों के बच्चों में हीनता की भावना हो सकती हैं । जिससे वे उत्तरदायित्व सम्भालने में कठिनाई का अनुभव करते हैं तथा आत्मविश्वास की कमी के कारण सामाजिक परिस्थितियों मे उतना सफल नही हो पाते हैं जितना की उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले परिवारों के बच्चे ।

5.5.3 पड़ौस और विद्यालय

बालक का सामाजिक विकास किस प्रकार का होगा, यह इसके पड़ोस और स्कूल से भी निर्धारित होता हैं । बालक के पड़ोस मे रहने वाले बच्चों और वयस्कों के सामाजिक व्यवहार का भी प्रभाव बालक पर पड़ता हैं । पड़ौस में किस प्रकार के सामाजिक कार्यक्रम होते है, कैसा सामाजिक वातावरण हैं, आदि कारक भी बालक के सामाजिक विकास को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं । विद्यालय में शिक्षक और बालक के मित्र भी बालक के सामाजिक विकास में योगदान करते हैं । विद्यालय में बालक को अपनी आयु के अनेक बालकों के साथ बैठने और सीखने का अवसर ही नही मिलता बल्कि उसे बड़े बच्चों के सामाजिक अनुभव सुनने और सामाजिक व्यवहार को देखने का अवसर भी मिलता हैं । इन अवसरों से उसकी सामाजिक सूझ सामाजिक प्रत्यक्षीकरण भी बढ़ता हैं । फलस्वरूप वह समाज के विभिन्न मूल्य (Values) से सम्बंधित व्यवहार का अधिगम (Learning) करता हैं । विद्यालय के अनेक कार्यक्रम (Programme) मे भाग लेकर भी वह अनेक सामाजिक व्यवहार प्रतिमानों (Pattern or Model) को सीखता हैं । विद्यालय से वह सहयोग (Co-operation) मित्रता (Friends), उत्तरदायित्व (responsibilities) आदि सीखता हैं ।

5.5.4 मनोरंजन

बालक को मनोरंजन (recreation) की जितनी ही अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती है उतना ही अधिक वह घूमने-फिरने खेल-तमाशों और मित्रों में व्यस्त रहता हैं । इस प्रकार की सुविधाएँ अधिक प्राप्त होने पर बालक का स्वभाव हंसमुख प्रकार का हो जाता हैं । अपने इस स्वभाव के कारण उसे सामाजिक परिस्थितियों में सफल समायोजन करने में सहायता मिलती हैं । फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास शीघ्र होता हैं । मनोरंजन के साधनों और अवसरों की बहुलता में बालक में समाज विरोधी व्यवहार के उत्पन्न होने की भी सम्भावना कम होती हैं । मनोरंजन की सुविधाओं के फलस्वरूप उसमें सामाजिक विकास सामान्य ढंग से होता हैं ।

5.5.5 व्यक्तित्व

बालकों का व्यक्तित्व (Personality) भी उनके सामाजिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता हैं । यह देखा गया है जिनमें अनुपयुक्तता (Inadequancy) तथा हीनता की भावनाएँ होती हैं, उनमें आत्मविश्वास की कमी होती हैं । इस प्रकार के बालकों का विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में समायोजन उपयुक्त नही होता है । इस प्रकार के बालकों का सामाजिक विकास भी अनुपयुक्त होता हैं ।

5.5.6 सम्बर्द्धन अभिप्रेरक

यह जिन व्यक्तियों में अधिक होता है, उनका सामाजिक विकास सामान्य ढंग से ही नही होता हैं, बल्कि तीव्र गति से भी होता हैं । मित्र-मण्डली, परिवार और पड़ोस के बच्चों में समय व्यतीत करने वाले बालकों में सम्बर्द्धन (Affiliation) अभिप्रेरणा (Motives) अधिक मात्रा में पाया जाता है । शैचटर (1959) ने इस दिशा में अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्थिर

किया है कि चिन्ता में सम्बर्द्धन (Affiliation) अभिप्रेरणा (motive) की वृद्धि होती हैं । सम्बर्द्धन अभिप्रेरणा की अधिकता से बालकों के सामाजिक विकास की दर बढ़ जाती हैं ।

5.5.7 हीनता की भावना

यह देखा गया है कि जिन बालकों में हीनता की भावना अधिक मात्रा में पाई जाती हैं उनमें सामाजिक विकास कम गति से होता हैं । ये बालक दूसरों बालकों से मिलने-जुलने में कटे-कटे रहते हैं । अपनी हीनता के भावना के कारण उनमें आत्मविश्वास भी कम हो जाता है जिससे उन्हे अपना सामाजिक दायरा बनाने में कठिनाई होती हैं ।

5.5.8 साथी समूह

एक बालक की मित्र-मण्डली जितनी ही बड़ी होती है उसके साथ समूहों की संख्या उतनी ही अधिक होती हैं । इससे उनमें सामाजिक मूल्यों और सामाजिक प्रतिमानों (Patterns or Model) को सीखने की सम्भावना अधिक मात्रा में होती हैं ।

5.6 सामाजिक प्रौढ़ता

सामाजिक प्रौढ़ता - सामाजिक प्रौढ़ता का अर्थ है - समाज के मूल्यों, नियमों, अभिवृत्तियों और सामाजिक व्यवहार तथा सामाजिक भूमिका आदि की प्रौढ़ता । यह गुण एक व्यक्ति में यदि समाज की प्रत्याषाओं (expectations) के अनुसार विकसित हो चुके है तो वह व्यक्ति समाज की दृष्टि से पूर्ण रूप से सामाजिक प्रौढ़ता रखता हैं ।

जब व्यक्ति में पर्याप्त सामाजिक प्रौढ़ता होती है तो ऐसा व्यक्ति सामाजिक मूल्यों, नियमों और भूमिका आदि में निष्ठा ही नही रखता बल्कि वह इन्ही के आधार पर सामाजिक व्यवहार करता हैं । बहिर्मुखी व्यक्तियों में सामाजिक प्रौढ़ता अन्तर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक पायी जाती हैं । सामाजिक प्रौढ़ता का विकास धीरे- धीरे आयु बढ़ने के साथ-साथ होता हैं ।

सामाजिक प्रौढ़ता के विभिन्न स्तर निम्न है :-

युवावस्था में व्यक्ति को अनेक नये पद प्राप्त होते है और उनसे सम्बंधित भूमिकाओं को उसे निभाना पड़ता हैं । उसे एक पति, पिता, दामाद, अधिकारी आदि की परिस्थितियाँ प्राप्त होती है और उसके अनुरूप भूमिकाएँ भी निभानी होती हैं ।

इस अवस्था में वह परिवार तथा बाह्य जगत में कई महत्वपूर्ण दायित्वों को निभाता हैं, कभी-कभी उसे भूमिका संघर्ष (Role Conflict) की स्थिति का भी सामना करना पड़ता हैं ।

प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति पर सामाजिक दायित्व और अधिक बढ़ जाते हैं । उस पर अपने बच्चों की शिक्षा एवं विवाह आदि का भार पड़ता है । उसे ऑफिस में वरिष्ठ अधिकारी या सेवक के रूप में नये उत्तरदायित्व निभाने होते हैं ।

जोंनसन का कहना है कि कम से कम तीन कारणों से वयस्कों का सामाजिक विकास बच्चों के सामाजिक विकास से सरल होता हैं:-

1. वयस्क साधारणतया उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने को प्रेरित होता है जो स्वयं वह देख चुका है,

2. जिस नयी भूमिका को वह आन्तरीकृत (Internalize) करने का प्रयास करता है, उसमें और उसके व्यक्तित्व में पहले से उपस्थित भूमिका में काफी समानता होती हैं ।
3. विकसित भाषा के माध्यम से वह समाजीकरण कर लेता हैं ।

वृद्धावस्था में व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दृष्टि मे कई परिवर्तन आते हैं । अब वह दादा, परदादा, ससुर, नाना आदि कई नये पद ग्रहण करता है एवं उसके अनुरूप भूमिकाएँ भी निभाता हैं । यदि वह नौकरी कर रहा है तो सेवानिवृत्त कर दिया जाता हैं । अब वह आर्थिक रूप से कमाने योग्य नही रहता हैं । अत: उसे पराश्रित होना पड़ता है अनेक इच्छाओं का दमन करना पड़ता हैं । नयी परिस्थियों से अनुकूलन (adoptation) न कर पाने की अवस्था मे उसे कई तनावों को सहन करना पड़ता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को बताइए ।
2. सामाजिक प्रौढ़ता का अर्थ स्पष्ट करें ।

5.7 संवेगात्मक विकास

प्रस्तावना

बालकों के जीवन में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है । संवेगों के कारण कभी कभी व्यक्ति इतना प्रेरित हो जाता है कि वह जाति, धर्म, देश, और मानवता के लिए बड़े-बड़े कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता हैं ।

प्रेम, भय, क्रोध, घृणा आदि संवेग बच्चे के व्यक्तित्व और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार केवल उसकी शारीरिक वृद्धि और विकास को ही प्रभावित नही करता बल्कि बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक, और सौन्दर्यबोध के विकास पर भी यथेष्ट प्रभाव डालता हैं ।

संवेग, भाव, या अनुभूति के अति निकट होने के कारण जब भाव की मात्रा बढ़ जाती है तब शरीर उद्दीप्त हो जाता है, इस उद्दीप्त अवस्था को ही संवेग (भय, क्रोध, प्रेम, चिन्ता, ईर्ष्या, जिज्ञासा आदि) कहते हैं । संवेग के कारण व्यक्ति कभी-कभी इतना प्रेरित हो जाता है कि वह राष्ट्र, धर्म, जाति, समूह और मानवता के लिए बहुत बड़े बड़े कार्य करने के लिए तत्पर हो जाता हैं । इस अवस्था में वह कठिन से कठिन कार्य कर जाता हैं । अत: संवेगों का बालकों के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान हैं । संवेग प्राणी या व्यक्ति को आकस्मिक परिस्थितियों में सुरक्षा भी प्रदान करते है क्योंकि इनकी उपस्थिति मे व्यक्ति की क्रियाशीलता अधिक बढ़ जाने से वह खतरनाक परिस्थितियों में अपनी रक्षा कर सकता हैं ।

5.7.1 संवेग का अर्थ

'संवेग' पद का अंग्रेजी रूपान्तर (emotion) है । जो लैटिन शब्द "Emovere"' से बना है जिसका अर्थ उत्तेजित करना (to excite) होता हैं । इस शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुये तब यह कहा जा सकता कि संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था का दूसरा नाम है ।

इस अर्थ में (Creldard 1965) क्रीलार्ड ने कहा है,

"संवेग क्रियाओं का उत्तेजक हैं ।"

लेकिन संवेग में केवल उत्तेजित अवस्था ही नही होती बल्कि कुछ प्रक्रियाएँ भी होती हैं। इंगलिश एवं इंगलिश (English and English 1958) के अनुसार - "संवेग में एक जटिल भाव की अवस्था होती है जिसमें कुछ खास-खास शारीरिक एवं ग्रन्थीय क्रियाएँ होती हैं ।"

"Emotion is a complex feeling state accompanied by characteristic motor or grandular activities" English & English (A comprehensive dictionary of Psychological and Psychoanalytic terms 1958. P.176)

बेरोन, बर्न तथा कैन्टोविज के अनुसार संवेग से तात्पर्य एक ऐसे आत्मनिष्ठ भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरिक उत्तेजना पैदा होती है फिर कुछ खास-खास व्यवहार होते है ।

"By emotion we mean a subjective feeling state involving physiological arousal accompanied by characteristic behaviours".

(Baron, Byrne and Kanowitz: Psychology 1980.P.293)

इन परिभाषाओं को यदि गौरपूर्वक देखें तो हम पाते है कि संवेग एक जटिल अवस्था हैं, जिसमें कुछ आंगिक क्रियाएँ - (bodily reactions) जिसे दैहिक तत्व (Physical component) कहा जाता है । कुछ अभिव्यंजक व्यवहार (expressive behaviour) जिसे व्यवहारपरक तत्व (behavioural component) कहा जाता है तथा उद्दीपक या परिस्थिति के प्रत्यक्षण के अनुसार आत्मनिष्ठ भाव (subjective feeling) होता हैं । इस तरह संवेग के कई पहलू है आइए इनसे परिचित हो ।

(i) संवेग एक जटिल अवस्था होती है (Emotion is a complex state) संवेग की अवस्था एक जटिल अवस्था होती है क्योंकि इसमें बहुत तरह के शारीरिक परिवर्तन, भाव (feeling) आदि सम्मिलित होते है । इससे व्यक्ति में उत्तेजनशीलता का स्तर काफी बट जाती हैं तथा प्राणी अपने पूरे शरीर में एक हलचल (agitation) या उपद्रव (disturbance) महसूस करता है ।

(ii) संवेग का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू उसमें होने वाली आंगिक प्रतिक्रियाएँ (bodily reaction) हैं । प्रत्येक संवेग में कुछ भीतरी या आंगिक प्रतिक्रियाएँ होती है । इस अवस्था में शरीर के भीतरी अंगों जैसे हृदय (Heart), आंत (Intestine) फेफडा (Lungs), ग्रंथियाँ (Glands) आदि में कुछ विशेष प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं । जैसे क्रोध में प्राय रक्त चाप बढ़ जाता है । डर से दिल की धड़कन तेज हो जाती हैं ।

(iii) संवेग में कुछ अभिव्यंजन व्यवहार भी होते हैं । (Emotional involves expressive movements.)

संवेग की अवस्था में शरीर के भीतर अंगों के कार्यो में ही सिर्फ परिवर्तन नहीं होता हैं। बल्कि शरीर के बाहरी अंगों जैसे हाथ, पैर, आँख, चेहरा आदि में कुछ परिवर्तन होते

हैं। जिन्हें देखकर हम समझ जाते है कि व्यक्ति संवेग की स्थिति में है । इससे स्पष्ट है कि अपने शरीर के बाहरी अंगों में परिवर्तन लाकर व्यक्ति संवेग अभिव्यक्त करता है। यही कारण है कि क्रोध के समय व्यक्ति का चेहरा लाल, होंठ कांपते हुये तथा भुजाएँ फड़कती हुई दिखाई देती है । इस अभिव्यंजक व्यवहार (Expressive behaviour) को देखकर हम आसानी से समझ लेते है कि व्यक्ति क्रोध की अवस्था में हैं ।

(iv) संवेग में किसी न किसी तरह आत्मनिष्ठा भाव अवश्य होता है (Emotional necessarily involves some varities of subjective feeling) प्रत्येक संवेग में किसी न किसी प्रकार का भाव अवश्य छिपा होता हैं । सामान्यत: संवेग में सुखद (pleasantness) या दुखद (unpleasantness) भाव की अनुभूति पायी जाती हैं । भय (fear) में दुःखद भाव की अनुभूति तथा खुशी में सुखद भाव की अनुभूति इस बात पर आधारित होती है कि व्यक्ति संवेग उत्पन्न करने वाले उद्दीपक या परिस्थिति को किरन ढंग से प्रत्यक्षण करता है । इस संवेग का संवेगात्मक तत्व (cognition component) कहा जाता है ।

यह बात अन्य संवेगों की स्थिति में भी पायी जाती हैं । कोई भी संवेग बिना भाव (feeling) के नहीं हो सकता और यदि कोई स्थिति (state) ऐसी होगी भी तो उसे संवेग नही कहा जायेगा । जैसे कसरत या व्यायाम (Exercise) करने की स्थिति संवेग की स्थिति नहीं कहलाती हैं, क्योंकि इसमें किसी प्रकार का भाव नही होता हैं, हालांकि कसरत करते समय संवेग के समान ही आंगिक परिवर्तन (organic changes) तथा अभिव्यंजन व्यवहार (expressive movements) होते हैं । कसरत करते समय हृदय की गति बढ़ जाती हैं, रक्त चाप (blood pressure) भी बढ़ जाता हैं, चेहरा लाल हो जाता है, श्वसन की गति तीव्र हो जाती हैं । फिर भी यह संवेग नही होता क्योंकि इसमें कोई सुखद या दुःखद भाव (feeling) नहीं होता हैं इस तरह से हम देखते है कि संवेग एक ऐसी जटिल अवस्था है जहाँ मूल रूप से तीन तत्व (elements) महत्वपूर्ण होते हैं ।

आंगिक प्रतिक्रियाएँ (organic reactions), अभिव्यंजन व्यवहार (expressive movements) तथा सुखद या दुखद भाव (feelings) संवेग के स्वरूप को ध्यान में रखते हुये सुखद या दुःखद भाव का होना अधिक महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इसके अभाव में संवेग, संवेग नहीं रह जाता हैं ।

5.7.2 संवेग की विशेषताएँ

संवेग का सही सही अर्थ समझकर उसका विशेष रूप से अध्ययन करना कई कारकों (factors) के कारण थोड़ा कठिन माना गया हैं संवेग की अभिव्यक्ति (expression) को छिपाया जा सकता हैं । प्राय: ऐसे लोग मिल जाते हैं जो ऊपर से तो संवेग नहीं दिखलाते हैं परन्तु भीतर से उनमें तीव्र संवेग होता हैं जैसे ऊपर से ऐसे व्यक्ति हँसकर बोलते हैं परन्तु भीतर से क्रोधित हो सकते हैं इन कठिनाइयों को ध्यान मे रखते हुये मनोवैज्ञानिकों ने संवेग के

कुछ ऐसे गुणों का वर्णन किया है जिसके आधार पर करीब-करीब सभी तरह के संवेगों को ठीक ढंग से समझा जा सकता है । सिल्वरमैन (silverman 1978) के अनुसार संवेग की ऐसी निम्न चार विशेषताएँ हैं -

(1) **संवेग विकीर्ण होता हैं** (Emotion is diffused) - संवेग में विकीर्णता से मतलब इस बात से होता है कि सांवेगिक उद्दीपक (emotional stimulus) पूरे शरीर की क्रियाओं में एक तरह का परिवर्तन या तनाव लाता हैं । दूसरे शब्दों मे यह कह सकते है कि संवेग में शरीर के किसी एक भाग में नही बल्कि पूरे शरीर में एक तरह का तनाव फैल जाता हैं ऐसा इसलिए होता है क्योंकि संवेग की स्थिति में शरीर के भीतरी अंगो की क्रियाओं में थोड़ी देर के लिए परिवर्तन हो जाता हैं, जिसका प्रभाव स्वभावत: पूरे शरीर में होता हैं । संवेग कई तरह के होते है और प्रत्येक संवेग में इस तरह के तनाव की विकीर्णता (diffuseness or spread) का स्वरूप अलग-अलग होता हैं । यहाँ तक की एक ही संवेग में भिन्न भिन्न व्यक्तियों में तनाव की विकीर्णता अलग-अलग होती हैं । जैसे कोई व्यक्ति क्रोधित होने पर काफी उत्तेजित हो जाता हैं, उसके होंठ, पैर, हाथ आदि काँपने लगते हैं जबकि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो क्रोध की अवस्था में सिर्फ आवाज ऊँचा कर बोलते हैं और उनमें दूसरे तरह का शारीरिक परिवर्तन देखने को नही मिलता हैं । अन्य संवेग जैसे भय, खुशी, डर आदि में भी तनाव की विकीर्णता (diffuser or spread) या फैलाव पूरे शरीर में होता हैं । अत: सभी संवेगों मे विकीर्णता (diffuseness) पायी जाती हैं ।

(2) **संवेग सत्त होता हैं** (Emotion is Persistence) - संवेग में सत्त (persistence) या निरंतरता (continuity) का गुण होता हैं । जब भी कोई संवेग उत्पन्न होता हैं, उद्दीपक (stimulus) (जिससे संवेग उत्पन्न हुआ हैं) के हट जाने के बाद भी कुछ देर तक संवेग बना रहता हैं । जैसे मान लीजिए कि कोई व्यक्ति के सामने साँप आ जाता हैं जिसे देखकर उसमें डर का संवेग उत्पन्न हो जायेगा । साँप उस व्यक्ति को देखकर छिप जाता हैं या दूर चला जाता हैं । ऐसी परिस्थिति में जब कि साँप व्यक्ति के सामने से हट गया हैं, फिर भी डर का संवेग व्यक्ति मे कुछ समय तक बना रहेगा । ऐसा नही होता कि साँप उधर आँख से ओझल हुआ और इधर व्यक्ति से भय या डर का संवेग समाप्त हो गया । अत: संवेग मे उद्दीपक (stimulus) के हट जाने के बावजूद भी कुछ समय तक निरंतरता (continuity) बनी रहती हैं । यह बात केवल भय या डर के संवेग में ही नही अपितु प्रत्येक संवेग में होती हैं । संवेग में निरंतरता बने रहने का मूल कारण शरीर के भीतरी अंगो की चिकनी मांसपेशियाँ (Muscles) तथा उसका कार्य (function) हैं । इन मांसपेशियों की बनावट ही ऐसी होती है कि वे जल्दी किसी उद्दीपक (stimulus) द्वारा उत्तेजित (excite) नही होती है और यदि उत्तेजित हो गयी तो फिर सामान्य अवस्था में आने में कुछ समय लगता हैं । यह समय जितना अधिक होगा, संवेग निरंतरता भी उतनी ही अधिक होगी ।

(3) संवेग संचयी होती हैं-

संवेग में संचयी का गुण होता हैं । संवेग जब एक बार उत्पन्न हो जाता है तो थोड़ी देर के लिए उत्तरोत्तर वह अपने आप ही बढ़ता चला जाता हैं । ऐसा इसलिए होता है कि संवेग व्यक्ति में एक खास प्रकार की मानसिक तत्परता (Mental Readiness) उत्पन्न करता है जिससे व्यक्ति उसी दिशा में प्रतिक्रिया और अधिक करना चाहता हैं । प्राय: संवेग का स्वरूप अभिप्रेरणात्मक होता हैं (emotions are motivational in nature) संवेग की इस विशेषता पर विटेकर (Whittaker, 1970) एवं मार्गन, किंग तथा रॉबिन्सन (Morgan King and Robinson, 1881) ने अधिक बल डाला हैं । प्राय: देखा गया है कि जब व्यक्ति में तीव्र संवेग उत्पन्न होता है तो उसका व्यवहार किसी खास लक्ष्य की ओर तेजी से अग्रसित होता हैं । उदाहरण कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति में काफी डर गया है तो वैसी हालत में वह या तो भाग जायेगा या अपने आप को कही ऐसी जगह छुपा लेगा कि डर उत्पन्न करने वाला उद्दीपक उसे दिखलाई ना पड़े । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते है कि संवेग में व्यक्ति कोई न कोई व्यवहार अवश्य ही ऐसा करता है जो किसी खास लक्ष्य की ओर निदेशित होता हैं ।

5.7.3 संवेगों के प्रकार

संवेगों को मोटे तौर पर दो भागो में बाँटा जा सकता हैं । इसमें से एक को सकारात्मक संवेग (Positive Emotions) तथा दूसरे को नकारात्मक संवेग (negative emotions) कहा जाता हैं ।

भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि विषादमुक्त संवेग जो व्यक्ति और समाज के लिए अहितकर सिद्ध होते हैं, नकारात्मक संवेग कहलाते हैं । जबकि प्रेम, उल्लास, सृजनात्मकता आदि मन को आहलादित या प्रसन्न करने वाले संवेग जो व्यक्ति एवं समाज के लिए हितकर तथा उपयोगी सिद्ध होते, सकारात्मक संवेग कहलाते हैं । संवेग चाहे नकारात्मक या सकारात्मक हो उनकी अधिक तीव्रता अथवा अत्यधिक आवृत्ति (Frequency) अहित कर ही सिद्ध होती हैं । दूसरी ओर बुरे समझे जाने वाले नकारात्मक संवेग (Negative Emotions) बहुत ही उपयोगी तथा हितकर सिद्ध हो सकते हैं । लिण्डजे, हाल तथा थॅम्पसन (Lindzey, Hall and Thompson, 1978) ने संवेग को निम्न प्रमुख भागों में बाँटा हैं :-

5.7.3.1 प्रेम

प्रेम एक धनात्मक संवेग (Positive Emotion) हैं । जब व्यक्ति में किसी दूसरे व्यक्ति, पशु, स्थान के प्रति पंसदगी (Liking) तथा आकर्षण (attraction) विकसित हो जाता है, तो इस संवेगात्मक स्थिति को प्रेम (Love or Affection) की संज्ञा दी जाती हैं । इस संवेग में व्यक्ति दोस्ताना (Friendliness), सहानुभूति (Sympathy) तथा मदद (helpfulness) करने की प्रवृत्ति दिखलाता हैं । गैरिसन (Garrison, 1959) का कहना हैं कि प्रेम एक ऐसा संवेग है जिसकी शुरूवात बचपन से ही हो जाती हैं । तथा यह उन व्यक्तियों में अच्छी तरह से विकसित होता है जिन्हें अन्य व्यक्तियों से प्रेम मिला हैं । घर में बच्चे माँ के प्रति पिता की अपेक्षा सामान्य तौर पर अधिक

प्रेम दिखलाते है क्योंकि माँ के साथ उनके अन्तःक्रिया (Interaction) की घनिष्ठता अधिक होती है । टुलकिन (Tulkin 1973) ने अपने प्रयोग के आधार पर यह दिखलाया है कि बच्चे वैसे भाई-बहनों (Siblings) के प्रति भी प्यार दिखलाते हैं जो उनकी आलोचना नहीं करते एवं तंग नहीं करते हैं

5.7.3.2 आनंद तथा उल्लास

आनंद एक तरह का धनात्मक संवेग (Positive Emotion) है । जब आनंद की तीव्रता कम होती तो इसे खुशी (Pleasure or happiness) कहा जाता हैं परन्तु जब इसकी तीव्रता अधिक होती है तो इसे उल्लास (elation) कहा जाता है । जहाँ तक बच्चों में आनंद संवेग का प्रश्न हैं, यह उस बढ़ने के साथ साथ पूर्व कथनीय होता हैं । छोटे-छोटे शिशुओं में आनन्द शारीरिक क्रियाओं जैसे खड़ा होना, धीरे-धीरे चलना, दौड़ना आदि से होता है । विद्यालय पूर्व छात्रों (preschool children) में आनन्द मूलत: उन क्रियाओं से होता है जिसमें वे अपने साथियों (peers) को बुरी तरह फेरते हुए पाते हैं । जैसे, यदि कोई बच्चा कमीज पहनते समय अपना हाथ या पैर उसमें फँसा लेता है, तो इसे देखकर उसी उस के दूसरे बच्चों में आनन्द का संवेग होता है । प्राक्स्कूली बच्चे अचानक आवाज (sudden noise) आदि से भी काफी आनन्दित होते है । बड़े बच्चों में आनन्द का संवेग मूलत: उस समय होता है जब वे उस लक्ष्य (goal) की प्राप्ति कर लेते है जिसका निर्धारण वे अपने लिए करते हैं ।

5.7.3.3 उदासी एवं मंदन

उदासी (sadness or sorrow) एक ऐसी सांवेगिक प्रतिक्रिया (emotional reaction) है जो प्रिय (loved) वस्तु के खो जाने या फिर व्यक्ति के मर जाने से उत्पन्न होता है । अत: यह एक तरह का दुःखद संवेग (unpleasant emotion) हैं । अगर मंदन (depression) का कारण कोई अचानक सदमा (sudden trauma) होता है या जिंदगी में होने वाले लगातार हतोत्साहित अनुभूतियाँ (discouraging experiences) होती हैं, तो इस तरह के मंदन को प्रतिघातक मंदन (reactive depression) कहा जाता है । इस तरह के मंदन में व्यक्ति में गंभीर मानसिक बीमारी (serious mental illness) उत्पन्न होने का भय हो जाता है ।

5.7.3.4 ऊब

जब व्यक्ति के सामने न तो कोई स्पष्ट लक्ष्य (goal) होता है और न तो उसे अपनी उपलब्धि (achievement) से खुशी होती है और उसी तरह से जब व्यक्ति के सामने ऐसा कार्य होता है जिसमें न उसकी अभिरूचि होती है और न इच्छा ही, तो ऐसी परिस्थिति में उसमें एक विशेष संवेगात्मक स्थिति (emotional state) पायी जाती है जिसे ऊब (burdon) कहा जाता हैं । ऊब संवेग एक दुःखद संवेग (unpleasant emotion) होता है अत: व्यक्ति इस तरह की सांवेगिक स्थिति (emotional state) से जल्द से जल्द कुछ रचनात्मक कार्य (constructive work) करके छुटकारा पाना चाहता हैं ।

5.7.3.5 डर एवं दुष्चिंता

डर (Fear) तथा दुश्चिंता (anxiety) दोनों एक दूसरे से काफी संबंधित संवेग (related emotion) हैं । डर एक ऐसी संवेगात्मक स्थिति है जिसमें किसी ऐसे खतरनाक (dangerous) वस्तु या घटना के प्रति व्यक्ति को प्रतिक्रिया (reaction) करना होता है जिससे वह आसानी से छुटकारा नहीं पा सकता हैं । दुश्चिंता (anxiety) चिरकालिक डर (chronic fear) का दूसरा नाम हैं । दुश्चिंता में मानसिक स्थित अस्पष्ट (vague) होती है लेकिन यह संचयी (Cumulative) होती हैं और प्रत्येक क्षण यह एक खास समय तक बढ़ते ही जाती हैं ।

डर संवेग /शैशवास्था से ही होता देखा जाता हैं । प्राय: शिशु तीव्र आवाज (loud noise) अंधेरा कमरा, जानवर एकांत आदि से डर जाते है ।

5.7.3.6 क्रोध

क्रोध एक ऐसा संवेग है जिसकी उत्पत्ति एक ऐसा अवरोध या अड़चन (obstacle) से होता है जिसे दूर किया जा सकता हैं । क्रोध जब अत्यधिक (excessive) होता हैं या चिरकालिक (Chronic) होता है तो इसका प्रभाव विनाशक (distructive) होता हैं । क्रोध ऐसा संवेग है जो शैशावस्था से ही प्रारंभ हो जाता हैं । शैशावस्था (Infancy) तथा बचपनावस्था (childhood) में क्रोध की उत्पत्ति हल्के शारीरिक असुविधा (Minor Physical Discomfort) स्नान कराने, कपड़ा पहनाने तथा उन्हें जब उदासी के संवेग की तीव्रता (intensity) अधिक हो जाती हैं तो इसे शोक या विषाद (grief) कहा जाता हैं । बच्चों में उदासी (sorrow or Sadness) के संवेग की अभिव्यक्ति (expression) स्पष्ट (overt) व अस्पष्ट दोनों ढंग से होता हैं । जब बच्चा उदासी को स्पष्टरूप से अभिव्यक्ति करता हैं, तो वह रोना (crying) प्रारम्भ कर देता हैं । जब वह अस्पष्ट एवं परोक्ष रूप से अभिव्यक्त करता है, तो उसमें भूख की कमी, नींद की कमी, खेलने की अनिच्छा आदि क्रियाएँ करता हैं ।

जब उदासीन संवेग व्यक्ति ने चिरकालिक (Chronic) हो जाता है तो व्यक्ति को कुछ भी अच्छा नही लगता हैं और जिन्दगी में उसके लिए न तो कोई आशा (hope) और ना ही कोई संतावना (Consolation) ही रह जाता हैं । इस तरह की सांवेगिक स्थिति को मंदन (depression) की संज्ञा दी जाती हैं । मनचाही शारीरिक क्रियाएँ (Physical Activities) को न करने देने से उत्पन्न होता हैं । बड़े बच्चों में यानी 13-14 साल के बच्चों में क्रोध दूसरे कारणों से भी उत्पन्न होता हैं । जैसे, जब इनकी इच्छा संतुष्ट नही हो पाती हैं, तो इनमें संतुष्ट नही हो पाती हैं, तो इनमें क्रोध उत्पन्न होता हैं । जब उन्हें कोई चिढ़ाता (tease) हैं तथा जब उनके माता-पिता प्रतिकूल तुलना (unfavourable comparision) दूसरे बच्चे या व्यक्तियों से करते है तो इससे भी उनमें क्रोध उत्पन्न होता हैं ।

व्यक्ति क्रोध संवेग की अभिव्यक्ति (expression) दो ढंग से करता हैं । आवेगशील अनुक्रिया (impulsive responses) के रूप में तथा निरोधी अनुक्रिया (inhibited

responses) के रूप में । जब क्रोध की अभिव्यक्ति आवेगशील अनुक्रिया के रूप में होती है तो इसे आक्रमणशीलता (aggression) की संज्ञा दी जाती हैं ।

अधिकतर आवेगशील अनुक्रिया बच्चे दूसरे बच्चों के प्रति ही करते हैं जैसे दाँत काटकर, सिर के बाल नोचकर, कपड़ा फाड़कर, किताबें फाड़कर, गाली देकर आदि । इस तरह की अनुक्रियाओं को बाध्य दण्डात्मक अनुक्रिया (extra punitive responses) कहा जाता हैं ।

कुछ आवेगशील अनुक्रियाएँ ऐसे भी होती है जिन्हें बच्चा स्वयं के प्रति करता हैं । जैसे क्रोध में आकर बच्चा अपनी ही कमीज फाड़ लेता हैं, स्वयं के बाल नोचता हैं, सर पीटता है आदि इस तरह की अनुक्रिया को आत्मदण्डात्मक अनुक्रिया (controlled way) कहा जाता हैं ।

क्रोध की अभिव्यक्ति कुछ निरोधी अनुक्रिया (inhibited responses) द्वारा भी होती हैं । इसमें क्रोध की अभिव्यक्ति नियंत्रित रूप (controlled way) में होती हैं । वयस्क अपने क्रोध की अभिव्यक्ति निरोधी क्रियाओं द्वारा ही करते हैं ।

प्राय: देखा गया है कि एक वयस्क व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्ति से क्रोधित हो जाता है तो उससे मिलना जुलना कम कर देता हैं । इतना ही नही, ऐसा व्यक्ति सामान्य वातावरण (general environment) से भी अपनेआप को खींच लेता हैं । इस तरह की विरोधी अनुक्रिया को अदण्डित व्यवहार (impunitive behaviour) कहा जाता हैं ।

5.7.3.7 ईर्ष्या या डाह (Jealousy):-

डाह एक तरह का जटिल संवेग (Complex Emotion) हैं । इसमें डर (Fear) तथा क्रोध (Anger) दोनों संवेग मिले होते हैं । जब बालक पहले से मिल रहे अनुराग (Affection) में वास्तविक (Actual) या काल्पनिक (Supposed) कमी महसूस करता हैं तो इससे उसमें डाह या ईर्ष्या उत्पन्न होती हैं । वह अपने आप को हमेशा असुरक्षित (insecure) महसूस करता हैं और हमेशा उसे यह डर रहता है कि उसका स्थान दूसरा व्यक्ति लेने वाला हैं ।

5.8 संवेगात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

विकास अपने सामान्य रूप में आयु बढ़ने के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों का ही दूसरा नाम हैं । संवेगात्मक विकास में निम्न प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलने हैं :-

(1) जन्म के पश्चात् बच्चे में धीरे-धीरे विभिन्न संवेगों का जन्म होता रहता हैं ।

(2) बचपन में संवेगों को जागृत करने वाले उद्दीपक (Stimulus) की प्रवृत्ति में भी बाद में पर्याप्त अन्तर आता चला जाता हैं ।

(3) संवेगों के अभिव्यक्त करने का ढंग भी परिवर्तित हो जाता हैं ।

इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुये विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले संवेगात्मक विकास का निम्नलिखित रूप से वर्णन किया गया हैं ।

5.8.1 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

अपने जन्म के समय से ही अपनी चीख पुकार और हाथ पैर चलाने के द्वारा अपने अंदर संवेग की उपस्थिति का आभास देता हैं । शेषवावस्था में केवल माँ ही अपने बच्चे के रोने और चिल्लाने का प्रयोजन समझ सकती हैं ।

संवेगों का विकास बालक में धीरे-धीरे जैसे-जैसे वह वातावरण के सम्पर्क में आता जाता है होता जाता हैं । जब बालक एक वर्ष का होता है तब उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ लगभग उसी प्रकार होती है जैसे वयस्क व्यक्तियों की होती हैं । बच्चे की जैसे जैसे आयु बढ़ती है उसमें भय, क्रोध जिज्ञासा, ईर्ष्या, प्रसन्नता, प्रेम आदि संवेगों का विकास होते रहता हैं । बालक जब छोटा होता है तब उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति मे शारीरिक क्रियाओं की प्रधानता होती हैं । जैसे-जैसे उसकी आयु बढ़ती है भाषा का विकास होने के कारण शारीरिक क्रियाओं की अभिव्यक्ति कम होती जाती हैं ।

5.8.2 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

बाल्यावस्था के प्रारम्भ काल तक बच्चे में प्राय सभी संवेगों का जन्म हो चुका होता है। बाल्यावस्था के आखिरी वर्ष में बालक अपने संवेग की अभिव्यक्ति उचित माध्यम से करने का प्रयास करता हैं । संवेगात्मक रूप से अब उसमें स्थिरता एवं गम्भीरता आने लगती हैं ।

परिवर्तनों के मूल में कई कारण हैं प्रथम तो अपनी भावनाओं का व्यक्त करने में उसे भाषा का माध्यम मिल जाता हैं और दूसरा वह अधिक सामाजिक हो जाता हैं और यह अनुभव करने लगता हैं कि अब उसे डरना या बातचीत में रोना अथवा गुस्सा होना शोभा नही देता । तीसरा उसमें बुद्धि का पर्याप्त विकास होने के कारण वह संवेगात्मक उफान पर नियंत्रण स्थापित करने में सफल या समर्थ हो जाता हैं ।

इस प्रकार बालक बाल्याकाल में पदार्पण करने के साथ संवेगात्मक स्थिरता और परिपक्वता की ओर बढ़ना प्रारम्भ करता हैं ।

5.8.3 किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

किशोरावस्था में एक बार फिर संवेगात्मक संतुलन बिगड़ जाता हैं । इस समय संवेगों में आँधी और तूफान की सी गति एवं प्रचण्डता होती हैं । इसलिए किशोरावस्था को तूफान एवं तनाव का काल कहा जाता हैं । जीवन की किसी अन्य अवस्था में संवेगात्मक शक्ति का प्रवाह इतना भीषण नही होता जितना की इस अवस्था में पाया जाता हैं । एक किशोर के लिए अपने संवेगों पर नियंत्रण रखना कठिन होता हैं । यौनि-ग्रन्थियों के तेजी से क्रियान्वित होने और शारीरिक शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के कारण बाल्यावस्था में पाई जाने वाली संवेगात्मक स्थिरता और शांति भंग हो जाती हैं । वे संवेगात्मक दृष्टि से बहुत चंचल और अस्थिर हो जाते हैं । वे जरा -जरा सी बात पर बिगड़ जाना, उत्तेजित हो जाना, निराश होना, आत्महत्या पर उतारू हो जाना, प्रथम दृष्टि में एक दूसरे को दिल दे बैठना आदि किशोरों के संवेगात्मक व्यवहार की विशेषताएँ हैं ।

5.8.4 प्रौढ़ावस्था में संवेगात्मक विकास

प्रौढ़ावस्था में संवेगात्मक विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता हैं । इस अवस्था में प्राय: सभी व्यक्तियों में संवेगात्मक परिपक्वता आ जाती हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. संवेग का अर्थ एवं विशेषताओं का वर्णन करें ।
2. उपयुक्त उदाहरणों द्वारा संवेग के प्रकारों का वर्णन करें ।
3. संवेग के विकास को सीखने का महत्व बताइए ।
4. संवेगात्मक विकास परिपक्वता और अधिगम का परिणाम हैं- व्याख्या कीजिए ।

5.9 संवेगात्मक अपरिपक्वता का अर्थ

व्यक्ति को संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व कहा जा सकता है जो अपने संवेगों पर उचित अंकुश नही रखते हुये उन्हें अभिव्यक्त कर देता हैं ।

ऐसे व्यक्ति में निम्न विशेषताएँ पायी जाती हैं :-

(1) उनके व्यवहार में प्राय: संवेग के दर्शन की कमी होती है और कब किस संवेग की अभिव्यक्ति हो रही है उसका उन्हें भली भाँति ज्ञान नहीं होता हैं ।

(2) वह अपने संवेगों की अभिव्यक्ति समाज के नियम और आचरण संहिता को ध्यान में रखकर नही करता हैं ।

(3) वह अपने संवेग पर अंकुश नही रख सकता और व्यर्थ मे ही उफन पड़ता हैं और उसे अपनी भावनाओं को छिपाने की क्षमता नही आती हैं ।

(4) भावनाओं और संवेगों के प्रवाह मे बहकर वह बौद्धिक एवं मानसिक शक्तियों का ठीक तरह से उपयोग नही करता हैं ।

(5) अपरिपक्व संवेगात्मक वाले व्यक्ति का व्यवहार अस्थायी होता हैं । ऐसा व्यक्ति एक क्षण में कुछ तथा दूसरे क्षण मे कुछ इस प्रकार का व्यवहार करता पाया जाता हैं ।

5.10 संवेगात्मक लब्धि

संवेगात्मक बुद्धि के मापन परिणामों को व्यक्त करने के लिए हम जिस इकाई विशेष का प्रयोग करते है उसे ही संवेगात्मक लब्धि (Emotional Quotient) और संक्षेप में ईक्यू (Emotional Quotient) कहा जाता हैं । सभी बालकों में अपने जन्म के समय से कुछ न कुछ संवेगात्मक बुद्धि भी पाई जाती है और इसे अनुभव, प्रशिक्षण और परिपक्वता के माध्यम से आगे विकास की दिशा प्राप्त होती रहती हैं । जितनी संवेगात्मक बुद्धि बालक विशेष में आज है वह कल भी उतनी ही मात्रा में विद्यमान रहेगी ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता और यह भी जरूरी नहीं है कि आयु के बढ़ने के साथ-साथ या अनुभवों में वृद्धि हो जाने के कारण संवेगात्मक बुद्धि के स्तर में आगे वृद्धि ही होती रहेगी । विपरीत दिशा में भी यह बात कही जा सकती है कि किसी की संवेगात्मक बुद्धि का स्तर पहले की अपेक्षा कम भी हो सकता है और इसमें परिस्थिति विशेष के संदर्भ में गिरावट आ सकती हैं । जहाँ अनुकूल परिस्थितियाँ किसी के संवेगात्मक बुद्धि स्तर में बढ़ोतरी कर सकती है वही प्रतिकूल परिस्थितियों में इसमें भारी क्षय और गिरावट आ सकती हैं ।

किसी की संवेगात्मक लब्धि से तात्पर्य उसकी संवेगात्मक बुद्धि स्तर की उस सापेक्ष माप से होता हैं । जिसका मापन परिस्थिति विशेष में सम्पन्न किसी समय विशेष पर किया गया हो ।

5.11 संवेग जागृत करने की परिस्थितियाँ

बाल्यावस्था के प्रारम्भ में बच्चे ने प्राय: सभी संवेगों का जन्म हो चुका होता हैं । अत: बाल्यावस्था में कोई नवीन संवेगों की उत्पत्ति न होकर संवेग जागृत करने वाली परिस्थितियों और उद्दीपकों की प्रवृति और संवेगों को अभिव्यक्त करने के ढंग में परिवर्तन होते रहता हैं ।

शैशावस्था में बच्चा बहुत स्वार्थी होता है । वह अपनी ही हित साधना में लीन रहता है। अत: प्राय भूख, प्यास, नींद, माँ-बाप का स्नेह, खिलौनो की इच्छा आदि तत्काल आवश्यकताओं द्वारा ही संचालित होते हैं । लेकिन जैसे जैसे वह बड़ा होता जाता है उसकी दुनिया भी बड़ी होती जाती है और अब उसके संवेग अनेक प्रकार के उद्दीपको और परिस्थितियों द्वारा जागृत होना प्रारम्भ कर देते हैं ।

सामाजिक वातावरण बालकों को संवेगों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता हैं । बालक जैसे वातावरण - में रहेगा या रहता है उसमें उसी प्रकार से संवेग उत्पन्न और विकसित होते हैं । उदाहरण के लिए यदि बालक ऐसे व्यक्तियों के मध्य रहेगा जहाँ मारपीट, लड़ाई झगड़ा, गाली गलौच होती है तो बालक में भी क्रोध संवेग का विकास शीघ्र ही विकसित होगा ।

बड़े परिवारों में बच्चों में संवेग अपेक्षाकृत जल्दी उत्पन्न होते है क्योंकि से बच्चे अन्य बच्चों और बड़े व्यक्तियों के सम्पर्क में अधिक आने के कारण अनुकरण (Imitation) द्वारा विभिन्न संवेगों को सीखते हैं ।

सामाजिक आर्थिक स्तर भी बालक के संवेगों पर प्रभाव डालते हैं । उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के बालकों मे संवेगात्मक स्थिरता अधिक होती जबकि निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के बालकों मे संवेगात्मक अस्थिरता अधिक होती हैं ।

निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बालकों में हिंसा सम्बंधी भय अधिक मात्रा मे होता है परन्तु उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवार के बच्चों में भय अपेक्षाकृत कम होता हैं ।

माता-पिता का एक बच्चे को अधिक प्यार व ध्यान देने से भी दूसरे बालक मे ईर्ष्या, क्रोध, झगडना आदि संवेग उत्पन्न होते हैं ।

जो माता-पिता अपने बच्चों को अधिक लाड़-प्यार, अधिक देखभाल (Over Protecting) करते है प्राय: उनके बच्चे माता-पिता पर अधिक आश्रित होने के कारण क्रोधी होते हैं । जो माता-पिता कठोर (Strict) होते है उनके बालक दब्बू और शीघ्र भयभीत होने वाले होते हैं । कुछ माता-पिता ऐसे होते है जो बालकों का तिरस्कार (Reject) करते है ऐसे बालक आक्रमक एवं क्रोधी होते हैं ।

5.12 संवेग पर नियंत्रण

प्रत्येक सामाजिक समूह बालकों से यह अपेक्षा करता है कि वे संवेगों पर नियंत्रण करना सीखे । सम्भवत: इसी कारण बालकों के संवेगों को उचित दिशा में नियंत्रण करना आवश्यक हैं । अनेक अध्ययनों में यह सिद्ध हो चुका है कि जब एक बार संवेगात्मक व्यवहार प्रतिमानों को बालक अच्छी तरह सीख लेता हैं तो उसको छोड़ना उसके लिए कठिन होता हैं । साथ ही साथ उसको संशोधित करना भी कठिन होता हैं । (T.A. Jersield et al 1974)

संवेगात्मक नियंत्रण में सुखात्मक और दुखात्मक, दोनों प्रकार के संवेगों को नियंत्रित करना होता है । सुखात्मक संवेगों को उचित दिशा प्रदान करने की आवश्यकता होती है जबकि दुखात्मक संवेगों को एक विशिष्ट ढंग अथवा समाज द्वारा मान्य ढंग से व्यक्त करना या सीखने की आवश्यकता होती हैं ।

संवेगों पर निम्न प्रकार से नियंत्रण किया जा सकता है :-

5.12.1 शमन

यह एक प्रकार की मानसिक मनोरचना (Mental Mechanism) है जिसके द्वारा व्यक्ति प्रिय, दुखद, कष्टकारी घटनाओं, विचारो इच्छाओं और प्रेरणाओं आदि को चेतना से जानबुझकर निकाल देता हैं ।

इस मनोरचना के द्वारा व्यक्ति, दुख और अप्रिय लगने वाली अनुभूतियों को इस मनोरचना के द्वारा बाहर निकाल देता हैं ।

5.12.2 संवेगात्मक शक्ति को समाज द्वारा स्वीकृत ढंग से व्यक्त करना

इस ढंग को मार्गान्तरीकरण (Redirection) भी कह सकते हैं । इसमें बालक को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है कि वह अपने संवेगों का प्रकाशन इस ढंग से करे कि लोग उसे पसंद करने लगे उदाहरण के लिए भय संवेग को इस प्रकार मार्गान्तरित किया जा सकता है कि बालक बुरे कार्यो को करने से डरने लग जायें ।

5.12.3 अध्यवसाय

बालकों के संवेगों को नियन्त्रित करने का एक ढंग यह हैं कि बालकों में संवेगों के उत्पन्न होने और व्यक्त करने का समय ही न मिले । इसके लिए आवश्यक है कि बालकों को पढ़ने लिखने या किसी अन्य लाभदायक काम में व्यस्त रखा जाये । जब बच्चे अपने रूचि के अनुसार कुछ कार्यो को करने मे व्यस्त रहते है तब उनमें संवेग कम उत्पन्न होते हैं ।

5.12.4 विस्थापन

पेज (J.D. Page 1960) के अनुसार यह वह मनोरचना (Mechanism) हैं जिसमें व्यक्ति किसी वस्तु या विचार से सम्बंधित संवेग किसी अन्य वस्तु या विचार पर स्थानान्तरित (Transfer) कर देता है जैसे स्त्री पर क्रोध व्यक्त न करके अपने कुत्ते या किसी अन्य पर क्रोध व्यक्त करना ।

5.12.5 प्रतिगमन

कोलमैन 1974 के अनुसार अहम् (Ego) एकता (Unity) और संगठन (Organisation) को बनाये रखने के लिए तथा तनाव (Stress) को दूर करने के लिए जब व्यक्ति कम परिपक्व (Maturity) प्रत्युत्तरों का सहारा लेता है तो यह प्रतिगमन मनोरचना (Regression Mechanism) कहलाती हैं । इस मनोरचना (Mechanism) में बालक अपने से कम आयु के बालकों जैसा व्यवहार कर अपने संवेगात्मक तनाव को दूर करता हैं । उदाहरण के लिए बालक ईर्ष्या और क्रोध को तोड़-फोड़ या बिस्तर को गीला (पेशाब) करके व्यक्त करता हैं ।

5.12.6 संवेगात्मक रेचन

रेचन का अर्थ है कि शामित (Repressed) संवेगों को मुक्त करना । रेचन को परिभाषित करते हुये हरलॉक (1974) ने लिखा है कि "Clearing the system of pent-up energy is known as emotional cathrasis" संवेगात्मक रेचन (Emotional Cathrasis) के दो प्रकार है :-

(क) शारीरिक रेचन

शारीरिक रेचन का अर्थ है संवेगों के कारण उत्पन्न शारीरिक शक्ति का व्यय होना । बालकों में संवेगों के कारण उत्पन्न शारीरिक शक्ति का व्यय मुख्यत: तीन प्रकार से होता है, जैसे विभिन्न खेलो द्वारा (दौडना कूदना, तैरना आदि) चिल्लाने के द्वारा या जोर से हँसने के द्वारा । परन्तु जोर से चिल्लाकर या जोर से हँस कर संवेगों द्वारा उत्पन्न शारीरिक शक्ति को व्यय करने के तरीके समाज द्वारा अधिक मान्य नही हैं ।

(ख) मानसिक रेचन

इसमें बालक संवेगों द्वारा उत्पन्न शक्ति का व्यय उन परिस्थितियों और व्यक्तियों के प्रति अपनी अभिवृत्तियों को बदल कर करता हैं जिनके कारण संवेग उत्पन्न हुये हैं । मानसिक रेचन के लिए संवेगात्मक सहनशीलता आवश्यक हैं । एक अध्ययन (J.L Singer,1968) मे यह देखा गया है कि अधिकांश बच्चे अपने संवेगों के कारण उत्पन्न शक्ति को निकालने के लिए दिवास्वप्नो (Day Dreams) का सहारा लेते हैं ।

मानसिक रेचन बालक उस समय उपयोग में लाता है, जब बालक में मानसिक योग्यताओं का विकास, पर्याप्त मात्रा में हो जाता हैं, विशेष रूप से कल्पना का विकास हो जाता हैं ।

अध्ययनों में देखा गया है कि बालक जो संवेगात्मक रेचन सीख जाते हैं, उन्हें उनके संवेगों से संतुष्टि ही प्राप्त नहीं होती हैं, बल्कि उन्हें उनके समूह से अनुमोदन (Approval) भी मिलता हैं ।

बालकों में संवेगात्मक रेचन निम्न प्रकार से सहायक होते है :-

1. बालकों को प्रतिदिन कुछ मेहनत का काम या खेल खेलने चाहिए ।
2. माता-पिता को चाहिए कि बालक के साथ स्वस्थ सम्बंध रखे और बालक को इस प्रकार का प्रशिक्षण दे कि वह किस प्रकार अपनी समस्याओं का समाधान करें ।
3. माता-पिता को चाहिए कि वह बालकों की संवेगात्मक समस्याओं को सुने और उन्हें समझाए कि वह किस प्रकार संवेगों को अपनाएँ ।
4. बच्चों को हँसमुख बनाये ।
5. बच्चों को सिखाया जाये कि वह किन परिस्थितियों में चिल्ला कर या जोर से बोलकर उत्पन्न संवेगों से छुटकारा पाएँ ।

5.13 संवेग को दबाने का दुष्परिणाम

संवेग की स्थिति में बाध्य शारीरिक परिवर्तन (External Bodily Changes) के अलावा व्यक्ति के शरीर के भीतर (Internal Bodily Changes) भी परिवर्तन होते हैं ।

संवेग बालक के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । उनका शारीरिक मानसिक, सामाजिक, नैतिक सभी प्रकार का विकास संवेगों द्वारा प्रभावित होता हैं ।

संवेग को दबाने के फलस्वरूप व्यक्तियों में मनोविकार और अनावश्यक मनो-ग्रंथियाँ जन्म लेती हैं और मानसिक रूप से घटित अनावश्यक तनाव एवं संघर्ष जन्म ले लेता हैं ।

बहुत अधिक डर एवं दुख में कारण व्यक्तित्व गूंगा भी हो सकता हैं । अधिक दुःख होने से हृदय की गति में परिवर्तन होता हैं और बीमारी के शिकार हो जाते हैं ।

बालकों के संवेगों को दबाने पर बालक भौंदू एवं दब्बू किस्म का हो जाता हैं । उसका शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही विकास अवरूद्ध हो जाते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. संवेग जागृत करने की विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन करें ।
2. संवेगात्मक बुद्धि, बुद्धि लब्धि से अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों है?
3. बालकों के संवेगों पर नियंत्रण रखना क्यों जरूरी हैं?
4. संवेगों को दबाने पर कौन कौन से दुष्परिणाम हो सकते हैं?

5.14 सारांश

संवेग बालक के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक सभी प्रकार का विकास और व्यवहार अनेक संवेगों द्वारा प्रभावित होता हैं ।

बालक में अथाह (प्रबल) ऊर्जा होती हैं । इस ऊर्जा को रचनात्मक कार्य द्वारा अनुकूल दिशा की ओर मोड़ा जा सकता हैं । जैसे ध्यान (Meditation), योग (Yoga), व्यायाम (Exercise), शोधन (Sublimation) मार्गान्तरीकरण (Redirection), त्योहार मनाना (Festival), सामाजिक उत्सव (Social Festival), मेला (Fair) आदि ।

किसी भी उग्र स्वभाव के उदंड बच्चे की संवेगात्मक शक्ति को कमजोर लोगों के रक्षक के रूप में समाज और राष्ट्र के शत्रुओं से जूझने के लिए प्रेरित किया जा सकता हैं ।

5.15 मूल्यांकन प्रश्न

1. "किशोरावस्था तूफान एवं तनाव का काल हैं" कैसे?
2. सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें ।
3. सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक हैं?
4. सामाजिक आर्थिक स्तर बालकों मे संवेगात्मकता पर किस प्रकार प्रभाव डालते हैं?
5. संवेगों का मार्गान्तीकरण और शोधन उपयुक्त उदाहरणों द्वारा समझाइए ?

5.16 संदर्भ ग्रंथ

1. Arnold M.B. -Emotions and personality (2 Vols) New York, Columbia university press, 1960
2. Carnichael L. (Ed) Manual of Child Psychology, New York, John Wiley 1946.
3. Garrett H.E General Psychology (2nd Ed) New Delhi, Eurasia Publishing House, 1968.
4. Goleman Daniel, Emotional Intelligence, why it can matter more than IQ, New York, Bantom Book 1995.
5. James William, Psychology, Brief Course, London Collies Macmillan Ltd., 1969.
6. Wood worth R.S., Psychology, London, Menthuem, 1995.
7. आनम श्रीवास्तव, तिवारी शर्मा, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल, बनारसीदास।
8. भाई योगेन्द्रजीत, बाल मनोविज्ञान बाल विकास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
9. प्रीति वर्मा एवं श्रीवास्तव, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
10. सिंह अरूण कुमार, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास ।

इकाई 6

अधिगम का अर्थ, प्रत्यय, स्वरूप और प्रकार

(Meaning, Concept, Nature and Types of Learning)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अधिगम का अर्थ, प्रत्यय व स्वरूप

6.3 अधिगम की विशेषताऐं

6.4 अधिगम की प्रक्रिया

6.5 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

6.5.1 मनोवैज्ञानिक कारक

6.5.2 शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य

6.5.3 ध्यान व अधिगम

6.5.4 रूचि व अधिगम

6.5.5 सीखने की इच्छा व अधिगम

6.5.6 अभ्यास व अधिगम

6.5.7 आकांक्षा का स्तर व अधिगम

6.5.8 बुद्धि व अधिगम

6.5.9 अभिवृत्ति व अधिगम

6.5.10 अभिरूचि व अधिगम

6.5.11 परिपक्वता व अधिगम

6.5.12 विषय सामग्री का स्वरूप व अधिगम

6.5.13 वातावरण का प्रभाव

6.6 अधिगम के प्रकार

6.6.1 निरीक्षणात्मक

6.6.2 अनुकरणात्मक

6.6.3 प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखना

6.6.4 सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना

6.6.5 अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ से सीखना

6.7 सारांश

6.8 मूल्यांकन प्रश्न

6.9 संदर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

व्यक्ति का विकास अधिगम पर आधारित हे । वह जीवन के प्रारम्भ से ही सीखना प्रारम्भ कर देता है तथा सीखने की यह प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है । अधिगम मानव के मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहार मे अनुभवों द्वारा संशोधन है ताकि बालक का व्यवहार व उसकी क्रियाऐं समाज सम्मत हो सकें । यदि अधिगम को मनोविज्ञान से हटा दिया जाऐं तो मनोविज्ञान शून्य हो जायेगा, क्योंकि अधिगम का आधार है व्यवहार जो कि मनोविज्ञान की आत्मा है । अत: इस इकाई की समाप्ति पर आप निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकेंगे-

- अधिगम के अर्थ, प्रत्यय व स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- अधिगम की विशेषताओं को जान सकेंगे ।
- अधिगम की प्रक्रिया को समझकर व्याख्या कर सकेंगे ।
- अधिगम को प्रभावित करने वाले तत्वों को समझ सकेंगे ।
- अधिगम के प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे ।
- अधिगम के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- अधिगम का महत्व समझ सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना

अधिगम किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रक्रिया है, यह एक सतत् शाश्वत रूप से चलने वाली प्रक्रिया है । अधिगम में व्यवहार परिवर्तन होता है, परन्तु सभी व्यवहार परिवर्तन अधिगम के कारण नहीं होते । आयु के साथ व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते है जिन्हें हम परिपक्वता की संज्ञा देते है । ये व्यवहार परिवर्तन का एक कारण बन सकते है, इसी प्रकार किसी आकस्मिक घटना के अक्षम होने के कारण व्यक्ति में व्यवहार परिवर्तन हो सकता है । मादक पदार्थों के सेवन से भी कुछ समय के लिए व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आ सकता है। परन्तु यह सभी परिवर्तन अधिगम की श्रेणी में नहीं आते ।

मनोविज्ञान में सीखने से अभिप्राय केवल उन्हीं परिवर्तनों से होता है जो अभ्यास या अनुभव के फलस्वरूप होते है । एक छोटा बच्चा जलते हुए दीपक की लौ पकड़ लेता है । लौ पकड़ने से उसका हाथ जल जाता है और उसे पीड़ा होती है । भविष्य में वह ऐसा कभी नहीं करता है इसे ही अनुभवों के द्वारा सीखना कहते है । एक व्यक्ति साइकिल चलाना नहीं जानता । शनै: शनै: वह साइकिल पर चढ़ना सीखता है और साइकिल चलाने में निपुणता प्राप्त कर लेता है । इसे प्रशिक्षण द्वारा सीखना कहते है । दैनिक जीवन में अधिगम के अनेक उदाहरण है । जैसे- पाठ याद करना, गणित के प्रश्न हल करना, कार चलाना, टाईप करना आदि । मानव के व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होते रहते है । मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस प्रकार के स्वाभाविक व्यवहार में होने वाले प्रगतिशील परिवर्तन या परिमार्जन को ही सीखना कहते है ।

6.3 अधिगम का अर्थ, प्रत्यय व स्वरूप

मानव व्यवहार को नियमित करने में अधिगम एक आधारभूत प्रक्रिया है । अधिगम मानव व्यवहार के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है, व्यक्ति की आदतें, रूचियां, विश्वास तथा रीति-रिवाज सभी अधिगम से प्रभावित रहते है । भाषा, अभिवृत्ति व संवेगात्मक प्रतिक्रियायें सभी सीखी जाती है । प्रदत्त ज्ञान अथवा वातावरण से प्रतिक्रिया करके व्यक्ति अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है । इन अनुभवों के द्वारा उसके विचारों, संवेगों, कार्यो आदि में किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन अवश्य होता है । यह परिवर्तन ही व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया को अविरल गति से संचालित करता है । व्यक्ति के विकास को दिशा एवं गति देने वाले में परिवर्तन अधिगम की प्रक्रिया, अधिगम की क्षमता और अधिगम की व्यवस्था पर आधारित होते है । इसलिए अन्य शब्दों में अधिगम को व्यवहार परिवर्तन भी कहा जाता है । कुछ न कुछ नवीन की उपलब्धि ही परिवर्तन है और व्यक्ति में यह परिवर्तन ही अधिगम है ।सीखने की प्रक्रिया की दो मुख्य विशेषताऐं है- (1) निरन्तरता, (2) सार्वभौमिकता । यह प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है । यह कभी धीमे तो पड़ सकती है, परन्तु बन्द कभी नहीं होती अर्थात् व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक हमेशा सीखता ही रहता है ।

अधिगम की परिभाषायें

गेट्स व अन्य के अनुसार "अनुभव द्वारा व्यवहार में रूपान्तर लाना ही सीखना है ।"

"Learning is modification of behavior through experience."

Gates and Others

हिलगार्ड तथा बोवर "अधिगम का आशय परिस्थिति में बार-बार होने वाले अनुभव के आधार पर व्यक्ति में होने वाले स्थायी परिवर्तन से है किन्तु यह व्यवहार परिवर्तन उसकी मूल प्रवृत्ति परिपक्वता या अस्थायी स्थिति (थकान, द्वन्द दवा) के कारण न हों ।"

Learning refers to the change in a subjects behavior to a given situation brought about by his repeated experiences in that situation, provided that the behavior change can not be explained on the basis of native response tendencies, maturation states of the subject e.g. fatigue, drugs etc.

Hillgard and Bower, 1975

यह परिभाषा अधिगम को प्राणी तथा वातावरण के मध्य होने वाली प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन तक ही सीमित करती है, यदि अनुभव से हटकर किसी अन्य कारक के फलस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन होता है तो इसे अधिगम नहीं कहेंगे ।

मनोविज्ञान में सीखने से अभिप्राय केवल उन्हीं परिवर्तनों से होता है जो अभ्यास या अनुभव के फलस्वरूप होते है । प्राय: इस तरह के परिवर्तनों का उद्देश्य व्यक्ति को किसी भी प्रकार के वातावरण में समायोजन करने में सहायता प्रदान करने से होता है ।

पील महोदय के अनुसार "सीखना व्यक्ति में एक परिवर्तन है जो उसके वातावरण के परिवर्तनों के अनुसरण से होता है ।"

"Learning is a change in the individual following upon changes in his environment."

E.A. Peel

उनके अनुसार प्रत्येक वातावरण में परिवर्तन सीखना नहीं है यदि एक व्यक्ति मोटर दुर्घटना में संज्ञाहीन हो जाता है तो यह सीखना नहीं है । पील महोदय सीखने की प्रक्रिया का संक्षेपीकरण निम्न प्रकार से करते

1. सीखना सहज क्रियात्मक नहीं है । इससे तात्पर्य है कि पलक का झपकना या टखने पर चोट लगने पर उसे पीछे हटाना सीखना नहीं है । ये क्रियाऐं शारीरिक क्रियाएँ है जो व्यक्ति स्वाभाविक रूप से करता है ।
2. सीखना चेतन उद्देश्य से हो सकता है अथवा वह सामाजिक और जैविक अनुकूलन के लिए हो सकता है ।
3. सीखने के द्वारा व्यक्ति में स्थायी तथा अस्थायी परिवर्तन आते है ।
4. यह अनुकूलित हो सकता है । अर्थात् यह कि समाज स्वीकृत व्यक्ति बना सकता है अथवा प्रतिकूलित हो सकता है जो असामाजिक व्यवहार को जन्म दे सकता है ।

   स्किनर के अनुसार "प्रगतिशील व्यवहार व्यवस्थापन की प्रक्रिया को सीखना कहते है ।"

   Learning is the process of progressive behavior adapatation. "Skinner

   क्रो एवं क्रो 'सीखना आदतों, ज्ञान व अभिवृत्तियों का अर्जन है ।"

   "Learning is the acquisition of habits Knowledge and attitudes"

Crow and Crow

किंग्सलें एवं गैरी "अभ्यास एवं प्रशिक्षण के फलस्वरूप नवीन ढंग से व्यवहार अपने विस्तृत अर्थ मेंद्ध करने अथवा व्यवहार में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को सीखना कहते है ।"

"Learning is the process by which behavior (in the broader sense) is originated or changed through practice or training."

Kingsley H.L and Gary R.

अधिगम की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर अधिगम प्रक्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

1. सीखने या अधिगम की क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन होता हे ।
2. अधिगम द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में आये परिवर्तन स्थायी व अस्थायी दोनों प्रकार के होते है।
3. व्यवहार में यह परिवर्तन पूर्व अनुभवों पर आधारित होते है ।

सीखने की प्रक्रिया में दो तत्व निहित होते है - पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता व परिपक्वता । बालक परिपक्वता की और बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों से लाभ उठाता

हुआ वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रियाऐं करता है वहीं अधिगम है । अधिगम चेतन का अचेतन रूप में जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है । अधिगम की क्रिया पर परिपक्वता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । परिपक्वता का संबंध शारीरिक क्षमता के विकास से है । शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक योग्यता का विकास भी होता जाता है । इस विकास के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार में भी परिवर्तन होता है ।

व्यवहार में परिवर्तन परिपक्वता व सीखने के कारण होता है । परिपक्वता के कारण सीखने की व समायोजन करने की क्षमता बढ़ती है, परिपक्वता का अर्थ है कि विकास की एक निश्चित अवस्था में बच्चे कार्य करने के योग्य हो जाते है । जिन्हें वे इससे पूर्व करने में समर्थ नहीं होते परिपक्वता व अधिगम की क्रिया में घनिष्ठ संबंध है । अधिगम की क्रिया केन्द्रीय स्नायुमण्डल ज्ञानेन्द्रियां आदि की सहायता से पूर्ण होती है । जैसे-जैसे बालक का शरीर परिपक्वता की ओर बढ़ता जाता है वह अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने लगता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है ।

यदि हम अधिगम की परिभाषाओं की संयुक्त रूप से विश्लेषण करें तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जात है और अधिगम की कई विशेषतायें दृष्टिगोचर होती है ।

6.3 अधिगम की विशेषताऐं

1. अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है

जब हम कुछ सीखते है तो उससे हमारे व्यवहार में परिवर्तन होता है । व्यक्ति अपने तथा दूसरों के अनुभवों के आधार पर अपने व्यवहारों, विचारों, इच्छाओं एव भावनाओं आदि में परिवर्तन करता है ।

2. अधिगम विकास है

व्यक्ति हर समय जिन क्रियाओं और पदार्थो के सम्पर्क में आता है उनसे कुछ न कुछ अनुभवों को प्राप्त करता है और सीखता है परिणामस्वरूप उसमें शारीरिक व मानसिक विकास होता है । इस प्रकार अधिगम ही विकास की आधारशिला है ।

3. अधिगम प्रक्रिया सम्पूर्ण जीवन चलती है

अधिगम एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन पर्यन्त चलती रहती है । बालक जन्म लेते ही अपने परिवार के सदस्यों से सीखना प्रारम्भ करता है और जीवन भर सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं समवयस्क साथियों से कुछ न कुछ सीखता ही रहता है और यह सीखने की प्रक्रिया मृत्युपर्यन्त चलती रहती है ।

4. अधिगम अनुभवों का संगठन है

अधिगम नवीन तथा पुराने अनुभवों का संगठन है । जैसे-जैसे व्यक्ति को नवीन अनुभवों की प्राप्ति होती जाती है उनको वह अपने पुराने अनुभवों के साथ संगठित करता जाता है ।

5. अधिगम सार्वभौमिक है

अधिगम प्रक्रिया सार्वभौमिक है । सीखने का गुण केवल किसी विशिष्ट स्थान या विशिष्ट मनुष्यों में ही नहीं पाया जाता है । वरन् विश्व के समस्त जीवों में सीखने का गुण विद्यमान है ।

6. अधिगम उद्देश्यपूर्ण है

अधिगम सदैव उद्देश्यपूर्ण होता है । व्यक्ति किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर ही कार्य को सीखता है । उद्देश्य जितना ही प्रबल होता है सीखने की प्रक्रिया भी उतनी तीव्र होती है । उद्देश्य के अभाव में अधिगम प्रक्रिया निष्फल होती है ।

7. अधिगम विवेकपूर्ण है

किसी कार्य को विवेकपूर्ण ढंग से करना ही अधिगम है ।

8. अधिगम वातावरण की उपज है

बालक सदैव वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप सीखता है । बालक जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उसकी अधिगम प्रक्रिया पर उस वातावरण का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । यहीं कारण है कि सीखने के लिए उपयुक्त परिस्थितियां, साधन एवं प्रभावशाली वातावरण का होना आवश्यक है ।

9. अधिगम सक्रिय है

अधिगम प्रक्रिया हेतु बालक का सक्रिय होना अत्यन्त आवश्यक है । बालक उसी स्थिति में कुछ सीख सकता है जब वह सक्रिय होकर सीखने की प्रक्रिया में स्वयं भाग लेता है। इसीलिए आधुनिक युग में करके सीखने की प्रक्रिया पर बल दिया जा रहा है ।

10. अधिगम खोज करना है

किसी कार्य को सोच-समझकर करना और एक निश्चित परिणाम पर पहुंचना ही सीखना है व्यक्ति में जितनी अधिक क्षमता खोज करने की होती है उतनी ही तीव्रता से वह नई-नई बातें सीखता है।

11. अधिगम अनुकूलन है

जन्म से ही बालक किसी न किसी रूप में अपने वातावरण से अभियोजन करना प्रारम्भ कर देता है । अभियोजन के लिए उसे अनेक नवीन व्यवहारों, क्रियाओं, भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि को सीखना पड़ता है ।

12. अधिगम व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों है।

अधिगम क्रिया व्यक्तिगत व सामाजिक दोनों प्रकार से ही सम्भव है । बालक प्राय: प्रयत्न करके स्वयं सीखने का प्रयास करता है और बहुत-सी क्रियाओं को दूसरों का अनुकरण करके सीखता है । वह सामाजिक सम्पर्क, बातचीत की कला, दूसरों के साथ समुचित व्यवहार करने का ढंग एवं परम्पराओं व आदर्श मूल्यों को अपनाने की रीति समाज में रहकर ही सीखता है ।

6.4 अधिगम की प्रक्रिया

अधिगम की प्रक्रिया में कोई अनुप्रेरण (Motive) या अन्तर्नींद (Drive) एक आकर्षित करने वाला लक्ष्य अथवा लक्ष्य को प्राप्त करे में रूकावट शामिल रहते हे । उदाहरण के लिए

जैसे एक बालक भूखा है । भूख यहां अंर्तनाद है । वह अलमारी के पास जाता है जिसमें उसकी माता ने मिठाई रखी है । वह उसे खोलने की चेष्टा करता है, किन्तु चटखनी ऊँचाई पर लगी होती है और वह उस तक पहुंच नहीं पाता । उसे एक स्टूल दिखाई देता है जिसे वह लेता है और चढ़कर चटखनी खोलता है और मिठाई निकाल लेता है । इस उदाहरण में मिठाई प्राप्त करने का लक्ष्य स्पष्ट है । अब यदि वह प्रारम्भ में ही बिना कठिनाई के अलमारी खोलने में सफल हो जाता है तो उसकी क्रिया वहीं समाप्त हो जाती है और कोई नवीन सीखना नहीं होता है, किन्तु एक रूकावट है । चटखनी ऊँची है । यह रूकावट उसमें तनाव उत्पन्न कर देती है । वह बैचेनी महसूस करता है और एक हल खोज करता है । यह हल उसे स्टूल पर चढ़कर चटखनी खोलने के रूप में मिल जाता है । अतएव उसका सीखना हो गया । इस अनुभव से उसने दो प्रकार से सीखा :- (1) उसने प्रस्तुत समस्या को हल करना सीखा, तथा (2) उसने एक विधि सीख ली जिसका प्रयोग वह भविष्य में ऐसी समस्याओं को सुलझाने में कर सकेगा ।

6.4.1 अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण

अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण करने से विभिन्न बिन्दु उभरते है :-

1. व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए प्रक्रिया करता है ।
2. प्रक्रिया करने से नई परिस्थितियां उत्पन्न होती है ।
3. इस नई परिस्थिति के प्रति समायोजन करने के लिए फिर स्वाभाविक प्रक्रिया शुरू होती है ।
4. कभी-कभी इस समायोजन में व्यक्ति को असफलता भी मिलती है ।
5. इस असफलता को सफलता में बदलने के लिए व्यक्ति नवीन मार्गों को अन्वेषित करता है ।
6. इस अन्वेषण के फलस्वरूप व्यक्ति के स्वाभाविक एवं अतीत कालीन अनुभूतियों एवं व्यवहार में उन्नतिशील परिवर्तन तथा परिमार्जन होता है ।
7. जब इस समायोजन में सफलता मिलती है तो व्यक्ति बार-बार प्रयास करता है ।
8. इस बार-बार के प्रयास से परिमार्जित अनुभवों एवं व्यवहार में स्थायित्व आ जाता है । इसी स्थायित्व को अधिगम कहा जा सकता है ।
9. अधिगम प्रक्रिया के आधार पर व्यक्ति की वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता में अभिवृद्धि होती है ।

अत: यह स्पष्ट है कि अधिगम नवीन ज्ञान व नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया है । सीखने में प्रत्यक्षीकरण (Perception), गामक क्रियाऐं (Pshycho-motor Activities), तथा वैचारिक ग्रहण शक्ति (Acqusition of Ideas), पसन्द-नापसन्द (Likes & Dislikes), जीवन व्यतीत करने का ढंग (Life Style) और इच्छा शक्ति (Will Power) आदि सम्मिलित है । इन प्रक्रियाओं के द्वारा व्यक्ति अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभ्यास के द्वारा व्यवहार में परिवर्तन एवं संशोधन करता है ।

स्वमूल्यांकन

1. अधिगम के अर्थ को परिभाषित करें ।
2. अधिगम व्यवहार में परिवर्तन है, समझाइये ।
3. अधिगम की प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिये ।

6.5.0 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

अधिगम एक व्यापक प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक के व्यवहार और दृष्टिकोण दोनों में ही परिमार्जन होता है । अधिगम की सफलता अनेक सामूहिक कारकों पर निर्भर करती है । इनमें संभवतः अभिप्रेरणा का महत्व सर्वाधिक है ।

6.5.1 मनोवैज्ञानिक कारक

मनोवैज्ञानिक कारकों के अभाव में सीखना सम्भव नहीं है । इनके अभाव में सीखना प्रारम्भ भी नहीं हो सकता । मनोवैज्ञानिक कारक के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रेरणाऐं कार्य करती है । जिनमें पुरस्कार एवं दण्ड, फल का ज्ञान तथा स्पर्धा, सम्मान भी महत्वपूर्ण है । ये निम्न प्रकार है :-

(अ) **अभिप्रेरणा (Motivation)** :- अधिगम का प्रभाविक कारक अभिप्रेरणा है । अभिप्रेरणा विभिन्न प्रेरकों की प्रक्रिया है । यह प्रेरक व्यक्ति की आवश्यकताओं से उत्पन्न होते है । आवश्यकताऐं दो प्रकार 'की होती है पहले प्रकार की आवश्यकताऐं शारीरिक आवश्यकताऐं कहलाती है । जैसे- भूख, प्यास, नींद । तथा दूसरे प्रकार की आवश्यकताएं सामाजिक तथा मानसिक होती है । जैसे- सम्मान प्राप्ति, सामाजिक स्वीकृति, स्नेह प्राप्ति आदि । व्यक्ति जब आवश्यकता अनुभव करने की स्थिति में होता है तो उसमें एक प्रकार की अतिरिक्त शक्ति आ जाती है जो उसे आवश्यकता की पूर्ति हेतु लक्ष्य की ओर ले जाती है और इसी शक्ति से क्रिया की पूर्ति में सहायता मिलती है।

(ब) **पुरस्कार (Reward)**:- पुरस्कार भी सीखने को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारकों में से एक है । पुरस्कार तथा अभिप्रेरणा के बीच घनिष्ठ संबंध है । पुरस्कार को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा सीखता है । मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि आवश्यकता और उसकी सन्तुष्टि पुरस्कार के रूप में कार्य करती है तथा सीखने को प्रभावित करती है ।

(स) **दण्ड (Punishment)**:- सीखने के क्षेत्र में दण्ड का प्रभाव भी होता है क्योंकि दण्ड देने से त्रुटियां शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ।

(ग) **फल का ज्ञान (Knowledge of Result)**:- फल का ज्ञान भी सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है । सीखने वाले को जब कुछ प्राप्त होने का ज्ञान होता है तो उसकी क्रिया में तीव्र गति से वृद्धि होती है ।

6.5.2 शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य

अधिगम की किया में शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य भी प्रधान होते है । सीखने वाले की शारीरिक दशाएँ अधिगम पर अपना पूर्ण प्रभाव डालती है । दोषपूर्ण इन्द्रियों का स्वरूप, ग्रन्थियों की निष्क्रियता आयु, थकान तथा नशीली वस्तुओं का सेवन आदि शारीरिक तत्वों को प्रभावित करते है । जिससे सीखने की क्रिया प्रभावित होती है । शारीरिक अंगों की पूर्णता, सीखने वाले की शारीरिक तथा मानसिक क्षमता एवं शारीरिक रूप से निरोगी होना आदि तत्व भी सीखने की क्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखते है ।

6.5.3 ध्यान व अधिगम

ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया है । चेतना को किसी वस्तु या विचार में केन्द्रित करना ही ध्यान कहलाता है । वातावरण में बालक के चारों ओर विभिन्न उत्तेजक होते है । जैसे- मेज, कुर्सी, शिक्षक, सहपाठी आदि । इन उत्तेजनाओं में किसी एक को चुनकर उस पर चेतना को केन्द्रित करना ही ध्यान है । इस प्रकार ध्यान चयनात्मक व प्रेरणात्मक है । अत: ध्यान वह प्रेरणात्मक व चयनात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम किसी उत्तेजना को चुनकर उसे अपने चेतना केन्द्र में लाते है ।

अधिगम प्रक्रिया में ध्यान का होना अति आवश्यक है । ध्यान के स्थिर होने से दुर्बल उद्दीपन होने पर भी उसकी अनुभूति व्यक्ति को होगी । ध्यान के विकास में शारीरिक क्षमता, इच्छा शक्ति तथा पर्यावरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है । सभी आयु स्तरों पर समान ध्यान की क्षमता नहीं पाई जाती । छोटी आयु में ध्यान की क्षमता कम होती है और आयु वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है । अरूचिकर तथा कठिन कार्यो में छात्रों का ध्यान शीघ्रता से भंग हो जाता है ।

6.5.4 रूचि व अधिगम

रूचि किसी वस्तु के सम्बन्ध को जोड़ने वाली मानसिक संरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति किसी. वस्तु से अपना संबंध समझता है । जो वस्तु बालक को अच्छी लगती है, उसके प्रति उसकी रूचि हो जाती है । रूचि का संबंध आवश्यकताओं, इच्छाओं, आदर्शों तथा विचारों से है । रूचियां आवश्यकताओं की द्योतक नहीं बल्कि वे आवश्यकताओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती है । रूचियों के विकास में आवश्यकताओं के साथ-साथ बालक के सम्मुख प्रस्तुत आदर्श एवं विचार, संस्कृति, समाज में अनुभव एवं अवसर का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है ।

रूचि का सही प्रयोग करने के लिए कक्षा या जहां भी अधिगम की प्रक्रिया हो रही है, पर्यावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें बालकों की क्रियाशीलता का पर्याप्त अवसर हों और वे समझें कि वे इस स्थिति में भाग ले रहे है । इस प्रकार रूचि के साथ प्राप्त अधिगम तीव्र गति से होता है ।

6.5.5 सीखने की इच्छा व अधिगम

जब बालक किसी कार्य को सीखने की इच्छा रखकर सीखेगा तभी वह उसमें सफलता प्राप्त कर सकता है । इस ध्येय से सीखा जायें कि हमें यह सीखना है । जब बालक के अन्दर

यह भावना होती है तो वह अधिक तेजी से किसी बात को ग्रहण कर लेता है । यदि बालक अनिच्छा के साथ सीखने का कार्य कर रहा है तो सीखने की गति धीमी होगी ।

6.5.6 अभ्यास व अधिगम

किसी क्रिया को बार-बार करने को ही अभ्यास कहा जाता है । अभ्यास का सीखने की क्रिया पर काफी प्रभाव पड़ता है । अभ्यास के द्वारा किसी कार्य को बार-बार करने से कार्य करने की गति में क्रमश: प्रगति होती है । प्रत्येक प्रयास के बाद अशुद्धियों की संख्या कम हो जाती है ।

6.5.7 आकांक्षा का स्तर व अधिगम

आकांक्षा स्तर उस सीमा का संकेत करता है । जहां तक कोई व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने की इच्छा रखता है । एक ही प्रकार का उद्देश्य रखने वाले दो व्यक्तियों का आकांक्षा स्तर विभिन्न हो सकता है । उदाहरणार्थ दो छात्र जो डॉक्टर बनना चाहते है दोनों ही एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए लालायित है लेकिन उनमें डॉक्टर बनने की सीमाऐं अलग-अलग हो सकती है । एक की लालसा यह हो सकती है कि वह उच्चतम शिक्षा ग्रहण करके अच्छे कार्य कर अपना आरामदायक जीवन व्यतीत करें लेकिन दूसरे की लालसा हो सकती है कि वह थोड़ी बहुत मात्रा में सीखकर अपना दैनिक कार्य चलाने लगे । इस प्रकार दो अध्ययनरत् छात्रों की आकांक्षा स्तर में भिन्नता हो सकती है ।

आकांक्षा स्तर पर अधिगम की तीव्रता या मंद गति निर्भर करती है । बालक का आकांक्षा स्तर ऊँचा है व उसमें क्षमता भी है और उसे अवसर भी प्राप्त होते है तो वह जल्दी सीखेगा व अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने में सफल होगा ।

6.5.8 बुद्धि व अधिगम

बुद्धि का अधिगम से सीधा संबंध है जो व्यक्ति जितना अधिक प्रखर बुद्धि का होगा, उसकी सीखने की क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी । अधिक बुद्धिमान व्यक्ति किसी कार्य को शीघ्र ही सीख लेते है क्योंकि विषय वस्तु के तथ्यों एवं उनके पारस्परिक संबंधों को शीघ्र समझ लेते है । फलस्वरूप उन्हें सीखने में आसानी होती है । तीव्र बुद्धि बालक को अभिप्रेरणा की अत्यन्त आवश्यकता होती है । अधिगम प्रक्रिया का बुद्धि एक सबसे महत्वपूर्ण घटक है ।

6.5.9 अभिवृत्ति व अधिगम

किसी कार्य के प्रति सीखने वाले की अभिवृत्ति बहुत महत्वपूर्ण होती है । यदि किसी कार्य के प्रति छात्र की नकारात्मक अभिवृत्ति है तो कोई कितना भी परिश्रम करें बालक के सीखने की प्रवृत्ति में उन्नति होने की संभावना नहीं होती है । इसके विपरीत यदि अधिगमकर्ता की किसी कार्य के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति है तो वह सरलता से उस कार्य को सीख लेता है।

6.5.10 अभिरूचि व अधिगम

अभिरूचि बालक की वह क्षमता है जिसके आधार पर हम उसकी भावी उपलब्धियों के विषय में पूर्वकथन करते है । यह वह शक्ति है जिसके आधार पर बालक का किसी कार्य विशेष की ओर झुकाव होता है । अत: अधिगम हेतु यह एक महत्वपूर्ण कारक है । किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु अभिरूचि का होना बहुत जरूरी है । अभिरूचि किसी कार्य को सीखे जाने के लिए बालक पर अनुकूल प्रभाव डालती है ।

6.5.11 परिपक्वता व अधिगम

अधिगम क्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों में परिपक्वता को भी मुख्य कारक माना गया है । प्रत्येक कार्य को सीखने के लिए बालकों में शारीरिक व मानसिक परिपक्वता आवश्यक होती है । क्योंकि बालक की शारीरिक व मानसिक परिपक्वता ही अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी बनाती है । अधिगम व परिपक्वता यह दोनों एक-दूसरे के पूरक है ।

6.5.12 विषय सामग्री का स्वरूप व अधिगम

सीखने वाली विषय सामग्री का स्वरूप भी सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है । यदि विषय सामग्री छात्रों के स्तर से अधिक कठिन होती है तो सीखने की क्रिया कठिन होती है सीखने की मात्रा कम व गति धीमी होती है । यदि विषय सामग्री बालक के स्तर की, रूचि की व उपयोग की होती है तो बालक उसी कार्य को शीघ्र सीख लेते है । इसी प्रकार अर्थहीन विषय सामग्री की अपेक्षा अर्थयुक्त विषय सामग्री सीखने में कम कठिनाई होती है ।

6.5.13 वातावरण व प्रभाव

वंशानुक्रम से बालक केवल अपने पूर्वजों के गुणों को ही प्राप्त करता है । लेकिन उन गुणों का समुचित विकास वातावरण द्वारा ही होता है । यदि वातावरण उचित नहीं है तो उसके गुणों का विकास भी ठीक प्रकार से नहीं होगा । वातावरण एक बाह्य शक्ति है जो बालक के विकास के सभी पक्षों को प्रभावित करती है । वातावरण बालक की जन्मजात शक्तियों को निर्देशित तथा प्रोत्साहित करता है । वातावरण ही बालक के व्यवहार का निर्धारण कर उसमें अधिगम क्षमता का उत्तम विकास करता है ।

अत: हम कह सकते है कि सीखने को प्रभावित करने वाले अनेक कारक, परिस्थितियां या तत्व होते है जिनको नियन्त्रित करके ही सीखने की उन्नति की जा सकती है ।

एम.एल. बिग्गे "अधिगम क्षमता में वृद्धि से तात्पर्य ऐसी परिस्थितियों के निर्माण से है जिनमें निश्चित समय में बालक की क्रियाओं में अधिकतम परिवर्तन हों ।"

“Improving the Efficiency of Learning Means establishing situations in which maximum change of insight or behavior may occur in a given time.”

Biggie, M.L.

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. अधिगम को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारक बताइये ।
2. रुचि व अधिगम की व्याख्या कीजिये ।
3. अधिगम को प्रभावित करने वाले किन्हीं दो कारकों के बारे में बताइये ।

6.6 अधिगम के प्रकार

अधिगम की विधियां विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इन्हीं आधारों पर अधिगम के प्रकारों का निर्धारण किया जाता है । व्यक्ति अपने जीवन में कई प्रकार से सीखता है ।

6.6.1 निरीक्षणात्मक

निरीक्षण वस्तुत: प्रत्यक्षीकरण ही है । निरीक्षण का तात्पर्य किसी वस्तु पर अवधान को केन्द्रित करना होता हे । अवधान के केन्द्रीकरण से प्रत्यक्षीकरण और अधिक समृद्ध होता है । बच्चा अपने आस-पास के वातावरण का निरीक्षण करता है और धीरे-धीरे उनसे सीखता है । बालकों को निरीक्षण पद्धति से सीखने के लिए प्रतीकों का प्रयोग न करके मूर्त वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि बालकों का ध्यान मूर्त वस्तुओं पर शीघ्र केन्द्रित होता है । अमूर्त व सूक्ष्म वस्तुओं पर वह अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते ।

6.6.2 अनुकरणात्मक

अनुकरण में दूसरे व्यक्तियों के द्वारा किये गये कार्यो की पुनरावृत्ति की जाती है । सदैव उन व्यक्तियों के कार्यो का अनुकरण किया जाता है जो अनुकरणकर्ता से अधिक श्रेष्ठ होता है । अनुकरण प्राय: जान-बूझकर और कभी-कभी अनजाने में भी होता है । हम कई बार बिना जाने ही अज्ञात रूप से दूसरे का अनुकरण करते है । शिक्षा में हम चेतन रूप से प्रयास करके किसी कौशल को प्राप्त करने का प्रयास करते है । जैसे- पढ़ना, लिखना, चित्र बनाना सीखना । बालक बड़ों का अनुकरण कर सीखते है । यदि बालकों को अच्छे वातावरण में रखा जायें तो वे अच्छी बातों को अनुकरण द्वारा सीख जायेंगे । बालक प्रारम्भिक शिक्षा अनुकरण के माध्यम से प्राप्त करता है जैसे बोलना, हँसना, चलना, खाना-पीना, कपड़े पहनना आदि । संगीत, नृत्य, खेल आदि बालक प्रदर्शन और अनुकरण विधि द्वारा ही सीखता है ।

6.6.3 प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखना

बहुत से मनोवैज्ञानिक प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखने की विधि को "सफल प्रतिक्रियाओं के चुनाव द्वारा सीखना" भी कहते है । इस विधि का प्रतिपादन थार्नडाइक महोदय ने किया है । इनका विचार है कि जब प्राणी के सम्मुख कोई नवीन समस्या उत्पन्न होती है तो उस समस्या के समाधान हेतु वह किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया करता है आरम्भ में ये प्रतिक्रियायें त्रुटिपूर्ण होती है परन्तु निरन्तर करते रहने पर किसी प्रतिक्रिया में संयोगवश सफलता मिलने पर सफलीभूत प्रयास की पुनरावृत्ति की जाती है । जिसके कारण क्रमश: गलतियां दूर होती जाती है । उदाहरण के लिए यदि एक बालक कागज की नाव बनाता है उसके इस कार्य के लिए यदि उसकी सराहना की जाती है तो वह इस कार्य की पुनरावृत्ति करेगा, उसमें सुधार करेगा । इसके विपरीत यदि उसे दूसरों से प्रोत्साहन नहीं मिलेगा और न उसकी आलोचना की गई तो वह उस कार्य को छोड़ देगा तथा दूसरा कार्य करने में रूचि लेगा ।

प्रयत्न एवं त्रुटि द्वारा सीखने से वह प्रक्रियाऐं जो सीखने वाले को सफल प्रतीत होती है और उसे उत्तेजना देने वाली होती है, दुहराई जाती है । जो प्रतिक्रियायें असफल होती है और बाधा उपस्थिति करने वाली होती है, छोड़ दी जाती है । जब एक प्रयास व्यक्ति को तुष्टि देता है तब सीखने वाला उन प्रतिक्रियाओं को दोहराना चाहता है ।

प्रयत्न एवं त्रुटि से सीखने की विधि व्यर्थ की विधि नहीं है, वरन् सुधार की विधि है ।

थार्नडाइक का प्रयोग

थार्नडाइक ने अपने सभी प्रयोग पशु-मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये है । थार्नडाइक ने एक भूखी बिल्ली को एक पिंजरे में बन्द कर दिया । इस पिंजरे को पहेली पेटी (Puzzle Box) कहा गया है । इस पिंजरे के अन्दर एक बटन था जिसे दबाने से पिंजरे का दरवाजा खुलता था। पिंजरे के बाहर खाना रखा था । भूखी बिल्ली पंजा मार कर बाहर निकलने के उछलने-कूदने और छटपटाने लगी । इस उछल कूद में अचानक किसी प्रकार उसका पंजा बटन पर पड़ गया और दरवाजा खुल गया व बिल्ली बाहर निकल आई और बाहर रखा अपना भोजन प्राप्त किया। इसी प्रकार बिल्ली को भूखा रखकर अनेक प्रयास किये गये । प्रायोगिक अध्ययन के दौरान पाया गया कि जैसे-जैसे प्रयासों की संख्या बढ़ती गई उसकी व्यर्थ की क्रियाओं में कमी आती गई । धीरे-धीरे करके देखा गया कि बिल्ली को जैसे ही पिंजरे में बन्द किया जाता है, वह लीवर दबाकर बाहर आ जाती है और भोजन प्राप्त करती है । बिल्ली ने प्रयत्न एवं त्रुटि विधि के आधार पर सीखा ।

इसी तरह व्यक्ति भी प्रयत्न और त्रुटि द्वारा सीखता है । यह विधि विद्यार्थियों को बहुत सहायता पहुंचाती है । निरन्तर परिश्रम व प्रयत्न करने से आत्म-विश्वास, धैर्य और परिश्रम के गुणों का विकास होता है । इस विधि द्वारा सीखा हुआ अधिगम स्थायी होता है ।

6.6.4 संबंध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना

पावलव व वॉटसन आदि मनोवैज्ञानिक के अनुसार स्वाभाविक उत्तेजना का अस्वाभाविक उत्तेजना से संबंध स्थापित हो जाने और अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक उत्तेजना की तरह प्रतिक्रिया करने के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में होने वाले परिवर्तन तथा परिमार्जन को संबंध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना कहते

पावलव ने अपने प्रयोग में एक भूखे कुत्ते को सर्वप्रथम घन्टी बजाने अस्वाभाविक उत्तेजनाद्ध के बाद शीघ्र ही भोजन स्वाभाविक उत्तेजनाद्ध दिया । फलस्वरूप कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी । यह कार्यप्रणाली कई बार दोहरायी गई । धीरे-धीरे घन्टी की आवाज सुनते ही कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगी । इसे संबंध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना कहते है ।

यह विधि पशुओं व बच्चों के सीखने की व्याख्या करती है । इस विधि द्वारा बच्चों में अच्छी आदतों का निर्माण किया जा सकता है । जैसे- बड़ों के प्रति आदर, सफाई की आदत आदि ।

अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है । सभी अधिगम सामाजिक वातावरण में होता है । संबंध प्रत्यावर्तन इस सिद्धान्त का प्रयोग करके कुसमायोजित बच्चों में बुरी आदतों को समाप्त करके अच्छी आदतों का पुनर्निमाण कर सकते है ।

अनुकूलित अनुक्रिया (Conditional Response) धीरे-धीरे स्वभाव बन जाती है । स्वभाव का मानव जीवन में विशेष महत्व है । इस अनुक्रिया से समय की बचत होती है तथा कार्य में स्पष्टता आती है ।

6.6.5 अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ से सीखना

निरीक्षण की अन्तिम क्रिया 'सूझ' समझी जाती है । निरीक्षण का अर्थ किसी वस्तु विशेष पर अवधान को पूर्णरूपेण केन्द्रित करके उसके संबंध में जानकारी प्राप्त करना है । जबकि सूझ का अभिप्राय यह है कि निरीक्षण क्रिया का अन्त सफलतापूर्वक हो गया और वस्तु

संबंधी उपयुक्त जानकारी प्राप्त हो गई । वह मानसिक संगठन जिसके द्वारा एक समस्या सहसा अपने सब संबंधी के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है सूझ कहलाती है । वस्तुत: सूझ अवधान के केन्द्रीयकरण की आगे की स्थिति है । जिस पर सम्पूर्ण सफलता निर्भर होती है ।

सूझ द्वारा सीखना उच्च कोटि का अधिगम है । यह वह मानसिक प्रयास है जिसमें बुद्धि व कल्पना का प्रयोग होता है । इसमें व्यक्ति उच्च बौद्धिक स्तर पर स्थिति का अवलोकन करके समस्या को पूर्णरूप से समझकर प्रतिक्रिया करता है और सीखता है । इस विधि में मस्तिष्क के प्रयोग या बौद्धिक कुशलता पर अधिक बल दिया जाता है । यह विधि प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर है । इसमें अभ्यास के अभाव में भी समस्यायें सुलझ जाती है । इस विधि में अचेतन मस्तिष्क अधिक सक्रिय रहता है । चेतन क्रियायें अपेक्षाकृत कम होती है ।

कोहलर द्वारा किये गये प्रयोग

अन्तर्दृष्टि की पुष्टि करने के लिए कोहलर ने सुल्तान नामक चिम्पांजी पर प्रयोग किये। कोहलर ने सुल्तान को पिंजरे में बंद किया । पिंजरे के पास दो छड़ियों को रख दिया जो आपस में जोड़े जा सकते है । पिंजरे के बाहर कुछ केले रख दिये गये । सुल्तान भूखा था इसलिए उसने पिंजरे के बाहर हाथ फैलाकर केले को पाना चाहा किन्तु केला बहुत दूर था इसलिये उसका हाथ वहां तक नहीं पहुंचा । इससे पहले उसे एक छड़ी से खींचकर प्राप्त करना सिखाया गया था । एक छड़ी द्वारा भी उसने खींचने का प्रयास किया पर वह सफल नहीं हुआ। अनेक प्रयत्नों के पश्चात् उसने खेलते-खेलते दोनों छड़ियों को जोड़ दिया और उसने लम्बी छड़ी से केला खींच लिया । सुल्तान को यह सूझ अचानक मिली । सूझ मिलने से पहले सुल्तान ने केले की दूरी, छड़ी की लम्बाई आदि से संबंध स्थापित करने का प्रयास किया और सूझ द्वारा संबंध का समाधान करके लक्ष्य की प्राप्ति की ।

सीखने की सभी क्रियाओं में सूझ की आवश्यकता पडती है । सूझ व्यक्ति को उस समय सहायता देती है जब गन्तव्य तक पहुंचने में विविध बाधायें आती है । सूझ द्वारा व्यक्ति अचानक समस्या के समाधान तक पहुंच जाता है । अन्तर्दृष्टि द्वारा सीखने की कई विशेषताऐं है :-

1. अन्तर्दृष्टि द्वारा बालकों की कल्पना, तर्क, विचार शक्ति के विकास में अवसर प्रदान होते है ।
2. अन्तर्दृष्टि से बालकों को रचनात्मक कार्यो में सहायता मिलती है ।
3. शिक्षा के उच्च स्तर पर सूझ विधि ही अनुसंधान कार्य आदि में अधिक उपयोगी व आवश्यक होती है ।
4. यह विधि अनुभवों के संगठन एवं पूर्णता पर बल देता है । इसलिए बालकों के अनुभवों का पुनर्संगठित करने पर बल देना चाहिए ।

6.7 सारांश

अधिगम का अर्थ है सीखना अथवा व्यवहार परिवर्तन । व्यवहार परिवर्तन अनुभव एवं प्रशिक्षण के द्वारा होता है । अधिगम मानव की एक प्रकृति है । अधिगम को प्रभावित करने

वाले कारकों शारीरिक तथा मानसिक संबंध, अभिप्रेरण, परिपक्वता, कार्य का समय व थकान, इच्छाशक्ति, रूचि, अभ्यास उचित वातावरण आदि का विशेष प्रभाव पड़ता है । मनुष्य जीवन पर्यन्त कुछ न कुछ औपचारिक या अनौपचारिक ढंग से सीखता है, परन्तु मुख्यत: व्यक्ति निरीक्षण, अनुकरण, प्रयत्न व त्रुटि, संबंध, प्रत्यावर्तन, सूझ आदि क्रियाओं से अधिगम को सुदृढ़ करता है ।

6.8 मूल्यांकन प्रश्न

1. अधिगम की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ' अधिगम की विशेषताओं की चर्चा कीजिए?
2. अधिगम के प्रकारों को समझाइये ।
3. अधिगम को प्रभावित करने वाले कारकों को बताइये ।
4. सूझ द्वारा सीखने में और प्रयत्न और भूल द्वारा सीखने में क्या अन्तर है?
5. अधिगम प्रक्रिया को समझाइये ।

6.9 संदर्भ ग्रंथ

1. Morgan, C.T. & king R.A. (1975) Introduction to Pshychology, New Delhi Tata, MC-Craw Hill Publishing Company
2. सिंह आर.एन., आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
3. श्रीवास्तव, जी.एल. (1972) शिक्षा मनोविज्ञान, प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग अमीनाबाद, लखनऊ
4. माथुर, एस.एस. (1981) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
5. भटनागर, सुरेश (1989) शिक्षा मनोविज्ञान, लायल बुक डिपो, मेरठ

इकाई 7

अधिगम के सिद्धान्त

(Theories of Learning)

इकाई की संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 अधिगम का प्रत्यय

7.3 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

7.4 अधिगम के सिद्धान्त

(i) व्यवहारवादी सिद्धान्त, संज्ञानात्मक सिद्धान्त

(ii) अनुकूलित अनुक्रिया या शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त

(iii) पावलव के द्वारा किया गया प्रयोग

(iv) अनुबंधन की दशाऐं

(v) शैक्षिक निहितार्थ

(vi) स्किनर का क्रिया प्रस्तुत अनुबंधन सिद्धान्त

(vii) स्किनर का प्रयोग

(viii) शैक्षिक निहितार्थ

(ix) थार्नडाइक का सम्बन्धवादी सिद्धान्त

(x) थार्नडाइक का प्रयोग

(xi) शैक्षिक निहितार्थ

(xii) लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त

7.5 (i) अन्तर्दृष्टि अधिगम का सिद्धान्त

(ii) कोहलर का प्रयोग

(iii) शैक्षिक निहितार्थ

7.6 सारांश

7.7 मूल्यांकन का प्रश्न

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन बाद आप -

- अधिगम के प्रत्यय को समझ सकेंगे व प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानकारी एकत्र कर अधिगम को प्रभावी बना सकेगें ।

- अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्तों के बारे में समझ कर अंतर स्पष्ट कर सकेंगे व सीखने में उपयोग कर सकेंगे ।
- अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्तों को समझकर व्यवहारवादी व संज्ञानात्मक सिद्धान्तों में अन्तर स्पष्ट कर सीखने में प्रयोग ले सकेगें ।

7.1 प्रस्तावना

अधिगम या सीखना आधुनिक मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण विषय है । सीखने की क्रिया मानवीय व्यवहार और मानसिक क्रियाओं के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती है ।

सीखने की प्रक्रिया की दो मुख्य विशेषताऐं है :-

1. निरन्तरता
2. सार्वभौमिकता

सीखने की प्रक्रिया सदैव सर्वत्र चलती रहती है इसलिए मनुष्य अपने जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है ।

वुडवर्थ ने कहा है, "सीखना विकास की प्रक्रिया है ।"

सीखने का अर्थ- अधिगम का अर्थ है सीखना या व्यवहार परिवर्तन । अधिगम मानव की आधारभूत किया है । मनुष्य इसी क्रिया के द्वारा समायोजन सीखता है । परिस्थितियों के अनुसार वह अपना व्यवहार संशोधित करता है तथा नये स्वरूप तथा व्यवहार को अपनाता है ।

7.2 अधिगम का प्रयत्य

वुडवर्थ के शब्दों में, "नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है ।"

"The Process of acquiring new knowledge and responses is the process of learning."

-Woodwarth

स्किनर के अनुसार," सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है ।"

Learning is the process of progressive behaviour adaption."

-skinner

क्रो एवं क्रो के अनुसार," सीखना आदतों ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है ।

"Learning is the acquisition of habits, knowledge and attitudes."

-Crow & Crow

वोट्स व अन्य के अनुसार,'सीखना अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है ।"

Learning is the change in behavior by experience and training."

-Votes and Other

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि सीखना क्रिया द्वारा व्यवहार में परिवर्तन है । व्यवहार में यह परिवर्तन कुछ समय तक बना रहता है । यह परिवर्तन व्यक्ति के पूर्व अनुभवों पर आधारित होता है ।

7.3 अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक

सीखने को प्रभावित करने वाले अनेक कारक है जो सीखने की प्रक्रिया में सहायक या बाधक है । ये कारक निम्न निम्नलिखित है :-

- पूर्व ज्ञान (Previous learning) :- बालक का सीखना उसके पूर्व ज्ञान के स्तर पर निर्भर करता है उसका पूर्व ज्ञान जितना मजबूत होगा उसकी गति उतनी ही तीव्र होगी।
- विषय सामग्री (Subject matter) :- सीखने की क्रिया पर सीखी जाने वाली विषय-सामग्री का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है । कठिन और अर्थ रहित सामग्री की अपेक्षा सरल और अर्थपूर्ण सामग्री अधिक प्रभावशाली तरीके से शीघ्रता और सरलता से सीख ली जाती है ।
- शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य (Physical and mental health) :- जो छात्र शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होते है वे सीखने में रूचि रखते है और शीघ्र सीखते है और शारीरिक व मानसिक रोगों से पीड़ित छात्र सीखने में किसी प्रकार की रूचि नहीं लेते है और वे किसी बात को बहुत देरी में और कम सीख पाते है ।
- सीखने का समय व थकान (Learning time and Fatigue) :- समय व थकान सीखने की क्रिया को प्रभावित करता है जब विद्यार्थी विद्यालय में आते है तब उनमें स्फूर्ति होती है । अत: उनको सीखने में सरलता होती है । जैसे-जैसे शिक्षण के घंटे बीतने लगते है वैसे ही उनकी स्फूर्ति में शिथिलता आती है और वे थकान का अनुभव करने लगते है और सीखने की प्रक्रिया मंद हो जाती है ।
- परिपक्वता (Maturity) :- शारीरिक और मानसिक परिपक्वता वाले विद्यार्थी किसी नए पाठ को सीखने के लिए हमेशा तत्पर रहते है और उत्सुक रहते है । वह सीखने में किसी भी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं करते है और यदि छात्रों में शारीरिक और मानसिक परिपक्वता नहीं है तो सीखने में उनके समय और शक्ति का नाश होता है ।
- प्रेरणा (Motivation) :- सीखने की प्रक्रिया में प्रेरकों का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । प्रत्येक व्यक्ति बालकों को नई बातों को सीखने के लिए प्रेरित करते है। स्टीफेन्स के अनुसार शिक्षक के पास जितने भी साधन उपलब्ध है उनमें प्रेरणा संभवत: सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।
- सीखने की इच्छा (Well to learn) :- छात्रों में किसी बात को सीखने की इच्छा होती है तो वे विषम परिस्थितियों में भी उसे सीख लेते है । अत: अध्यापक का प्रमुख कर्तव्य है कि वह छात्रों मे इच्छा शक्ति दृढ़ बनाने हेतु उन्हें जागरूक करे ।
- वातावरण (Atmosphere) :- सीखने की प्रक्रिया पर न केवल कक्षा के अन्दर वरन बाहर के भी वातावरण का प्रभाव पड़ता है कक्षा के बाहर का वातावरण भी शोरगुल रहित होना चाहिए । कक्षा में बैठने के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध होने चाहिए ।

– सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक का योगदान (Contribution of teacher in learning process) - सीखने की प्रक्रिया मे पथ प्रदर्शक के रूप में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान होता है । उसके कार्यो और विचारों, व्यवहार और व्यक्तित्व, ज्ञान और शिक्षण विधि का छात्र के सीखने पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । शिक्षक का स्तर जितना उच्च श्रेणी का होता है सीखने की प्रक्रिया उतनी ही तीव्र और सरल होती है ।

– सीखने की विधि (Learning method) :- सीखने की विधि का प्रभाव छात्र और विषय दोनों से प्रभावित होता है । यह विधि जितनी अधिक रूचिकर और उपयुक्त होती है सीखना उतना ही अधिक सरल होता

– संपूर्ण परिस्थिति (Situation) :- बालक के सीखने को प्रभावित करने वाले तत्व और उस पर सामूहिक रूप से प्रभाव डालते है । सीखने की संपूर्ण परिस्थिति का विद्यालय में होना आवश्यक है ।

इन दशाओं के प्रभावित होने से सीखने पर प्रभाव पड़ता है । ये दशाएं अनुकूल होनी चाहिए । अनुकूल होने पर सीखने की प्रक्रिया सबल एवं प्रभावयुक्त हो जाती है ।

7.4 अधिगम के सिद्धान्त

अधिगम के सिद्धान्तों को दो भागों में बांटा गया है ।

(i) अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourist theories) :- अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्तों से अभिप्राय उन सिद्धान्तों से है जो मानव व्यवहारों को नियंत्रित करते है ।

अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्त में निम्नलिखित सिद्धान्त सम्मिलित है :-

(ii) अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त या शास्त्रीय अनुबंधन सिद्धान्त (Pavlov's theory of classical conditioning):- अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में रूसी शरीरशास्त्री आई0पी0 पावलव ने किया था । पावलव के अनुसार अधिगम की क्रिया अनुक्रिया से प्रभावित होती है ।

अनुकूलित अनुक्रिया का अर्थ है :- अस्वाभाविक उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक क्रिया का उत्पन्न होना ।

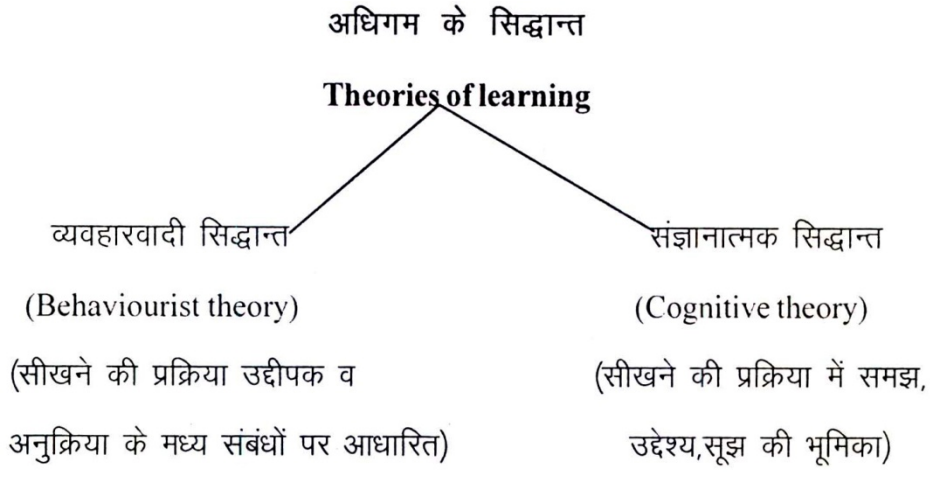

एच0डब्ल्यू0 बर्नार्ड के अनुसार, "अनुकूलित अनुक्रिया उत्तेजना की पुनरावृत्ति द्वारा व्यवहार का स्वचालन है जिसमें उत्तेजना पहले किसी अनुक्रिया के साथ होती है किन्तु अंत में वह स्वयं उत्तेजना बन जाती है।"

लैंडल के अनुसार, "संबद्ध सहज क्रिया में कार्य के प्रति स्वाभाविक उत्तेजक के बजाए एक प्रभावहीन उत्तेजक होता है जो स्वाभाविक उत्तेजक से संबंधित किए जाने के कारण प्रभावपूर्ण हो जाता है ।"

(iii) पावलव के द्वारा किया गया प्रयोग :- पावलव ने यह प्रयोग कुत्ते पर किया । इसके अन्तर्गत पावलव ने कुत्ते की लार ग्रंथि का ऑपरेशन किया तथा कुत्ते के मुंह को एक जार से कांच की एक नली के द्वारा जोड़ दिया गया जिससे कि लार को एकत्र किया जा सके । उसने भोजन देखकर लार बहने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया को घंटी बजने के अस्वाभाविक उद्दीपन से संबंधित किया । वह जब कुत्ते को खाना देता था तो पहले घंटी बजाता था खाना देखकर कुत्ते के मुंह में लार का स्त्राव होता था । थोडे दिन बाद पावलव ने केवल घंटी बजाई और कुत्ते को खाना नहीं दिया लेकिन फिर भी कुत्ते के मुंह से लार का स्त्राव हुआ । इससे सिद्ध हुआ कि स्वाभाविक उद्दीपन (खाना) के साथ-साथ अस्वाभाविक उद्दीपन (घंटी का बजाना) भी दिया जाने पर कालांतर में अस्वाभाविक उद्दीपन के फलस्वरूप भी स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार का स्त्राव) होता है ।

स्वाभाविक उद्दीपन (भोजन) ⟶ स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार स्त्राव)

स्वाभाविक उद्दीपन (भोजन) + अस्वाभाविक उद्दीपन (घंटी की आवाज) ⟶ स्वाभाविक प्रतिक्रिया (लार स्त्राव)

अस्वाभाविक उद्दीपन घंटी की आवाज ⟶ अनुबंधित अनुक्रिया (लार स्त्राव)

(iv) अनुबंधन की दशायें

पावलव के अनुसार अनुकूलन हेतु चार दशायें या परिस्थिति होना अनिवार्य है :-

1. स्वभाविक उद्दीपक व अस्वभाविक उद्दीपक के मध्य एक निश्चित क्रम होना चाहिए । अस्वभाविक उद्दीपक की प्रस्तुति के आधा सकैण्ड पश्चात् स्वभाविक उद्दीपक दिया जाना चाहिए निश्चित अंतराल भी सीखने को प्रभावित करता है ।
2. स्वभाविक उद्दीपक को अस्वभाविक उद्दीपक से अधिक शक्तिशाली होना चाहिए ।
3. अस्वभाविक उद्दीपक को स्वभाविक उद्दीपक के साथ अनेक बार दोहराना अनिवार्य शर्त है तब ही अनुबंधन होगा ।
4. अनुबंधन हेतु उपयुक्त परिस्थितियों का होना भी अनिवार्य है ।

(अ) शैक्षिक निहितार्थ

- आदत निर्माण करना :- बार बार में यदि कोई कार्य किया जाता है तो वह आदत के रूप में विकसित हो जाता है अत: अनुकूलित अनुक्रिया धीरे-धीरे आदत के रूप में विकसित हो जाती है।
- अक्षर न्यास एवं सुलेख :- अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त के प्रयोग के द्वारा बालकों में अक्षर विन्यास एवं सुलेख का विकास किया जा सकता है क्योंकि इस सिद्धान्त में अभ्यास पर अधिक बल दिया जाता है ।
- अभिवृत्ति का विकास :- अनुकूलित अनुक्रिया के द्वारा बालकों में अच्छी अभिवृत्ति को विकसित किया जा सकता है जिसके द्वारा बालकों के शिक्षण अधिगम की अनेक समस्याओं का समाधान संभव है ।
- शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं की संतुष्टि :- इस सिद्धान्त द्वारा बालकों की विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें संतुष्टि प्रदान की जाती है ।
- मानसिक एवं संवेगात्मक अस्थिरता का उपचार :- इस सिद्धान्त के प्रयोग द्वारा बालकों की मानसिक और संवेगात्मक अस्थिरता को दूर किया जा सकता है । इसके द्वारा अस्थिरता के कारणों को दूर कर बालकों में उचित आदतों को विकसित किया जा सकता है ।

(v) स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के प्रसिद्ध

मनोवैज्ञानिक बी0एफ0 स्किनर ने किया । स्किनर के अनुसार दो प्रकार की अनुक्रियाएं होती है-

सहज अनुक्रिया :- वे अनुक्रियाएं जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण होती है सहज अनुक्रियाएं अथवा व्यवहार कहलाती है ।

क्रिया प्रसूत अनुक्रियाएं :- वे अनुक्रियाएं जो किसी ज्ञात उद्दीपन के कारण नहीं होती क्रिया प्रसूत अनुक्रियाएं कहलाती है ।

बी0एफ0 स्किनर ने अधिगम के क्षेत्र अधिगम के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये और यह अनुभव किया कि अभिप्रेरणा के कारण अधिगम में क्रियाशीलता आती है । अभिप्रेरणा का आधार उद्दीपन है । उद्दीपन भावी क्रिया को नियंत्रित करता है ।

स्किनर ने कहा कि मनुष्य अपने स्वभाव से क्रियाशील होता है अपने इस क्रियाशीलता के गुण के कारण वह कोई न कोई क्रिया करता रहता है यदि उस क्रिया का परिणाम धनात्मक रूप में मिलता है तो वह उस क्रिया को पुन: दोहराता है । इस प्रकार पुन: पुन: एक ही कार्य को करने से प्राणी उस कार्य को सीख जाता है । इसके विपरित यदि प्राणी के द्वारा किया गए कार्य का प्रतिफल उसे ऋणात्मक रूप में प्राप्त होता हैं तो वह यह सीखता है कि इस कार्य को भविष्य में न करें ।

इस प्रकार नई अनुक्रिया के अधिग्रहण की प्रक्रिया क्रिया प्रसूत अनुबंधन कहलाती है ।

(vi) स्किनर का प्रयोग :- स्किनर ने अपना प्रयोग कबूतर पर किया । कबूतर को स्किनर बॉक्स में एक कुंजी को दबाना सीखना था । आरंभ में बॉक्स में हल्की प्रकाश व्यवस्था

थी । कबूतरों ने एक निर्धारित व्यवहार सीख लिया । इसका परीक्षण छः विभिन्न प्रकार की प्रकाश योजनाओं में किया गया । कम से कम अधिक प्रकाश योजना में समय अन्तराल समान रखा गया । मूल उद्दीपन में तथा अन्य उद्दीपन में यह देखा गया कि कबूतरो ने नवीन उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया की । यह प्रवृत्ति मूल तथा नवीन उद्दीपनों के प्रति पाई गयी । इस प्रयोग में सामान्यीकरण के तत्वों को विशेष महत्व दिया गया ।

कुंजी पर चोंच मारने की क्रिया में यह देखा गया कि जब प्रकाश में कुंजी को देखा गया तो मूल उद्दीपन प्रकट हुआ । प्रकाश व्यवस्था में धीरे-धीरे अन्तर होता गया वैसे-वैसे अनुक्रियाएं कम होती गई ।

धनात्मक उद्दीपन

ऋणात्मक उद्दीपन

जब धनात्मक उद्दीपन प्रस्तुत किया जाता है तो उसके फलस्वरूप अधिगमित अनुक्रिया अधिक मात्रा में प्रकट होती है । जब ऋणात्मक उद्दीपन प्रस्तुत किया जाता है तो अनुक्रिया की गति कम हो जाती है ।

(vii) शैक्षिक निहितार्थ - स्किनर की धारणा है कि सक्रिय अनुबंधन द्वारा शिक्षण की क्रिया को प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न किया जाता है । इस आधार पर इसके शैक्षिक निहितार्थ निम्न प्रकार है :-

- अधिगम को स्वरूप प्रदान करना :- अधिगम के सक्रिय अनुबंधन सिद्धान्त का प्रयोग शिक्षक सीखे जाने वाले व्यवहार को वांछित स्वरूप प्रदान करने में करता है । वह उद्दीपन नियंत्रण के द्वारा वांछित व्यवहार का सृजन करता है ।
- शब्द भण्डार एवं अभिक्रमित अधिगम :- शब्द भण्डार में वृद्धि तथा अर्थ ग्रहण के लिये स्किनर ने अभिक्रमित अधिगम का प्रयोग करने पर बल दिया । इसमें शब्दों को तार्किक क्रम में प्रस्तुत किया जाता है ।
- संतोष :- स्किनर ने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया कि यदि कोई कार्य संतोष प्रदान करता है तो उसमें सक्रियता आती है और सीखने की क्रिया को बल मिलता है ।
- निदानात्मक शिक्षण :- जटिल व्यवहार के सीखने की सभी संभावनाओं पर स्किनर ने विचार किया तथा जटिल एवं मानसिक रोगियों के सीखने पर भी सक्रिय अनुबंधन को उपयोगी बताया ।
- परिणाम की जानकारी :- व्यावहारिक जीवन में ऐसे अनेक कार्य है जिनसे व्यक्ति को संतोष नहीं मिलता । यदि सीखने वाले को अपनी प्रगति व परिणाम की जानकारी हो तो वह प्रगति कर सकता है । गृहकार्य में संशोधन छात्र के भावी व्यवहार में सुधार करता है।
- पुर्नबलन का महत्व :- सक्रिय अनुबंधन में पुर्नबलन का महत्व है । पुरस्कार, दण्ड, परिणाम का ज्ञान आदि पुर्नबलन का काम करते है ।
- पद विभाजन :- पाठ्य सामग्री का अनेक छोटे-छोटे पदों में विभाजन करने से सीखने की क्रिया को बल मिलता है ।

(viii) थार्नडाइक का सम्बन्धवादी सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1913 में ए0एल0 थार्नडाइक ने किया । इस सिद्धान्त को अनेक नामों से जाना जाता है-

- थार्नडाइक का संबंधवाद
- संबंधवाद का सिद्धान्त
- उद्दीपन प्रतिक्रिया सिद्धान्त
- सीखने का संबंध सिद्धान्त
- प्रयत्न एवं भूल का सिद्धान्त

थार्नडाइक ने कहा कि सीखना संबंध स्थापित करता है और संबंध स्थापना का कार्य मस्तिष्क करता है ।

थार्नडाइक ने सीखने की प्रक्रिया में दो दशायें महत्वपूर्ण बताई है-

1. सीखने के लिए आंतरिक प्रेरणा होनी चाहिए अर्थात् बिल्ली भूखी होनी चाहिए ।
2. सीखने के लिए प्रयोग प्रेरणा के साथ पुनर्बलन भी होना चाहिए ।

(ix) थार्नडाइक का प्रयोग -

थार्नडाइक ने संयोजनवाद की पुष्टि के लिए अनेक प्रयोग किये । थार्नडाइक ने अपने मत की पुष्टि का एक प्रयोग भूखी बिल्ली पर किया । उसने एक भूखी बिल्ली को एक संदूक में बंद कर दिया ।

यह संदूक इस ढंग से बनाया गया था कि अन्दर की चिटकनी पर पैर पड़ते ही वह स्वत: खुल जाए । संदूक के बाहर मछली का टुकडा रखा गया । संदूक ऐसा था कि उसके अन्दर बंद बिल्ली बाहर देख सके । मछली का टुकडा बाहर देखकर बिल्ली को बहुत परेशानी अनुभव हुई और वह यह प्रयत्न करने लगी कि किस प्रकार संदूक खोल कर बाहर आये और मछली के टुकड़े को खा कर अपनी भूख मिटाये । उसने संदूक से बाहर निकलने के लिए उछलकूद मचानी शुरू की । उछलकूद तथा विभिन्न बटनों को दबाने की प्रक्रिया में संयोग से उसका पैर सही चिटकनी पर पड़ गया और संदूक खुल गया और बिल्ली बाहर आ गई । मछली का टुकडा खाकर उसने अपनी भूख मिटाई ।

यह प्रयोग बिल्ली पर कई बार दोहराया गया । इरा प्रयोग में व्यर्थ के प्रयत्नों की संख्या अधिक रही जो धीरे-धीरे कम होती गयी । एक स्थिति यह भी आयी जब बिल्ली बिना कोई भूल किये पहली बार में चिटकनी दबाकर संदूक खोलने में सफल हो गई । इस सिद्धान्त प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त भी कहा जाता है ।

(x) शैक्षिक निहितार्थ

1. बड़े तथा मंद बुद्धि बालकों के लिए यह सिद्धान्त बहुत उपयोगी है ।
2. बालकों में परिश्रम के प्रति आशा विकसित की जाती है ।
3. इस सिद्धान्त के द्वारा बालकों के धैर्य तथा परिश्रम जैसे गुणों का विकास होता है ।
4. क्रो एण्ड क्रो के अनुसार, "गणित विज्ञान तथा समाजशास्त्र जैसे गंभीर चिन्तन वाले विषयों के सीखने में यह सिद्धान्त उपयोगी है ।"
5. इस सिद्धान्त में कार्य की धारणाएं स्पष्ट हो जाती है ।

6. गैरिसन के अनुसार, "इस सिद्धान्त का सीखने की क्रिया में विशेष महत्व है तथा समस्या समाधान को भी महत्व दिया है ।"
7. अनुभवों द्वारा लाभ उठाने की क्षमता विकसित होती है ।
8. कोलसनिक के अनुसार लिखना पढ़ना गणित सिखाने में सहायक सिद्ध है । 20 वीं सदी में अमेरिकी शिक्षा पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा है ।

(xi) लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त -

क्षेत्र सिद्धान्त का जन्म साहचर्य सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ । हार्टमैन ने कहा कि क्षेत्र का सामान्य अभिप्राय है वह परिवेश जिसमें सभी घटनाऐं घटित होती है अर्थात् सभी घटनाऐं एक क्षेत्र में घटित होती है चाहे वह क्षेत्र बड़ा हो या छोटा ।

7.6 अन्तर्दृष्टि अधिगम का सिद्धान्त

(i) इस सिद्धान्त का प्रतिपादन जर्मनी में 1912 में किया गया । इसके प्रवर्तक वर्दीमर, कोका, और कोहलर थे । समग्राकृति या पूर्णाकारवाद की उत्पत्ति जर्मन भाषा के गेस्टाल्ट शब्द से हुई जिसका अर्थ है- परिस्थिति की समग्रता या संपूर्णता । समग्राकृतिवाद के जन्मदाता वर्दीमर थे । जिनकी विचारधारा को कोका व कोलहर ने आगे बढाया । वर्दीमर का विचार था कि संपूर्ण अपने अंगों के योग से अधिक होता है। कोहलर ने अनेक प्रयोगों के आधार पर देखा कि व्यक्ति या पशु प्रयत्न या भूल द्वारा नहीं सीखता बल्कि अन्तर्दृष्टि से सीखता है । जब व्यक्ति के सामने कोई नवीन परिस्थिति आती है तो वह परिस्थिति का अवलोकन करता है । वह परिस्थिति के स्वरूप को अच्छी तरह समझने की कोशिश करता है और वह उद्देश्य की पूर्ति को सामने रखकर व्यवहार करता है । उसकी सीखने की क्रिया को अंतदृष्टि का अधिगम कहते है ।

(ii) **कोहलर का प्रयोग** :- कोहलर ने अपना प्रयोग सुल्तान नामक चिम्पैंजी पर किया । कोहलर ने निम्न प्रकार प्रयोग किये :-

सुल्तान को पिंजरे में बंद करके उसके पास एक छड़ी रख दी गई । पिंजरे से कुछ दूरी पर केले रखे जिन्हें सुल्तान हाथ से प्राप्त नहीं कर सकता था ।

1. सर्वप्रथम सुल्तान ने हाथ से केले प्राप्त करने के लिए प्रयास किया लेकिन वह असफल रहा । सुल्तान ने छड़ी को अचानक उठाया और उसकी सहायता से केले ले लिये । यह अन्तदृष्टि से अचानक हुआ ।
2. दूसरी बार कोहलर ने पिंजरे में दो छड़ियां रखी जिन्हें आपस में जोड़ा जा सकता था । इस बार केले इतनी दूरी पर रखे गये कि सुल्तान केवल एक छड़ी से केले नहीं ले सकता था । सुल्तान ने दोनों छड़ियों को उठाकर जोड़ने की कोशिश की और अंत में केले प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की ।
3. तीसरे प्रयोग में कोहलर ने केले पिंजरे के बाहर रखने की बजाय केले पिंजरे की छत पर टांग दिये । जिन्हें सुल्तान उछलकर प्राप्त नहीं कर सकता था । पिंजरे में एक पेटी भी रखी गई । पहले सुल्तान ने उछल कर केले लेने की कोशिश की । लेकिन

असफल रहा । अचानक उसने पेटी को टंगे हुए केलों के ठीक नीचे रखा तथा उस पर चढ़कर केले प्राप्त कर लिये ।

4. इस बार कोहलर ने केलों को थोड़ी और ऊंचाई पर पिंजरे की छत पर लटका दिया तथा पिंजरे में दो पेटी रखी । पहले केवल एक पेटी पर चढ़कर ही केले प्राप्त करने की कोशिश करता रहा । लेकिन उन्हें प्राप्त करने में असफल रहा । अचानक उसने सूझ द्वारा दूसरी पेटी को पहली पेटी के ऊपर रखा और उस पर चढ़कर केले प्राप्त कर लिये ।

(iii) शैक्षिक निहितार्थ

1. गेस्टाल्टवाद में पर्यावरण को प्रभावी माना गया है आज भी पर्यावरण को महत्वपूर्ण माना जाना जा रहा है ।
2. यह सिद्धान्त पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों को समग्र करने पर बल देता है । विभिन्न विषयों को सहसंबंधित कर छात्रों को पढ़ाया जाय ।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार अंतदृष्टि का उपयोग बालक तभी कर सकता है जब कि उसे संपूर्ण परिस्थिति का ज्ञान हो अत: समस्या को बालकों के समक्ष एक इकाई के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए । पृथक पृथक रूप में नहीं ।
4. यह सिद्धान्त समझकर सीखने पर बल देता है रटने के सिद्धान्त का इसमें कोई महत्व नहीं है ।
5. इस सिद्धान्त का प्रयोग कठिन विषयों जैसे- गणित, भौतिक शास्त्र तथा विज्ञान के अन्य विषयों के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।
6. यह सिद्धान्त विषय वस्तु के रूचिपूर्ण प्रस्तुतीकरण पर बल देता है जिससे छात्रों में सीखने के लिए तत्परता तथा जिज्ञासा रहती है ।
7. यह सिद्धान्त सीखने के लिए अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण पर बल देता है अनुकूल परिस्थितियों में ही सूझ का समुचित उपयोग किया जा सकता है ।
8. इस सिद्धान्त के अनुसार प्रेरणा का अत्यधिक महत्व है अत: अध्यापक द्वारा छात्रों को समय-समय पर प्रेरित किया जाना चाहिए जिससे कि वे अपनी सूझ का समुचित उपयोग कर सके । प्रेरणा उद्देश्य स्पष्ट कर के ही दी जाए ।
9. सूझ के द्वारा किसी समस्या को हल करते समय बालकों में चिंतन तर्क तथा कल्पना शक्ति का विकास होता है अत: बालकों के मानसिक विकास में सहायक है ।
10. इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने के अधिक अवसर दिए जाने चाहिए तथा ये बालकों के स्तर के अनुरूप होने चाहिए क्योंकि यह सीखने के अनुभवों पर बल देता है ।

7.6 सारांश

अधिगम से आशय सीखने से है । सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है । अधिगम के सिद्धान्तों को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है ।

व्यवहारवादी सिद्धान्त व संज्ञानात्मक सिद्धान्त -

व्यवहारवादी सिद्धान्तों में प्रमुख पावलव का शास्त्रीय सिद्धान्त, स्किनर का क्रिया प्रसूत सिद्धान्त, थार्नडाइक का सम्बन्धवाद का सिद्धान्त । संज्ञानात्मक सिद्धान्तों में कोहलर का अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त । सीखने के व्यवहारवादी सिद्धान्त सीखने को उद्दीपक अनुक्रिया से सम्बन्ध करते है जबकि संज्ञानात्मक विचारक सीखना सूझ का परिणाम है ।

7.7 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. "सीखना विकास की प्रक्रिया है' ' स्पष्ट कीजिये ।
2. अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक कौन-कौनसे है ?
3. अधिगम के व्यवहारवादी सिद्धान्त कौन- कौन से है?
4. थार्नडाइक के सम्बन्धवाद के शैक्षिक निहितार्थ स्पष्ट कीजिये ।
5. आपकी राय में सीखने के क्रिया प्रसूत व शाखीय सिद्धान्तों में कौनसा प्रभावी है? व क्यों?
6. “सीखना अर्न्तदृष्टि व सूझ का परिणाम है ।" स्पष्ट कीजिये ।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता एस.पी. अलका 2009 शिक्षा मनोविज्ञान शारदा पुस्तक भवन
2. अरोड़ा रीटा व मारवाह सुदेश शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा प्रकाशन
3. भाई योगेन्द्रजीत बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास विनोद पुस्तक मंदिर आगरा ।
4. सिंह आर.एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा ।
5. चौहान एस.एस. 1987 एडवान्स एजूकेशनल साइकोलॉजी,विकास पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली
6. माथुर एस.एस. शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद प्रकाशन आगरा ।

इकाई 8

अधिगम अन्तरण

(Transfer of Learning)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 अधिगम अन्तरण का अर्थ व परिभाषा
8.3 अधिगम अन्तरण का अर्थ व परिभाषा
8.4 अन्तरण के प्रकार
8.5 सारांश
8.6 मूल्यांकन प्रश्न
8.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- अधिगम अन्तरण के अर्थ को समझ सकेंगें ।
- अधिगम अन्तरण के प्रकारों, सिद्धान्तों को जान सकेंगे ।
- अधिगम अन्तरण की विभिन्न दशाओं के बारे में जान सकेंगें ।
- शिक्षा के क्षेत्र में अन्तरण के महत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगें ।
- अधिगम अन्तरण में शिक्षक की प्रभावी भूमिका का अध्ययन कर सकेंगें ।

8.1 प्रस्तावना

सामान्यतया सीखने सिखाने की प्रक्रिया एक व्यक्ति के जीवन में निरन्तर जीवन पर्यन्त चलती रहती है । किसी भी कार्य को पूर्ण करने साथ व उसके चलायमान अवस्था दोनों को ही अधिगम के साथ जोड़ा जाता है ।

साधारणतया सीखने की प्रक्रिया को हम अन्य क्षेत्रों से जोड़ते हैं और हम अपने उदाहरण व सिद्धान्त बनाने का प्रयास करते हैं । अधिगम किसी प्रक्रिया का परिणाम नहीं है, बल्कि अधिगम स्वयं ही एक प्रक्रिया है, जो कि उद्देश्यपूर्ण होने के साथ साथ अत्यन्त व्यापक है । अधिगम व्यवहार परिवर्तन है । जिस उद्देश्य से किसी कार्य का प्रारम्भ हुआ है, वह कार्य रूप में परिणित व्यवहार परिवर्तन के आधार पर ही माना जाता है ।

अधिगम कभी भी गलत कार्यो के व्यवहारगत परिवर्तन से नहीं होता । अधिगम के परिणाम सदैव ही सकारात्मक होते हैं ।

8.2 अधिगम अन्तरण का अर्थ व परिभाषा

सामान्यतया देखा जाता है कि किसी कार्य को सीखने के पश्चात उसी प्रकार के कार्य को सीखना सरल व सुविधाजनक रहता है । सदैव कोई भी नवीन कार्य प्रारम्भ करने से पहले अर्जित अनुभवों की कारगर भूमिका साबित होती है । विद्यालय में जब अध्यापक गणित, भाषा विज्ञान, हिन्दी आदि के ज्ञान को सीखता है और उसे भावी जीवन में उपयोग करता है, वही अधिगम का अन्तरण कहलाता है ।

सीखे गये ज्ञान का भावी जीवन में नवीन परिस्थितियों में प्रयोग करना ही सीखने का अन्तरण है।

अधिगम अन्तरण को सीखने का अन्तरण व अधिगम का स्थानान्तरण भी कहते हैं । अधिगम अन्तरण व प्रशिक्षण अन्तरण को एक ही कहा जाता है । सीखे हुए ज्ञान का समय व परिस्थिति आने पर प्रयोग करना ही अधिगम का अन्तरण कहलाता है । बालक विद्यालय में अंग्रेजी सीखता है, इस सीखे हुए ज्ञान को वह अपनी सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रयोग करता है या पत्र व्यवहार में प्रयोग करता है । एक रंगमंचकर्मी निरन्तर अभ्यास करता है और कभी उसे फिल्म में कार्य करने का अवसर मिलता है, यह अधिगम अन्तरण कहलाता है ।

जब एक शिक्षक कक्षा में अध्ययन कराता है तो वह प्रक्रिया शिक्षण कहलाती है । शिक्षक की शिक्षण प्रक्रिया की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि बालक को कितना ज्ञान प्राप्त हुआ है । वह अर्जित ज्ञान जिसे वह परिस्थिति स्वरूप व्यवहारगत परिवर्तन कर सके, वही अधिगम कहलाता है । एक बालक औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक आधार पर सीख सकता है । माध्यम कोई भी हो या अभिकरण कोई भी रहा हो, शिक्षण का मुख्य उद्देश्य उसे अधिगम कार्य करवाना है ।

अधिगम में निरन्तरता का पुट है । जैसे शिक्षा सतत् व विकासवादी प्रक्रिया है, उसी प्रकार अधिगम में विकास सम्भव है । बालक की सृजनात्मक नवीन सोच, नवीन दृष्टिकोण, प्रभावी उपचार व नये तथ्यों का प्रस्तुतीकरण सभी अधिगम के पर्याय कहे जा सकते हैं ।

अधिगम को परिस्थिति के आधार पर विभक्त किया जा सकता है, लेकिन यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अधिगम में व्यवहार में वांछित परिवर्तन जरूरी है और वह नकारात्मक नहीं होना चाहिए ।

सीखने की प्रक्रिया में निरन्तरता व सार्वभौमिकता दोनों तत्व प्रमुख रूप से सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हैं । मानव अपने जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है । उसकी सीखने की प्रक्रिया में विराम और अस्थिरता की अवस्था कभी नहीं आती है ।

“Learning is the process of improvement.” - Gates

"सीखना विकास की प्रक्रिया है । " -वुडवर्थ

“Learning is the process of development.” - Woodverth

"अधिगम व्यवहार में उत्तरोत्तर अनुकूलन की एक प्रक्रिया है ।" -स्किनर

“Learning is the process of progressive behavior adaptation.”- Skinner

परिभाषाओं के परिणामस्वरूप निम्न विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है :-

(1) अधिगम प्रक्रिया की अभिव्यक्ति, व्यक्ति की विभिन्न गतिविधियों के द्वारा होती है ।

(2) अधिगम की प्रकृति सदैव ही सकारात्मक नहीं होती । कभी कभी नकारात्मक प्रकृति का भी हो सकता है ।

(3) अधिगम सामान्यतया स्थायी प्रकृति का भी होता है ।

(4) अधिगम की प्रक्रिया अभ्यास तथा अनुभव पर आधारित है ।

(5) यह समायोजन की प्रक्रिया है ।

8.3 अधिगम अन्तरण का अर्थ व परिभाषा

जहां अधिगम बालक की सफलता का पर्याय है, वहीं वह अधिगम भी प्रभावी नहीं हो सकता, यदि अधिगम का स्थानान्तरण करने की कार्यदक्षता का विकास बालक में न हो सके । जब एक परिस्थिति में सीखी गई बातें दूसरे विषय अथवा अन्य परिस्थिति में सीखी जा रही बातों में सहायक व घातक होता है तो उसे अधिगम का अन्तरण कहते हैं ।

अधिगम अन्तरण आगामी कार्य को सीखने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है । यह बालक को सोचने, महसूस करने व अधिगम परिस्थितियों में कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करने की प्रक्रिया स्वरूप कार्य करती है । सीखने के अन्तरण से तात्पर्य प्रभावी व गत्यात्मक शिक्षण व अधिगम से है ।

अंडरवुड के अनुसार -

"वर्तमान क्रियाओं पर पूर्व अनुभवों के प्रभाव को प्रशिक्षण अन्तरण करते हैं ।"

"The influences of previous experience on current performance defines transfer of training."

- B. J. Underwood

सोरेन्सन के अनुसार :-

"स्थानान्तरण एक परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, प्रशिक्षण और आदतों का दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरित किये जाने का उल्लेख करता है ।"

"Transfer refers to the transfer of knowledge, training and habits acquired in one situation to another."

- Sorenson

क्रो एवं क्रो के अनुसार :-

"सीखने के एक क्षेत्र में अर्जित सोचने, महसूस करने या कार्य करने की आदतों का सीखने के दूसरे क्षेत्र में प्रयोग करना साधारणत: प्रशिक्षण का स्थानान्तरण कहा जाता है ।"

"The Carryover of habits of thinking, feeling or working of knowledge from one learning area to another is usually referred to as the transfer of learning."

- Crow and Crow

कैण्डलैंड के अनुसार

"अन्तरण पूर्व सीखे गये व्यवहार का वर्तमान में सीखे गये व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव से संबंधित होता है ।"

"Transfer is concerned with the effect of previously learned behavior on more recently acquired behavior."

- Candland

इन परिभाषाओं को विश्लेषित करते हुये कहा जा सकता है कि -

1. अधिगम या सीखने का अन्तरण एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है ।
2. इससे सूझ या अन्तर्दृष्टि का विकास होता है ।
3. इस क्रिया से समायोजन में सहायता मिलती है ।
4. पूर्व में सीखे ज्ञान का अन्य परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है ।
5. बालक में रचनात्मकता या सृजनात्मकता का विकास होता है ।
6. बालक अपने पूर्व कार्यो की उपलब्धियों से स्व अभिप्रेरित होता है ।

8.4 अन्तरण के प्रकार

अन्तरण मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है - 1 -सकारात्मक अन्तरण, 2-नकारात्मक अन्तरण । कुछ विद्वान इसे 1 -धनात्मक अन्तरण(Positive Transfer), 2-ऋणात्मक अन्तरण (Negative Transfer) भी कहते हैं । कुछ विद्वान अन्तरण के तीसरे प्रकार शून्य अन्तरण की भी चर्चा करते हैं । शून्य अन्तरण कोई अन्तरण नहीं है, बल्कि अन्तरण न होने की अवस्था है, अर्थात व्यक्ति की योग्यता अथवा ज्ञान का अन्य कार्यो को करने की योग्यता पर प्रभाव नहीं पड़ता है, तब इसे शून्य अन्तरण की श्रेणी में रखा जाता है ।

1. धनात्मक अन्तरण / सकारात्मक अन्तरण

धनात्मक अन्तरण वह प्रकार है जिसमें पूर्व अर्जित ज्ञान नवीन ज्ञान को अर्जित करने में सहायक हो जाता है, उसे धनात्मक अन्तरण कहते हैं । धनात्मक अन्तरण में पूर्व ज्ञान, अनुभव व प्रशिक्षण नई बातों को सीखने में सहायता प्रदान करता है । जैसे -अंग्रेजी का ज्ञान फ्रेंच सीखने में मदद करता है, उसे सकारात्मक या धनात्मक अन्तरण कहते हैं ।

2. ऋणात्मक अन्तरण / नकारात्मक अन्तरण-

ऋणात्मक अन्तरण निषेध की स्थिति का अन्तरण है । जब पूर्व अर्जित ज्ञान नवीन ज्ञान को सीखने में बाधक होता है, उसे ऋणात्मक अन्तरण कहते हैं । जब किसी कार्य को करने का ज्ञान दूसरे कार्यो को करने में घातक होता है तब इसे सीखने का ऋणात्मक अन्तरण कहा जाता है ।

	क्षैतिज अन्तरण
सीखने का अन्तरण	उर्ध्व अन्तरण
	द्विपार्श्विक

1. क्षैतिज अन्तरण

जब किसी एक तरह की ही स्थिति में प्राप्त किया ज्ञान, अनुभव अथवा प्रशिक्षण का उपयोग व्यक्ति के द्वारा उसी प्रकार की लगभग समान परिस्थिति में किया जाता है तो इसे सीखने का क्षैतिज अन्तरण कहते हैं ।

एक ही समान बनी परिस्थिति में बालक अर्जित ज्ञान को वैसी ही परिस्थिति मिलने पर समान रूप से हस्तान्तरित कर पाता है । उदाहरण-हिन्दी की व्याकरण संबंधी ज्ञान उसी प्रकार की परिस्थिति मिलने पर प्रभावी व अधिक अधिगम में सक्षम होता है ।

क्षैतिज अन्तरण का सामाजिक पक्ष भी कारगर साबित होता है । एक लड़की जिसको जिस प्रकार का व्यवहार पीहर पक्ष में मिलता है वैसा ही ससुराल में मिलता है तो उसका समायोजन अधिक प्रभावी हो पाता

क्षैतिज अन्तरण की विशेषताएं :-

1. समायोजन में असरदार
2. सृजनात्मकता की अपेक्षार्थ अधिक
3. लाभकारी परिणामों की प्राप्ति सम्भव
4. अधिगम की अवश्यम्भावी परिस्थितियों के लिये आवश्यक
5. आत्मविश्वास व स्व अभिप्रेरणा का माध्यम

क्षैतिज अन्तरण के लिए आवश्यक बिन्दु :-

1. समान पृष्ठ की आवश्यकता ।
2. शिक्षक की महती भूमिका ।
3. अधिगम की परिस्थितियों को पहचानने की दक्षता ।
4. असरदार साधनों का प्रभाव व कार्यक्षेत्र ।

2. उर्ध्व अन्तरण

जैसा कि 'उर्ध्व' शब्द से ही तात्पर्य है - 'उच्च या अधिक' । उर्ध्व अन्तरण से तात्पर्य किसी परिस्थिति में अर्जित ज्ञान, अनुभव अथवा प्रशिक्षण का प्रयोग प्राणी के द्वारा किसी अन्य भिन्न प्रकार की उच्चस्तरीय परिस्थिति में किया जाये । जैसे साईकिल चलाने वाले व्यक्ति के लिए स्कूटर चलाना उर्ध्व अन्तरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है ।

उर्ध्व अन्तरण विकास का सूचक है । अन्तरण की यह अवस्था ऊंचाइयों व सफलता तक पहुंचाने का प्रयास करती है । उर्ध्व अन्तरण के अन्तर्गत बालक अपनी पहली न्यून सफलता को ही आधार बनाकर उर्ध्व या उच्च सफलता के बारे में सोच सकता है ।

उर्ध्व अन्तरण की विशेषताएं :-

1. प्रभावी नेतृत्व शक्ति के लिए सफल ।
2. श्रेष्ठ परिणामों की प्राप्ति में सहायक ।
3. प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टिकोण का विकास ।
4. सीखने की परिस्थितियों में सम्भव ।

3. द्विपार्श्विक अन्तरण

जब व्यक्ति के शरीर के दो भागों जैसे- दांया भाग व बांया भाग में भी अधिगम के प्रभाव का असर दिखाई दे तो उसे द्विपार्शिव अन्तरण कहते हैं । जैसे-एक हाथ से काम करने की दक्षता का लाभ दूसरे हाथ से काम करने में भी आता है ।

द्विपार्श्विक अन्तरण की विशेषताएं :-

1. ज्ञानेन्द्रियों का उचित विकास
2. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

4. अधिगम अन्तरण को प्रभावित करने वाले कारक :-

अधिगम अन्तरण सीखने की सफलता के साथ सफलता का भी पर्याय है । अधिगम अन्तरण को निम्न बिन्दु प्रभावित करते हैं -

1. पूर्व क्रिया अधिगम :-

बालक जिस गति से सीखता है, नवीन परिस्थिति में उतनी शीघ्रता से उसका अनुसरण करने का प्रयास करता है । अधिगम अन्तरण की सफलता इस बात पर मुख्य रूप से टिकी हुई है कि पूर्व में अधिगम किस प्रकार का किया गया है । यदि अधिगम प्रभावी नहीं है तो अर्जित ज्ञान का नवीन अनुभवों में अन्तरण भी आसान नहीं है ।

2. विषयवस्तु व सामग्री :--

अधिगम अन्तरण को प्रभावित करने में अधिगम की विषयवस्तु व विषय सामग्री का भी महत्वपूर्ण योगदान है । यदि विषयवस्तु कठिन व क्लिष्ट है तो अधिगम भी प्रभावित होगा। अत: सबसे पहले विषयवस्तु का सरल होना अत्यन्त आवश्यक है ।

3. अधिगम की इच्छा :-

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उरग कार्य के प्रति इच्छा भाव होना आवश्यक है । प्रभावी अधिगम वही है, जहां बालक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सीख सकें । दृढ़ इच्छा शक्ति अधिगम व अधिगम अन्तरण के लिये आवश्यक बिन्दु की भूमिका का निर्वहन करती है।

4. मानसिक स्वास्थ्य व परिपक्वता :-

मानसिक रोगों से पीड़ित बालक अधिगम करने में असफल रहते हैं । वे मानसिक परिपक्वता के अभाव में प्रभावी व कारगर कदम नहीं उठा सकते हैं ।

5. शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता :-

मानसिक स्वास्थ्य के साथ ही साथ शारीरिक स्वास्थ्य भी अधिगम को प्रभावित करता है । कमजोर, बीमार, अपरिपक्व बालक अधिगम प्रभावी रूप से करने में स्वयं को सक्षम महसूस नहीं करेगा ।

6. सीखने की विधि :-

अधिगम व उसके अन्तरण में सीखने की विधि का प्रभावी योगदान है । बालक अपने शिक्षक से विषयवस्तु को जिस विधि द्वारा सीखेगा, वह प्रक्रिया व शिक्षण कार्य उस विधि द्वारा ही पूरी की जा सकेगी

7. वातावरण व परिवार :-

अधिगम की प्रक्रिया में वातावरण व पारिवारिक पृष्ठभूमि का विशेष योगदान होता है । एकान्त, शान्त व रोचक माहौल में एक बालक अधिक अधिगम कर पाता है । अधिगम की सफलता से ही अन्तरण की प्रक्रिया सम्भव है ।

8. तार्किक व घटनाओं का हस्तान्तरण करने की क्षमता :-

अधिगम हस्तान्तरण में आवश्यक हस्तान्तरण को नवीन परिस्थितियों में तार्किक क्रम में स्वीकार करने की योग्यता का विकास करना है ।

9. कुशल अध्यापक की भूमिका :-

सबसे आवश्यक है एक अध्यापक का कुशल नेतृत्व । एक कुशल अध्यापक ही अधिगम हस्तान्तरण को प्रभावीपूर्ण तरीके से अपना सकता है ।

5. अधिगम अन्तरण के सिद्धान्त :-

सीखने के अन्तरण के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों का प्रारम्भ से ही रूझान रहा है । अन्तरण के सिद्धान्त की चर्चा निम्न बिन्दुओं के आधार पर की जा रही है :-

1. सीखने व सिखाने का सिद्धान्त :-

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्ति एक ही तरह के कार्य के बार बार करने पर उस कार्य को सीख जाता है । कई बार एक तरह के कार्य दोहराने से वह कार्य पूर्ण रूप से मानस पटल पर स्थायी हो जाता है । इसे हम आवृत्ति का सिद्धान्त भी कह सकते हैं । छोटी कक्षाओं में शिक्षक भी इस सिद्धान्त के आधार पर ही अधिगम करवाता है ।

जैसे :-विज्ञान व गणित के सूत्रों को बालक बार-बार अभ्यास करता है और उसका परिणाम यह रहता है कि कभी भी जब उसे इन सूत्रों की आवश्यकता होती है तो उन्हें प्रत्यास्मरण करने में परेशानी नहीं होती है ।

2. सामान्यीकरण का सिद्धान्त :-

कक्षा में शिक्षक कितना भी बालक को अधिगम करवा दे, लेकिन बालक उसे अपने ही तरीके से सीखता व समझता है । वह उस सिद्धान्त से संबंधित सामान्य नियमों का निर्माण कर लेता है, यह सामान्यीकरण का सिद्धान्त कहलाता है । इसका प्रतिपादन सन् 1908 में सी.एच. वुड ने किया था ।

जैसे :- शिक्षक कक्षा में जब किसी सिद्धान्त को समझाता है तो बालक अपने निजी जीवन के साथ इसका तालमेल बिताते हुये उसे सामान्य व सरल बनाकर ग्राह्य करने की कोशिश करता है । बालक नियमों को उदाहरणों में परिवर्तित करके उसका सरल रूप अपने अधिगम के लिये तैयार करता है ।

3. आरोपण का सिद्धान्त :-

गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार -जब एक परिस्थिति को दूसरी परिस्थिति पर आरोपित किया जाता है तो ही अधिगम का परिवर्तन होता है । इस सिद्धान्त के अनुसार एक परिस्थिति के नियमों व सिद्धान्तों का प्रयोग जब दूसरी परिस्थिति में आरोपित करके किया जाता है तो परिस्थितिजन्य अधिगम को प्रेरणा प्राप्त होती है ।

जैसे :-विद्यालय प्रशासन की कोई घटना को घर की परिस्थिति में रखकर उसे सरल बनाकर समझाना अधिक सरल हो जाता है ।

4. मानसिक शक्तियों के विकास का सिद्धान्त :-

मानसिक शक्तियों के विकास का सिद्धान्त स्वत: सिद्धान्त है । जब क्रिया का सिद्धान्त पूर्ण हो जाता है, तभी दूसरे कार्य का सिद्धान्त प्रारम्भ होता है । जैसे -यदि स्मृति का विकास हो गया तो उसका प्रभाव बालक को प्रत्येक क्षेत्र में मिलेगा और वह उसके परिणाम से आगामी जीवन में कुछ न कुछ नया सीख भी पायेगा । सीखने की सामग्री व विषयवस्तु यदि कठिन होती है तो उसका अधिक अभ्यास करने पर मानसिक शक्तियों का विकास हो जाता है । गणित, भौतिकी, संस्कृत जैसे विषयों को पढ़ने के लिए मानसिक शक्तियों के विकास को अधिक उपयुक्त किया जाता है ।

लेकिन कुछ वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते । इनमें थार्नडाइक, विलियम जोन्स आदि इसका खण्डन करते हैं ।

5. समान तत्वों का सिद्धान्त :-

समान तत्वों के सिद्धान्त को थार्नडाइक स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार एक ही तरह की परिस्थिति जब बालक को प्राप्त है तो वह उस कार्य को आसानी से सीख लेता है । समान तत्वों के सिद्धान्त के अनुसार एक स्थिति का दूसरी स्थिति में स्थानान्तरण उसी अनुपात में होता है, जिस अनुपात में वह पहली स्थिति में था ।

6. औपचारिक मानसिक प्रशिक्षण का सिद्धान्त :-

मानसिक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति एक स्थिति की पृष्ठभूमि का स्थानान्तरण दूसरी स्थिति में कर पाने में स्वयं को सक्षम समझता है ।

7. सामान्य व विशिष्ट तत्वों का सिद्धान्त :-

स्पीयरमैन इस सिद्धान्त के प्रतिपादक माने जाते हैं । उनके अनुसार मनुष्य में दो प्रकार की बुद्धि होती है -एक सामान्य व दूसरी विशिष्ट । वह अपने प्रत्येक क्षेत्र में समस्याओं को इन आधारों पर वर्गीकृत करके सुलझाने का प्रयत्न करता है और उसी के आधार पर निर्णय तक पहुंचने का प्रयत्न करता है ।

8. पहले चयन का सिद्धान्त :-

अन्तरण की इस क्रिया में शिक्षक की भूमिका अनिवार्य है कि वह चयन व पहल करने की शक्ति का विकास कर सके । अन्तरण के लिये परिस्थिति का चयन करके उसे सीखने का भी सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाता है ।

6. अन्तरण की दशाएं

सीखने का हस्तान्तरण अचानक होने की प्रक्रिया नहीं है । जब कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न होती है तो उस परिस्थितिस्वरूप अधिगम का हस्तान्तरण किया जाता है । अधिगम की परिस्थितियों के उत्पन्न होने में कई दशायें कार्य करती है ।

रेबर्न के अनुसार :-

"स्थानान्तरण निश्चित परिस्थितियों में निश्चित मात्रा में हो सकता है ।"

"There is a certain amount of transference that can take place under certain condition."

- Rayburn

अभिप्राय है कि अधिगम अन्तरण निश्चित मात्रा में ही होता है, यह पूर्ण रूप से हो सके, यह आवश्यक नहीं है ।

1. सीखने वाले की इच्छा

अधिगम के लिये सीखने वाले की इच्छा आवश्यक है । यदि सीखने की इच्छा बालक में होगी तो वह अर्जित ज्ञान को अन्तरण भी उतनी ही गति से कर सकेगा । यदि किसी में सीखने की इच्छा ही नहीं है तो वह अन्तरण भी शीघ्रता से नहीं कर सकता ।

वर्सेल का कथन है :-

"किसी नई परिस्थिति की अधिगम अन्तरण की अनिवार्य शर्त है कि सीखने वाले में उसे हस्तान्तरित करने की इच्छा अवश्य होनी चाहिए ।"

2. सीखने वाले की शैक्षिक योग्यता

सीखने वाले की शैक्षिक योग्यता का भी अधिगम पर प्रभाव पडता है । शैक्षिक योग्यता जितनी होगी स्थानान्तरण की क्षमता भी उतनी ही अधिक होगी । शैक्षिक योग्यता में ज्ञान रटकर प्राप्त किया हुआ नहीं होना चाहिए । शैक्षिक योग्यता से मानसिक क्रियाएं प्रभावित होती है ।

वर्सेल के अनुसार :-

"जब हम किसी बात को वास्तव में सीख लेते हैं, तभी उसका स्थानान्तरण कर सकते हैं ।"

"Whenever we have usually learned anything we can transfer it."

-Wersell

3. सीखने वाले की मानसिक योग्यता :-

शैक्षिक योग्यता ही मानसिक योग्यता को प्रभावित करती है । सीखने वाले की मानसिक योग्यता जितनी अधिक होगी, उसकी बुद्धि भी उतनी ही होगी । मानसिक योग्यता अधिक होने से निश्चित रूप से अधिगम प्रभावित होता है । अधिगम प्रभावी होने से अधिगम का अन्तरण भी प्रभावित होता है ।

4. सामान्यीकरण की योग्यता

सीखने वाले में अपने कार्यो व अनुभवों को जितना अधिक सामान्यीकृत करने की योग्यता होती है उस व्यक्ति में उतना ही अधिक अन्तरण करने की सम्भावनाएं होती है । जिस सीमा तक व्यक्ति द्वारा सामान्यीकरण किया जायेगा, अधिगम भी उसी सीमा तक हो पाने में सम्भव हो सकेगा ।

उदाहरण-एक बालक यदि शिक्षण के कार्य को अपने दोस्तों में अनुभवों के द्वारा सहयोग व सहायता से आगे बढ़ाता है तो उसका अधिगम भी उसी प्रकार प्रभावी होगा । कार्य को सामान्यीकरण के द्वारा अधिगम सुगमता से समझा जा सकता है ।

5. विषयवस्तु की समानता

विषयवस्तु का समान होना चाहे परिस्थिति भिन्न हो, अधिगम को प्रभावित करता है और निश्चित रूप से अधिगम अन्तरण को प्रभावित करने का यह सबसे बड़ा घटक है । विषयवस्तु की समानता से सीखे हुए ज्ञान का दूसरी परिस्थिति में परिवर्तन कर देना सम्भव व सरल है । जब विषयवस्तु समान होती है तो बालक को ज्यादा मानसिक भार से भी ग्रसित नहीं होना पड़ता । जैसे गणित का अध्ययन सांख्यिकी को प्रभावित करता है, लेकिन हिन्दी को प्रभावित नहीं कर सकता ।

6. अध्ययन विधियों की समानता

विषयवस्तु के साथ ही आवश्यक है कि अध्ययन की विधियां भी समान होनी चाहिए । जब एक विषय से दूसरे विषय में अधिगम अन्तरण को सरल बनाने की बात की जाती है तो यह अध्ययन विधियों के समान होने से ही सम्भव है । जैसे हिन्दी व अंग्रेजी को पढ़ाने की अध्ययन विधियां समान होने से अन्तरण अधिक सम्भव होता है ।

7. विषयों में अन्तरण मूल्य

विषयों के अन्तरण मूल्य भी भिन्न भिन्न होते हैं । गणित तथा विज्ञान विषय में अन्तरण मूल्य अधिक होता है, जबकि बाकी विषयों में अन्तरण का मूल्य कम होता है । अत: अन्तरण मूल्यों की विभिन्नता भी अधिगम को प्रभावित करती है ।

8. प्रशिक्षण

अधिगम अन्तरण का प्रशिक्षण सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु कहा जा सकता है । यह पक्ष सीधे सीधे अभिवृत्यात्मक कौशल से जुड़ा हुआ है । कक्षा विषय के शिक्षण के समय ही यदि अध्यापक उसे प्रारम्भ से ही यह कहता रहे कि अमुक बिन्दु का भावी परिस्थितियों में इस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है तो शिक्षण ज्यादा प्रभावी हो सकता है ।

जैसे - सामाजिक जीवन में परिवार में घर के बड़े बच्चों को संस्कारों का बीजारोपण करते समय भविष्य में भावी परिस्थितियों के पड़ने पर संस्कार के लाभ की जानकारी देते रहते हैं, वैसे ही कक्षा शिक्षण में यदि कक्षा 6 के विद्यार्थी को गणित पढ़ाते समय यह पहले से ही बता दिया जाये कि यह 7 वीं कक्षा में अधिगम में किस प्रकार सहायक है? यह गतिविधि अन्तरण के लिए प्रशिक्षण का कार्य करती है ।

7. अधिगम अन्तरण में शिक्षक की भूमिका

शिक्षक ही कक्षा में बालक का कौशल व ज्ञान का विकास करता है । अत: उसकी यह अहम् भूमिका है कि वह बालक में अधिगम अन्तरण के लिए शिक्षण कार्य कराते समय ही उसे प्रेरित करता रहे । कक्षा शिक्षण में जहां समस्त कौशलों का विकास होता है, वहीं शिक्षक को अधिगम का परिमाणात्मक स्वरूप पहचानने के लिए शिक्षक को कक्षा में बालक को प्रशिक्षण देते रहना चाहिए । शिक्षक बालक के लिये ज्ञानदाता, मार्गदर्शक, पथप्रदर्शक है, अत: वह निर्देशन देते हुए आगामी शिक्षण के लाभ के बारे में भी बालक को अवगत कराता रहे ।

फ्रेंडसन के अनुसार :

"स्थानान्तरण अधिगम की कुशलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाला व्यापक कारक है।"

"Transfer is a pervasive factor which significantly influences of learning."

- Friendson

अत: अधिगम की कुशलता तभी सम्भव है, जब उसे अन्तरण किया जाये । बालकों की अधिगम कुशलता में वृद्धि करने के लिए स्थानान्तरण से परिचित कराया जाना अत्यन्त आवश्यक है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षक को निम्न कार्य करना चाहिये -

1 सामान्यीकरण की भावना का विकास

शिक्षक की प्रमुख विशेषता सामान्यीकरण का प्रयास करने से है । शिक्षक प्रारम्भ से ही बालक को सामान्यीकरण करना सीखा दे तो वह नये कार्यो के सृजन में सफलता प्राप्त कर सकता है । शिक्षण कार्य के प्रारम्भ में ही शिक्षक को तथ्यों के सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या करते रहना चाहिए ।

2 अर्जित ज्ञान का विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग

अर्जित ज्ञान यदि प्रयोग में न लिया जाये तो वह निरर्थक है । अत: शिक्षक को बालकों को अपने ज्ञान का प्रयोग करने के लिये अधिक से अधिक परिस्थितियां प्रदान करनी चाहिये । शिक्षक बालक को परिस्थिति प्रदान करके अवसर प्रदान करने का प्रयास करता है । जिसके द्वारा बालक प्रभावी अधिगम कर सके ।

3 समझदारी की भावना का विकास

वार्सेल ने तीसरा कारक समझदारी को माना है । शिक्षक ही बालक में इस गुण का विकास करने में सक्षम है । अधिगम को समझने व उसे उपयुक्त परिस्थिति के आधार पर अन्तरण करने का कार्य शिक्षक के प्रयासों के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है ।

4 विषयों की समानता

स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाले कारकों में चौथा कारक विषयों की समानता है । शिक्षक को अपने शिक्षण के समय पाठ्यविषय में आने वाले तथ्यों की दूसरे विषयों के तथ्यों से समानता बतानी चाहिए ।

5 अध्ययन की विधियां

शिक्षक को अधिगम व अधिगम अन्तरण के विकास के लिए सर्वोत्तम विधियों का प्रयोग करना चाहिए ।

6 बालकों में व्यक्तिगत विभिन्नताएं

स्थानान्तरण को प्रभावित करने वाले कारकों में बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताएं भी अधिगम अन्तरण को प्रभावित करने के कारकों में महत्वपूर्ण साबित होते हैं ।

बालक अपनी आयु, योग्यता व बुद्धि के स्तर के आधार पर अधिगम व अधिगम का अन्तरण करता है । अधिगम अन्तरण बालक किस परिस्थिति का चयन अपने अनुसार करता है, यह भी बालक की व्यक्तिगत भिन्नता पर ही निर्भर करता है ।

7 बालकों की मानसिक योग्यता को पहचानना

स्थानान्तरण को प्रभावित करने का यह भी एक कारक है । शिक्षक बालक की मानसिक योग्यता को पहचानने व उसके विकास में महती भूमिका का निर्वहन करता है ।

शिक्षक का यह प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए कि वह बालक के मानसिक स्तर को निरन्तर नवीन विचारों के माध्यम से बेहतर बनाता रहे ।

शिक्षक वर्ग पहेली, मस्तिष्क विप्लवन, नवाचारी शिक्षण, समूह चर्चा आदि के माध्यम से बालक के मानसिक स्तर का विकास कर सकता है ।

8 अन्तरण का प्रशिक्षण

अन्तरण को प्रभावित करने में अन्तरण का प्रशिक्षण आवश्यक है । शिक्षक बालक की मानसिक योग्यता के साथ उसे अन्तरण का प्रशिक्षण प्रदान करे । अन्तरण के प्रशिक्षण में बालक को प्रारम्भ से ही यह सिखाया जाना चाहिये कि भावी परिस्थितियों में किन अधिगम तत्वों का अन्तरण करना आवश्यक है ।

स्किनर के अनुसार :-

"अधिगम स्थानान्तरण की शिक्षा के लिये विचारपूर्ण तैयारी और पाठों के विकास की आवश्यकता है ।"

“Teaching for Transfer of learning requires throughtful preparation and development of lessons.”

- skinner

इन सभी तथ्यों के फलस्वरूप शिक्षक को यह चाहिये कि वह बालक की मानसिक योग्यता, व्यक्तिगत विभिन्नता, स्थानान्तरण के प्रशिक्षण, अध्ययन की विधियों, सामान्यीकरण की भावना के विकास के साथ अधिगम में समन्वय की भावना का भी विकास करे । छात्रों को दिये गये ज्ञान व कौशल का विभिन्न परिस्थितियों में उपयोग करते रहने की प्रेरणा दे ।

8. अधिगम अन्तरण का शैक्षिक निहितार्थ

शैक्षिक दृष्टि से सीखने का अन्तरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । अन्तरण के फलस्वरूप बालकों की अधिगम कुशलता में वृद्धि होती है । जिसके परिणामस्वरूप वे नवीन बातों को सरलता, शीघ्रता तथा स्थायी रूप से सीख लेते हैं ।

शिक्षा प्रक्रिया के संचालकों को सीखने के अन्तरण से संबंधित ज्ञान का उपयोग बालकों की शिक्षा को सरल, सुगम तथा प्रभावशाली बनाने के लिये करना चाहिये । सीखने के अन्तरण को निम्न आधार पर व्यक्त किया जा सकता है -

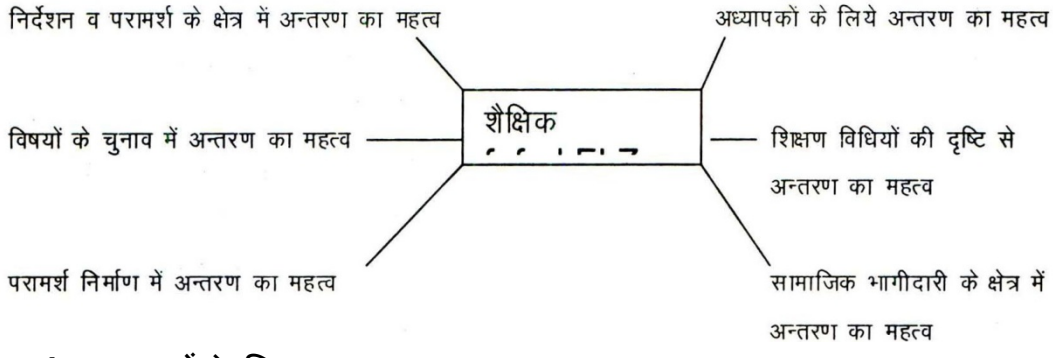

1 अध्यापकों के लिए अन्तरण का महत्व

शिक्षा के संचालन का जिम्मा शिक्षकों के हाथों में होता है, अत: शिक्षकों को अधिगम के अन्तरण की प्रक्रिया का ज्ञान अत्यन्त लाभप्रद साबित हो सकता है । निम्न बातों का ध्यान रखकर शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया में अन्तरण का उपयोग कर सकता है -

1. शिक्षक पढ़ाते समय विशिष्ट समस्याओं की अपेक्षा सामान्य सिद्धान्तों का ज्ञान दे ।
2. अध्यापक उदाहरण देकर बात की पुष्टि करे ।
3. शिक्षक मुख्य बिन्दुओं को भली प्रकार से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करे ।
4. छात्र के दैनिक जीवन की वास्तविक परिस्थितियों तथा शिक्षण कार्यो में सामंजस्य करना चाहिए ।
5. वास्तविक जीवन के उदाहरणों को कक्षा शिक्षण में बताना चाहिए ।
6. पूर्व ज्ञान की आवश्यकता होने पर शिक्षण को पूर्व ज्ञान से ही प्रारम्भ करना चाहिए ।

2 शिक्षण विधियों की दृष्टि से अन्तरण का महत्व

शिक्षण विधि का प्रयोग भी अन्तरण की मात्रा को प्रभावित करती है । अध्यापक ऐसी ही शिक्षण विधि का प्रयोग करे, जिससे अन्तरण की मात्रा प्रभावित होती हो । शिक्षण विधि ऐसी ही प्रयोग की जानी चाहिए जो विभिन्न दशाओं तथा कारकों को ध्यान में रखकर की गई हो ।

3 पाठ्यक्रम निर्माण में अन्तरण का महत्व

पाठ्यक्रम निर्माण में सीखने के अन्तरण का विशेष महत्व है । अन्तरण किन परिस्थितियों में, किस प्रकार व किन इकाईयों में पूरा किया जायेगा, ये सभी पाठ्यक्रम के अंग के रूप में है । पाठ्यक्रम बालक में व्यावसायिक कुशलता व व्यावहारिकता प्रदान करने वाला हो।

4 सामाजिक भागीदारी के क्षेत्र में अन्तरण का महत्व

अन्तरण में व्यावहारिकता व सामाजिकता के अवसर अधिक प्राप्त होते हैं । शिक्षक के माध्यम से बालक सामाजिकता के विकास में भूमिका का निर्वहन करता है ।

5 विषय के चुनाव के क्षेत्र में अन्तरण का महत्व

विषयों के चुनाव में अन्तरण का विशेष महत्व रहा है तथा शिक्षण के समय जब बालक को शिक्षक अन्य विषयों का ज्ञान देता है तो अन्तरण के माध्यम से विषयों का चुनाव सरल हो जाता है ।

जैसे -कक्षा 8 या 9 में यदि शिक्षक के माध्यम से गणित विषय में छात्र की रूचि उत्पन्न कर दी जाती है तो बालक ऐच्छिक विषय के रूप में उसी विषय का चुनाव करता है ।

6 निर्देशन व परामर्श के क्षेत्र में अन्तरण का महत्व

विषयों के चुनाव, ज्ञान वृद्धि के विकास व अध्ययन आदतों के विकास में निर्देशन व परामर्श की महती भूमिका है ।

अधिगम अन्तरण बालक के बहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त करती है । बालक की वैयक्तिक भिन्नताओं के आधार पर वह परिस्थिति के अनुसार सीखे हुये ज्ञान का अन्तरण कर आगामी कल्पनाएं करने में सक्षम हो पाता है ।

8.5 सारांश

अधिगम अन्तरण का अर्थ -

किसी विषय, कार्य अथवा परिस्थिति में अर्जित ज्ञान का उपयोग किसी अन्य विषय, कार्य अथवा परिस्थिति में करना, एक कार्य को सीखने का आगामी कार्यो को सीखने पर पड़ने वाले प्रभाव को अधिगम अन्तरण माना जाता है ।

अन्तरण के प्रकार -

अन्तरण को मुख्यत: दो भागों में बांटा जाता है -

1. धनात्मक / सकारात्मक अन्तरण
2. ऋणात्मक / नकारात्मक अन्तरण

1 धनात्मक /सकारात्मक अन्तरण :-

पूर्व अर्जित ज्ञान के प्रयोग से नवीन ज्ञान को अर्जित करना सहायक हो, वह धनात्मक अन्तरण कहलाता है ।

2 ऋणात्मक/ नकारात्मक अन्तरण :-

जब पूर्व अर्जित ज्ञान नवीन ज्ञान को प्राप्त करने में बाधक हो, वह ऋणात्मक अन्तरण कहलाता है ।

सीखने के अन्तरण को तीन भागों में बांटा जाता है -

1 क्षैतिज अन्तरण

2 उर्ध्व अन्तरण

3 द्विपार्श्विक अन्तरण

अधिगम अन्तरण के सिद्धान्त -

1. मानसिक अनुशासन का सिद्धान्त :-
   मानसिक क्रियाओं के अभ्यास से अन्तरण स्वत: होता है ।
2. समान अवयव का सिद्धान्त :-
   एक स्थिति से दूसरी स्थिति में अन्तरण समान अनुपात में होता है ।
3. सामान्यीकरण का सिद्धान्त :-
   जब दोनों परिस्थितियों में कुछ न कुछ समानता होती है तो अन्तरण शीघ्र होता है ।
4. सीखने सिखाने का सिद्धान्त :-
   एक ही प्रकार के कार्य को करते करते बालक को अधिगम शीघ्र हो जाता है ।
5. आरोपण का सिद्धान्त :-
   जब एक व्यक्ति अपनी सूझ या अन्तर्दृष्टि का प्रयोग दूसरे की समस्या का समाधान करने हेतु करता है ।

अन्तरण की दशाएं -

1. सीखने वाले की इच्छा
2. सीखने वाले की मानसिक योग्यता

3. सीखने वाले की शैक्षिक उपलब्धि
4. विषयवस्तु की समानता
5. अध्ययन विधियों की समानता
6. सीखने वाले में सामान्यीकरण की योग्यता
7. प्रशिक्षण

शिक्षक की भूमिका -

1. समझदारी की भावना का विकास
2. अर्जित ज्ञान का नवीन परिस्थितियों में प्रयोग
3. बालकों में व्यक्तिगत भिन्नताओं का विकास
4. अध्ययन की विधियाँ
5. बालकों की मानसिक योग्यता को पहचानना ।
6. स्थानान्तरण में प्रशिक्षण

शैक्षिक निहितार्थ -

1. अध्यापकों के लिए अन्तरण का महत्व
2. निर्देशन व परामर्श के क्षेत्र में महत्व ।
3. विषयों के चुनाव में महत्व
4. पाठ्यक्रम निर्माण में अन्तरण का महत्व
5. शिक्षण विधियों की दृष्टि में अन्तरण का महत्व
6. निर्देशन व परामर्श के क्षेत्र में अन्तरण का महत्व

8.6 मूल्यांकन प्रश्न

1. अधिगम के अन्तरण से आप क्या समझते हैं?
2. सामान्यीकरण किस प्रकार अन्तरण में सहायता करता है?
3. अधिगम अन्तरण की शैक्षिक उपादेयता क्या है?
4. जिन परिस्थितियों में अधिगम अन्तरण होता है, उसकी शैक्षिक विवेचना कीजिये ।
5. एक शिक्षक को ध्यान में रखने वाले मुख्य तत्वों का वर्णन कीजिये ।
6. अधिगम अन्तरण द्वारा अपना मन: शक्तियों का अधिक अच्छा बनाया जा सकता है, कैसे ?

8.7 संदर्भ ग्रंथ

1. पाठक, पी.डी. 2007-08 शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. गुप्ता, एस.पी., अलका, 2009, शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन
3. अरोड़ा, रीटा व मारवाद सुदेश, 2004, शिक्षा मनोविज्ञानशिक्षा प्रकाशन, जयपुर
4. Mussel, J.C. Educational Psychology, Network: W.W.norton&company, 1930

5. भाई योगेन्द्रजीत : बाल मनोविज्ञान एवं बालविकास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. सिंह, आर.एस: आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

इकाई 9

गने द्वारा प्रतिपादित अधिगम-अनुक्रम

इकाई की रूपरेखा

9.0 लक्ष्य तथा उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अधिगम का अर्थ

9.3 मानव योग्यताएँ

शाब्दिक ज्ञान

बौद्धिक कौशल

संज्ञानात्मक व्यूह-रचना

अभिवृत्तियां

चालक कौशल

9.4 अधिगम के प्ररूप

संकेतक अधिगम

उद्दीपक अनुक्रिया

बाब्दिक साहचर्य

श्रृंखला अधिगम

विवेकी / विभेदक अधिगम

सम्प्रत्यय अधिगम

विधान (नियम) अधिगम

समस्या समाधान

9.5 अधिगम क्रिया के पक्ष

अभिप्रेरणा

बोध

संग्रहण

अवधारण

अनुस्मरण व्यापकीकरण

निष्पाद

प्रति पुष्टि

9.6 शिक्षण क्या है

9.6.1 गने की शिक्षण की अवधारण

9.7 शिक्षण प्रक्रिया के मुख्य घटक

9.8 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्त तक आप निम्न लिखित उद्देश्य प्राप्त करने में सक्षम हो जाएंगे ।

- गने के शब्दों में शैक्षिक मनोविज्ञान का उद्देश्य बता सकेंगे तथा अधिगम के अर्थ को व्यवहार योग्यता परिवर्तन के रूप में परिभाषित कर सकेंगे ।
- अधिगम-अनुक्रम का अर्थ उदाहरण दे कर बता सकेंगे ।
- विभिन्न अधिगम योग्यताओं (क्षमताओं) के अर्थ को सोदाहरण स्पष्ट कर सकेंगे ।
- गने द्वारा आठों प्रकार के अधिगम प्रारूपों के नाम लिख सकेंगे ।
- प्रत्येक प्रकार के अधिगम प्ररूप के लिए अपेक्षित अधिगम परिस्थितिओं (बाह्य तथा अन्त:) को बता सकेंगे ।
- सोदाहरण स्पष्ट कर सकेंगे कि किस प्रकार किसी भी उच्चतम अधिगम प्ररूप के लिए निरन्तर अधिगम प्ररूप पूर्ववत हो सकते है ।
- अधिगम क्रिया के आठों पक्षों को उचित अनुक्रम में लिख सकेंगे ।
- प्रति पुष्टि के अर्थ को स्पष्ट करते हुए अधिगम में इसके महत्व को बता सकेंगे ।
- शिक्षण के अर्थ को लिख सकेंगे तथा अधिगम अवस्थाओं तथा शिक्षण के सहसम्बन्ध की व्याख्या कर सकेंगे ।
- गने के अनुसार एक प्रभावी अध्यापन मे अधिगम अवस्थाओं के उपभोग की समीक्षा कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना

गने महोदय एक प्रमुख शिक्षा मनोवैज्ञानिक है जिन्होनें शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को एक व्यवहारगत परन्तु उदार स्वरूप प्रदान किया । गने द्वारा प्रतिपादित मनोविज्ञान को व्यवहार परिवर्तन अथवा निष्पादन योग्यता आधारित शिक्षा के साथ जोड़ा । उन के अनुसार शैक्षिक मनोविज्ञान का उद्देश्य उन अवस्थाओं को ढूंढना है जिनके अन्तर्गत अधिगम घटित होता है ।

गने महोदय कोई पृथक विशेष अधिगम सिद्धान्त प्रस्तुत नही करते है । इनका उद्देश्य मात्र उन प्रेक्षणीय अवस्थाओं को स्पष्ट करना है जिनकी व्यवस्था करने पर अधिगम को सुगम व प्रभावी बनाया जा सकता है । यद्यपि इन की यह दार्शनिक उदार वादिता (eclecticism) मुख्य रूप से व्यवहारवाद पर आधारित है, परन्तु इस के अन्तर्गत अधिगम के गेस्टाल्ट तथा क्षेत्र मनोविज्ञान (field psychology) की झलक भी मिलती है । उनका अधिगम का प्रत्ययात्मक प्रतिमान (Conceptual Model) एक ज्ञान संसाधन प्रक्रिया (information processing) है जिसके अन्तर्गत मानव अधिगम प्रक्रियाएं कम्प्यूटर की संक्रियाओं के समान समझी जाती है । यद्यपि गने इस बात से भलीभांति अभिज्ञ (conscious) हैं कि शिक्षा के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष, जैसे अध्यापक अभिप्रेरणा, अभिवृत्तियों तथा मूल्यों का विकास, सौदर्यानूभूति आदि, मात्र कौशल ग्रहण से प्राप्त नही हो पाते, परन्तु वह विवेक अथवा अर्न्तदृष्टि जैसे सम्प्रत्ययों को अधिक महत्व प्रदान नही करते हैं । अत: शैक्षिक उद्देश्यों के

कथन में ऐसी क्रियाओं जैसे जानना, समझना, सौन्दर्यानुभूति, विकास आदि का उपयोग नहीं करते है । उनके अनुसार उद्देश्य कथन ऐसे हो जो व्यवहारगत अर्थ में (जिन का प्रेक्षण प्रदर्शन अथवा जांच हो सके) लिखे जा सकें ।

9.2 अधिगम का अर्थ

गनें के अनुसार अधिगम मानव प्रवृत्तियों, योग्यताओं में लाया गया वह परिवर्तन है जो अपेक्षाकृत स्थाई है तथा जिसका श्रेय मात्र विकास प्रक्रिया को नहीं जाता है । अधिगम इन्द्रियगोचर व्यवहार के रूप में प्रदर्शित होता है तथा वे परिस्थितियां, जिनके अन्तर्गत यह घटित होता है, भी दृश्य अथवा प्रेक्षणीय होती हैं । इस बात का पता कि अधिगम हुआ है अथवा नहीं इस बात से लगता है किसी व्यक्ति विशेष का व्यवहार किसी अधिगम अवस्थिति में आने से पूर्व कैसा था और अधिगम अभिक्रिया (Learning treatment) देने के पश्चात् वह कैसा व्यवहार प्रदर्शित करता है । इन के अतिरिक्त गने का मानना है कि अधिगम का अनुभाग व्यक्ति की परिवर्तित प्रवृत्ति, जिसे सामान्यत: अभिवृत्ति रूचि अथवा मूल्य कहते है से भी लगाया जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अधिगम व्यक्ति के निष्पादन में परिवर्तन सम्बन्धी क्षमता अथवा योग्यता का विकास है ।

परन्तु इतना ही पर्याप्त नही है । निष्पादन में हुआ परिवर्तन भी अधिगम ही है । गने द्वारा लिखित पुस्तक "The Conditions of Learning" में आठ प्रकार के विशेषणीय अधिगम अथवा निष्पादन परिवर्तन का विवेचन है, तथा इन आठों प्रकारों के अधिगम के अनुरूप अधिगम अवस्थायें बताई गई है । गने अधिगम प्रक्रिया में नैमेत्तिक (करणात्मक) अनुबन्ध (instrumental conditioning) की भूमिका को अधिक महत्व देते हैं, तथा क्लासिकल (पुरातन) अनुबन्धन को कम । जैसा कि ऊपर कहा गया है अधिगम एक ज्ञान संसाधन प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत यह प्रक्रिया उद्दीपक अवस्थिति (stimulus silnation) के बोध की अवस्था (stage of apprehending)से आरम्भ होती है, यह उपलब्धि अधिग्रहण (Aquisition) की अवस्था में पहुंचती है, उस के पश्चात् / संग्रहण/संचयन (Storage) होता है, और अन्त में पुन: प्राप्ति (retrieval) हो जाती है ।

किसी नयी योग्यता को प्राप्त करने के लिए उन अधीनस्थ अथवा आश्रित योग्यताओं को पहले से ग्रहण करने की आवश्यकता होती है, जो इस योग्यता से सम्बन्धित हैं । उदाहरण के लिए उच्चतम श्रेणी के नियमों को सीखने के लिए उनसे सम्बद्ध सरल नियमों का संग्रहण आवश्यक है । अत: अधिगम में एक श्रेणी बद्धता अथवा अनुक्रम निहित है जिसे अधिगम अनुक्रम (Learning Hierarchy) की संज्ञा दी जाती है ।

9.3 मानव योग्यताएं - अधिगम के उत्पादों के रूप में

अधिगम के संदर्भ में गने महोदय मानव योग्यताओं को पांच मुख्य वर्गों में विभाजित करते है, जो अधिगम के उत्पाद है । ये योग्यताएं इस प्रकार है. शाब्दिक ज्ञान, बौद्धिक कौशल, संज्ञानात्मक व्यूह रचना अभिवृत्तियां, तथा मन: चालित (चालक) कौशल ।

- शाब्दिक ज्ञान के अन्तर्गत मात्र इतना ही आता है कि विद्यार्थी अपेक्षित अथवा प्राप्त ज्ञान को कथन बद्ध कर सके, दूसरे को कह कर अथवा लिख कर बता सके जो भी उस ने सीखा है । मूर (1982) इस प्रकार के ज्ञान को "Knowing that" प्रकार के कथनी ज्ञान की संज्ञा देते है । इस हम यहां पर कथनात्मक/ज्ञान भी कह सकते । अत: शाब्दिक ज्ञान वह है जो कथन रूप में व्यक्त किया जा सके ।
- इसके विपरीत एक ऐसा ज्ञान भी होता है जो हम प्राप्त तो करते है परन्तु उसे कथनों में अभिव्यक्त नही किया जा सकता । मूर महोदय ऐसे ज्ञान को "Know that" की संज्ञा देते है परन्तु गने महोदय इस ज्ञान को भी एक मानव योग्यता का नाम देते है जो अधिगम का ही उत्पाद है । ऐसे ज्ञान को गने बौद्धिक कौशल (intellection skills) की संज्ञा देते है । उदाहरण के लिए हम बच्चे को कहें कि वह 2,5,9,6 अंकों को किसी भी रूप में मिला कर अधिक संस्थाएं बनाएं । जिस बच्चे में इस प्रकार का बौद्धिक कौशल विकसित को चुका है वह एक क्रम बद्धता का सहारा लेकर अधिकाधिक संख्याएं बना सकेगा, दूसरे बच्चे hit और trial के आधार पर कुछ संख्याएं बना सकेगें । यह वह बौद्धिक योग्यता है जिसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता परन्तु इसकी सहायता से कठिन समस्याओं का समाधान सम्भव है ।
- तीसरी मानव योग्यता है संज्ञानात्मक व्यूह रचना (Cognitive Strategies) वास्तव में यह एक प्रकार का (उच्च कोटि का) बौद्धिक कौशल ही है जो किसी भी अनुभव का सम्बन्ध बच्चे के व्यवहार से होता है न कि विषय वस्तु से जो वह सीख रहा है । वास्तव में ये वो रचनाएं होती है जिन का उपयोग कोई विद्यार्थी अपनी ध्यान देने, सीखने, स्मरण करने अथवा चिन्तन करने सम्बन्धी प्रक्रियाओं को निर्देशित करते समय करता है ।
- अभिवृत्ति (attitudes): ये वे अर्जित अवस्थाएं है जो व्यक्ति द्वारा की जा रही किसी क्रिया को किन्हीं वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा घटनाओं के प्रति प्रभावित करती है । यह एक प्रकार का किसी भी चीज के प्रति अथवा उसके विरूद्ध झुकाव है जिसमें व्यक्ति के तीनों क्षेत्र-संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मन: चालित-आवेष्टित अथवा सम्मिलित है ।
- चालक कौशल (motion skills) : मूर द्वारा दिए गए सम्प्रत्यय (Knowing how) का एक पक्ष जहां बोद्धिक कौशल है तो दूसरा पक्ष चालक कौशल । उसी भ्रान्ति इस कौशल का भी उपयोग होता है कथनाभिव्यक्ति नहीं । इस प्रकार कौशल तैरने में, कार चलाने, अथवा पियानों बजाने आदि में देखा जा सकता है ।

9.4 अधिगम के प्ररूप

किसी भी शिक्षण कार्य को आरम्भ करने से पूर्व अध्यापक को इस बात के लिए आश्वस्त हो जाना चाहिए कि विद्यार्थियों के पास किसी अधिगम कार्य-कलाप को सीखने के लिए पूर्वापेक्षित योग्यताएं है । उसके पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि वह प्रभावी अधिगम के लिए इन योग्यताओं के उपयोग को प्रोत्साहित करें । तीसरे, वह उपयुक्त बाह्य परिस्थितियों को व्यवस्था करे । गने महोदय एक अधिगम अनुक्रम के रूप में आठ अधिगम अवस्थाओं की व्याख्या करते है जिन्हें अधिगम के प्ररूप की संज्ञा दी गई है । अधिगम में ये प्ररूप निम्नलिखित है :

(1) संकेतक अधिगम

(2) उद्दीपक-अनुक्रिया अधिगम

(3) शाब्दिक संयोजन (साहचर्य)

(4) श्रृंखला अधिगम

(5) विभेदन अथवा विवेकी अधिगम

(6) सम्प्रत्यय अधिगम

(7) नियम अधिगम

(8) समस्या समाधान

उपर्युक्त में से प्रत्येक प्रकार का अधिगम व्यक्ति की एक भिन्न अवस्था में आरम्भ होता है तथा निष्पादन की एक अन्य योग्यता की प्राप्ति में परिणत हो जाता है । जैसा कि पहले परिभाषित किया जा चुका है अधिगम मानव योग्यता में आया वह परिवर्तन है जिसका श्रेय मात्र विकास प्रक्रिया (परिपक्वन) को नहीं जाता है ।

गने महोदय अधिगम के इन प्रारूपों को अधिगम अवस्थाओं की संज्ञा भी देते है । इस का कारण है कि किसी भी उच्चतर अधिगम की प्राप्ति के लिए निम्नतर अधिगम एक पूर्वशिक्षा का कार्य करता है । उदाहरण के लिए अधिगम प्ररूप संख्या 3 व 4 के लिए प्ररूप संख्या 2 पूर्वापेक्षित हैं । तथा प्ररूप 5 के लिए 4,3 व 2 पूर्वपेक्षाएं होती है । प्ररूप 1 यथोचित रूप में स्वयं में महत्वपूर्ण है और यह अन्य सात प्ररूपो से किसी के लिए पूर्वपेक्षा नही बनता है । इस प्रकार अति सरल अधिगम से लेकर सर्वाधिक जटिल अधिगम की यह प्रक्रिया एक अनुक्रम में पाई जाती है जिसे गने ने अधिगम -अनुक्रम कहा । अधिगम अनुक्रम सम्प्रलय का अर्थ है कि सभी आठों प्रकार के अधिगम अनुबन्धन प्रक्रिया के S+R साहचर्य मॉडल में परिवर्त्य (Changeable) होते है । अधिगम प्ररूप 1 व 2 सम्पूर्ण अधिगम निकाय के लिए व कार्य करते है जो भवन निर्माण में शिलाखण्ड ।

संकेतक अधिगम (प्ररूप-1) वास्तव में पवलॉव तथा वाट्सन की के क्लसिकल (पुरातन) अनुबन्धन अनुक्रिया का दूसरा नाम हे । यह एक प्रकार का उद्दीपक-प्रतिस्थापन है । ऐसे अनुबन्धन में कोई जीव किसी नए उद्दीपक के प्रति उसी प्रकार की अनुक्रिया करने लगता है जैसी कि वह प्राकृतिक पुराने अप्रतिबन्धित उद्दीपक के साथ करता था । यह नया उद्दीपक "अनुबन्धित-उद्दीपक" बन जाता है, तथा वह अनुक्रिया जो दोनों प्रकार के उद्दीपको के साथ की

जाती है "अनुबन्धित-अनुक्रिया कहलाती है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि वह अनुक्रिया जो नए अनुबन्धित अनुक्रिया कहलाती है । पावलॉव के प्रयोग में घण्टी की ध्वनि से पुरानी अप्रतिबन्धित अनुक्रिया (लार) उत्पन्न होने लगती है । अत: लारास्त्र (Salivation) प्रतिबन्धित अनुक्रिया बन जाती है ।

उद्दीपक-अनुक्रिया अधिगम (प्ररूप-2) यह अधिगम थार्नडाइक का तृतीया अथवा नैमित्तक (Instrumental Conditioning) है । इसे अनुक्रिया-परिष्करण (संशोधन) प्रक्रिया भी कहते है । इसके द्वारा विद्यार्थी किसी पृथक (विभेदकारी) उद्दीपक के प्रति एक सही, यथातथ्य अनुक्रिया करने लगता है । वास्तव में यह अधिगम सही और गलत सही उद्दीपकों के पहचानने या विभेदीकरण का मामला, उन उद्दीपको के विभेदीकरण का जिन के फलस्वरूप पुरस्कार की प्राप्ति होती है और उनका जिनके फलस्वरूप ऐसा नहीं होता । इस प्रकार के अनुबन्ध तन में जीव पहले कोई अनुक्रिया करता है । उद्दीपक के प्रति की गई यह अनुक्रिया करता है । उद्दीपक के प्रति की गई यह अनुक्रिया स्वयं के प्रबलन में भी सहायक होती है । अनुक्रिया के पश्चात् आए प्रबलनकारी उद्दीपन से अनुक्रिया की प्रतिपुष्टि (Feed back) होती है । उदाहरण के लिए एक कुत्ते को उस समय भोजन दिया जाएगा जब वह विशेष प्रकार से बोलेगा । इस प्रकार दिए गए पुनर्बलन से कुत्ते के भविष्य में वैसा ही बोलने की सम्भावना बढ़ जाती है ।

व्यवहारात्मक श्रृंखला दो प्रकार की होती है - चालक श्रृंखला प्ररूप -4 अथवा शाब्दिक सहचार्य (प्ररूप-3) श्रृंखला से अभिप्राय: है किसी अनुक्रिया में अलग S-R संयोजन यह संयोजन शाब्दिक भी हो सकता है तथा चालक भी । शाब्दिक साहचर्य, शाब्दिक श्रृंखलाओं का अधिगम है । इस की परिस्थियां श्रृंखला से मिलती जुलती है । कोई श्रृंखला जब तक नहीं सीखी जा सकती जब तक व्यक्ति अलग-अलग Ss-Rs साहचर्यो को पूरा करने की क्षमता का विकास नही कर लेता है । इस संदर्भ में गने महोदय का कहना है कि किसी अनुक्रम की पुनरावृत्ति साहचर्य (संयोजन) को सुदृढ़ बनाने में सहायक होती है । उनका यह भी कहना है कि अन्तिम संतुष्टि का होना श्रृंखला को स्थिर करने के लिए अनिवार्य है ।

विवेकी अथवा विभेदीकरण अधिगम (प्ररूप-5) वह अधिगम प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति भिन्न-भिन्न उद्दीपकों के प्रति उन के अनुकूल अलग-अलग अनुक्रिया करना सीख जाता है, ऐसे उद्दीपको के प्रति जो भौतिक रूप से एक जैसे प्रतीत होते हो परन्तु उनमें सूक्ष्म भेद हो । विवेकी अधिगम प्राप्त होने पर पृथक पृथक उद्दीपक तथा अनुक्रियाएं एक दूसरे से सहज की गोचर अथवा विशेषणीय हो जाते है और उन विभिन्न उद्दीपकों के प्रति जो देखने में एक जैसे लगते हो व्यक्ति भिन्न-भिन्न अनुक्रियाएं करने में सक्षम हो जाता है । उदाहरण के लिए, एक बच्चा (शिशु) वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के लिए सुस्पष्ट व विशिष्ट उत्तर (अनुक्रिया) देने लग जाता है ।

गने के अनुसार विद्यालयों में अधिकांश शिक्षण कार्य सम्प्रत्ययों के उपयोग (प्ररूप- 6), विधान या नियम (प्ररूप- 7) तथा समस्या समाधान (प्ररूप- 8) से सम्बन्धित होता है । सम्प्रत्यय अधिगम में व्यक्ति उद्दीपको के किसी वर्ग के प्रति समान अनुक्रिया करने लगता है,

चाहे ऐसे उद्दीपक भौतिक रंग रूप की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न भी क्यों न हो । सम्प्रत्यय अधिगम विभेदन अधिगम पर आश्रित होता है ।

विधान (नियम) अधिगम (प्ररूप- 7) दो या अधिक सम्प्रत्ययों में संयोग सा सम्बन्ध स्थापित करने से होता है । यह व्यक्ति की आन्तरिक अवस्था है जो उसके व्यवहार को दिशा देती है । विधान अधिगम को महा समप्रत्यय (Supper Concept) भी कहा जाता है । विधान अधिगम के अन्तर्गत बच्चों द्वारा ऐसे विचारों का संयोजन किया जाता है जो आम तौर पर संयोजित नही होते । यह कहना कि "गोल वस्तुएं लुढ़कती है" एक विधान अधिगम का उदाहरण है । विधान वास्तव में एक अध्याहत अथवा अनुमानित (Inferred) योग्यता है ।

समस्या समाधान यह अधिगम विधान अधिगम की एक प्राकृतिक व्याप्ति (natural extension) है । इसमें खोज विधि का उपयोग सम्मिलित होता है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति किसी समस्या का समाधान स्वयं ढूढ़ता है । समस्या समाधान में व्यक्ति पहले सीखे गए नियमों का संयोग ढूढ़ता है जिस का उपयोग वह दी गई नूतन समस्या अर्वास्थति के समाधान के लिए उपयोग ले लाता है । पहले सीखे गए दो या अधिक नियमों का संयोजन सीख कर एक नई योग्यता प्राप्त कर लेता है जो एक उच्चतर कोटि का नियम बन जाता है । अत्यधिक उच्चतर कोटि के ऐसे नियम को अधिगम व्यूह रचना (Learning strategy) भी कहते है । इस प्रकार विधान अधिगम, अधिगम व्यूह रचना के लिए करण (instrumental) बन जाता है । यह चिन्तन के लिए सामग्री का कार्य करता है । जब हम कहते है कि अमुक व्यक्ति में चिन्तन करने की क्षमता है, उस का अर्थ है कि मूल रूप से वह पहले सीखे गए नियमों का संयोजन प्रभावी ढंग से उच्चतर कोटि के नियमों के निर्माण में कर सकता है ।इस प्रकार पुराने विधानों के संयोग से नए विधानों का निर्माण कर के वह उन समस्याओं का समाधान करता है जो उसके नूतन थी । इस प्रकार वह नई-नई योग्यता प्राप्त करना रहता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

(1) गने महोदय द्वारा दी गई अधिगम की परिभाषा लिखें

(2) गने द्वारा प्रतिपादित मनोविज्ञान ..... पर आधारित है ।

(फील्ड साइकोलोजी, व्यवहारवाद, उदारवादिता, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान)

(3) गने महोदय अथवा मनोविज्ञान ..... नामक पुस्तक में प्रतिपादित किया ।

(4) गने के अनुसार मानव योग्तओं को..... श्रेणियों में बांटा गया है जो निम्नलिखित है (i)..... (ii)..... (iii)..... (iv)…… (v)……

(5) संज्ञानात्मक व्यूह-रचना योग्यता का उदाहरण प्रस्तुत करें ।

(6) गने द्वारा अधिगम के आठों प्ररुपों को उपयुक्त अनुक्रम में लिखिए ।

(7) अधिगम अनुक्रम से क्या समझते है ? सोदाहरण स्पष्ट करें ।

(8) ऐसा कौनसा अधिगम प्ररुप है जो किसी अन्य प्ररुप पर आश्रित नही होता ।

9.5 अधिगम क्रिया के पक्ष

किसी अधिगम क्रिया के पक्ष से अभिप्राय है आन्तरिक और बाह्य घटनाओं के वे विशिष्ट श्रृंखलाएं जो उस अधिगम क्रिया का निर्माण करती है । घटित होने के क्रम की दृष्टि से ये पक्ष निम्नलिखित है: अभिप्रेरण (motivation), बोध होना (apprehending), संग्रहण (acquisition), अवधारण (retention) अनुस्मरण (recall), व्यापकीकरण (generating), निष्पादन (performance), और प्रतिपुष्टि (feedback) ।

अधिगम की गति अभिप्रेरणा मुख्यत: उद्दीपक अभिप्रेरण (incentive motivation) के रूप में होती है । व्यक्ति किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चेष्टा करता है तथा लक्ष्य प्राप्त होने पर उस का पुरस्कार अथवा प्रतिफल मिल जाता है । यह लक्ष्य व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार का लाभ पहुंचाता है । अत: लक्ष्य प्राप्ति द्वारा प्राप्त लाभ ही उस की अभिप्रेरण का स्त्रोत होता है । यहां पर उद्दीपक पुरस्कार की प्राप्ति या दण्ड से बचाव होता है । पुररकार को यहां पर व्यापक रूप में समझना चाहिए । यह मात्र भौतिक न हो कर मनोवैज्ञानिक भी हो सकता है । यदि किसी कार्य के करने में किसी व्यक्ति की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है अथवा उस की पहचान बनती है तो मनोवैज्ञानिक पुर२कार होगा । इस प्रकार की उद्दीपक अभिप्रेरणा मानव नैसर्गिक मनोवृत्ति को दर्शाती है । इस मनोवृत्ति के कारण व्यक्ति अपने वातावरण का उपयोग व उपभोग करता, उसे नियन्त्रित करता है हम जब बच्चों में प्रत्याशाएं उत्पन्न करते है कि ऐसा कार्य पूरा करोगे तो तुम्हें यह फल मिलेगा, यह उद्दीपक अभिप्रेरणा उत्पन्न करने का ही तरीका है ।

अधिगम का बोध पक्ष विद्यार्थी द्वारा किसी उद्दीपक वस्तु पर ध्यान देने तथा उसका प्रत्यक्षीकरण करने में निहित है । प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है उस वस्तु (उद्दीपक) का अन्य वस्तुओं में से पहचानना । यह (बोध) व्यक्ति का विभेदीकरण की योग्यता पर आधारित है ।

संग्रहण का अर्थ है मन में ज्ञान को इस प्रकार कूटबद्ध (coding) करना ताकि वह केन्द्रीय तान्त्रिक तंत्र (CNS) संचायित किया जा सके । कूट बद्ध करने का कार्य अल्प कालीन अथवा दीर्घ कालीन स्मृति द्वारा किया जाता है । इस प्रक्रिया मे कोई व्यक्ति किसी बात को एक ऐरने सरलीकृत रूप में स्मृति में डालता है ताकि उसका उपयोग तुरन्त किया जा सके ।

जब किसी व्यक्ति को किसी सीखी हुई सामग्री का प्रदर्शन करने अथवा उसके उपयोग की आवश्यकता पड़ती है तो उसे पुन: प्राप्त करना चाहता है और संग्रहित सामग्री को स्मृति पटल पर लाने का प्रयत्न करता है । इस प्रक्रिया को "अनुस्मरण" कहा जाता है ।

व्यापकीरण को अधिगम का अन्तरण भी कहा जाता है । इससे अभिप्राय: है कि किसी विचार को जिसे सीख कर उस का संग्रहण किया गया हो, अनुस्मृत किया जाए तथा किसी नई अवस्थिति में प्रयोग में लाया जाए । व्यापकीकरण दो प्रकार का हो सकता है । पार्शवीय (Lateral) अथवा अनुलम्ब (Vertical) । पार्शवीय अन्तरण व्यापाकीकरण का वह रूप है जिसका विस्तार लगभग एक जैसी जटिलता स्तरों के व्यापक समूह पर हो जाता है । जैसे मनोविज्ञान के कुछ सिद्धान्तो के कुछ सिद्धान्तों का उपयोग कुछ शैक्षिक समस्याओं के समाधान

के लिए किया जाता है । अथवा भौतिकी के कुछ सिद्धान्तों का प्रयोग रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान अथवा सामाजिक विज्ञान की कुछ समस्याओं के समाधान के लिए किया जाए ।

अनुलम्ब अन्तरण का अर्थ है जटिलता के एक स्तर पर सीखी गई योग्यताओं का उपयोग अन्य उच्चतर स्तर पर सीखी जाने वाली योग्यताओं के अधिगम के लिए करना । जैसे छोटे बालक अंकगणित में गुणा करने की योग्यता को पहले सीखी गई जमा करने की योग्यता के आधार पर ही प्राप्त कर सकते है ।

गने के शब्दों में निष्पादन का अर्थ है दृश्य व्यवहार । व्यक्ति द्वारा प्राप्त किसी अधिगम योग्यता का उपयोग किसी समस्या समाधान में अन्तरित हो जाता है तो अन्य व्यक्ति भी इस व्यवहार-परिवर्तन को देख सकते है अथवा उस की जांच हो सकती है या प्रदर्शन । यह इन्द्रियगोचर व्यवहार -परिवर्तन निष्पादन कहलाएगा ।

प्रतिपुष्ठि जो अधिगम का अन्तिम पक्ष है प्रबलन की प्रक्रिया द्वारा घटित होता है । प्रतिपुष्टि स्वचालित (automatic) व प्रबन्धित (contrived) दो प्रकार की हो सकती है । प्रतिपुष्टि स्वचालित कहलाएगी यदि यह स्वयं निष्पादन से ही प्राप्य हो । यह प्रबन्धित कहलाएगी उचित उतर बहार प्रदर्शन की अवस्था में अध्यापक बच्चे से कहे: "बिल्कुल ठीक" "ठीक" "ही" बहुत अच्छे इत्यादि ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 अधिगम क्रिया के कौन-कौन से पक्ष होते है ? केवल नाम लिखे ।

2 उद्दीपक -अभिप्रेरण से क्या अभिप्राय है? उदाहरण दे कर स्पष्ट करे ।

3 अभिप्रेरणा का स्त्रोत भौतिक लाभ..... भी होता है ।

4 ज्ञान को 'कूट बद्ध' करने से क्या अभिप्राय: है ।

9.6 अध्यापन (शिक्षण) क्या है?

यद्यपि हम सब बहुत वर्षों तक विद्यार्थी रहे है तथापि हम अध्यापन की कोई सुनिश्चित धारणा विकसित नही कर पाए । कारण यह है कि हम यह मानते रहे है कि अध्यापन वह कार्य है जो अध्यापक करता है । हमने इस बात की और ध्यान ही नही दिया कि शिक्षण की कुछ अवस्थाएं होती है और इसके कुछ प्रभाव भी । ज्ञानार्जन अथवा अधिगम के बहुत सारे स्त्रोतों में से शिक्षण एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है । इसके अन्य स्त्रोत है परम्परा तथा अनुभव । इस के अतिरिक्त हमें यह भी नही भूलना चाहिए कि शिक्षण कोई एकमात्र धारणा या परिभाषा नही होती । गेज (1963) के अनुसार शिक्षण को समझने के लिए हमें तीन मूल प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए: (1) अध्यापक कैसे पेश आते है? (2) जैसे भी वे पेश आते है ऐसा वे किन कारणों से आते है? (3) उनके इस व्यवहार के क्या प्रभाव पड़ते है? शिक्षण की धारणा के लिए हमें इसमें सम्मिलित व्यापक कार्य-व्यापार समझने चाहिए । प्रथम बात यह है कि शिक्षण एक ऐसा सामान्य (व्यापक) सम्प्रत्यय होना चाहिए जो सभी अध्यापकों पर, सभी विद्यार्थियों पर और सभी स्थितियों विद्यालय के अन्दर और बाहर जहां भी शिक्षण सम्भव हो, लागू हो सके । दूसरे, किसी भी शिक्षण सिद्धान्त में अध्यापकों का व्यवहार (जो शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया

में कारण रूप है) तथा विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अधिगम (जो कार्य रूप है) विचार का विषय है । तीसरे, शिक्षण उन साधनों अथवा परिस्थितियों को स्पष्ट करे, उन्हे बताए तथा उन्हें संचालित करे जिनके द्वारा शिक्षकों का व्यवहार विद्यार्थियों के अधिगम को निर्दिष्ट तथा प्रभावित करता है ।

शिक्षण सम्प्रत्यय सम्बन्ध इन आयामों के अन्तर्गत हम यह बात भलीभांति समझ सकते है, कि शिक्षण सम्प्रत्यय किसी एकांकी सिद्धान्त की व्याख्या नही करता । क्यों कि इसके अन्तर्गत बहुत सारी प्रक्रियाएं, बहुत प्रकार के व्यवहार तथा बहुत प्रकार के कार्यकलाप आते है ।

9.6.1 गने की अध्यापन अवधारणा

गने महोदय शिक्षक को अनुदेशन का अभिकल्पक व प्रबन्धक तथा विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अधिगम का मूल्यांकन कर्ता मानते है । (A teacher is designer of and manager of instructions and evaluation of students learning) । गने का मत है कि अनुदेशनात्मक प्रक्रियाओं अभिकल्पन सुव्यवस्थित ढंग से हो जिसमें अधिगम उत्पादों को मूल योग्यताओं के रूप में समझा जाए । इन मूल योग्यताओं में ज्ञान, बौद्धिक कौशल संज्ञानात्मक व्यूह-रचनाएं अभिवृत्तियों तथा चालक कौशल सम्मिलित होते है । इस के साथ शिक्षक को चाहिए कि वह उन विभिन्न अधिगम प्ररुपों तथा अधिगम अवस्थाओं को ध्यान में रखे जिन की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है ।

अधिगम उत्पाद तथा अधिगम परिस्थितियां अथवा अवस्थाएं सुनिश्चित करने के उपरान्त व्यवहारगत उद्देश्यों का निर्माण किया जाएं । वास्तव में ये उद्देश्य ही अनुदेशन के लिए पथदर्शक कार्य करेंगे । इसके पश्चात् अपेक्षित अधिगम अवस्थाओं के अनुरूप शिक्षण दिया जाए । अन्त में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त योग्यता अथवा उपलब्धि की जांच की जाए । यह जांच वास्तव में उन सूची बद्ध उद्देश्यों की है जो पूर्व निर्धारित करके चले है ।

इस प्रकार शिक्षण का अर्थ है उन उपयुक्त अधिगम अवस्थाओं की व्यवस्था करना जो भौतिक अथवा इन्द्रियगोचर हो । अनुदेशन के प्रबन्धक के रूप में यह अध्यापक का कार्य है कि वह विषय सामग्री के अनुदेशन की योजना बनाए अधिगम अवस्थाओं की व्यवस्था करे, चयन करे तथा उनकी देख रेख करें और इस प्रकार अपेक्षित अधिगम प्रक्रियाओं को सक्रिय बनाए तथा प्रेरित करे । ये अधिगम प्रक्रियाएं अधिगम-अनुक्रम (learning hierarchies) है, जिन्हें गने महोदय अधिगम की आन्तरिक अवस्थाओं का नाम भी देते है । और चूंकि ये आन्तरिक प्रक्रियाएं वातावरणीय उद्दीपक के रूप में बाह्य विषयों से प्रभावित हो सकती है, अत: अध्यापक को चाहिए कि वह इन बाह्य विषयों को योजना बद्ध करें तथा उन का ठीक प्रकार से संचालन करता रहे । वास्तव में अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों के चिन्तन को उत्तेजित करना व दिशा देना है न कि उन की और से स्वयं चिन्तन करना या समस्या को स्वयं हल करना ।

इस विषय में गने महोदय अनुदेशन सम्बन्धी चार महत्वपूर्ण चार महत्वपूर्ण घटको का विवेचन करते है जो अध्यापक के पास उपलब्ध है और जो विद्यार्थियों में अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते है । ये चार घटक है।

(1) पहले प्राप्त की जा चुकी अधिगम योग्यताओं का अनुस्मरण तथा उत्प्रेरणा ।

(2) उपयुक्त विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण

(3) अपेक्षित मनोभावों का सक्रियण

(4) प्रतिपुष्टि का प्रावधान

(1) पहले प्राप्त की जा चुकी अधिगम योग्यताओं का अनुस्मरण व उत्प्रेरण -

उच्चतर कोटि के कौशलों को आरम्भ करने से पूर्व अध्यापक को इस बात के लिए आश्वस्त हो जाना चाहिए कि अधीनस्थ कौशल जो इस संदर्भ विशेष के लिए उपयुक्त है, प्राप्त किए जा चुके है । अत: पहले मालूम करे कि बच्चा पूर्व ज्ञान के रूप में इस विषय में क्या जानता है । परम्परागत शिक्षण में इस पूर्व-ज्ञान परीक्षण भी कहा जात है । कुछ अन्य विचारक इस पक्ष को शिक्षण का पूर्ण क्रियात्मक (Practicing) पक्ष भी कहते है । यह जानने के पश्चात् कि बच्चे का ज्ञान इस विषय पर कितना है, उपयुक्त बिन्दु से अनुदेशन आरम्भ करे । स्मरण रहे कि बच्चा पहले सरल चीजें सीखता है और तद्न्तर अधिक जटिल । यही क्रम हमें अपने अनुदेशन में भी प्रयुक्त करना चाहिए ।

बच्चे के पूर्व ज्ञान की जांच के लिए अध्यापक उसे कोई ऐसी सरल समस्या दे सकता है जिसके समाधान के लिए पूर्वापेक्षित ज्ञान अथवा अधिगम योग्यता के अनुप्रयोग की आवाश्यकता पड़ती हो । अथवा एक साधारण अनुस्मारक भी दे सकता है, जैसे कहें कि आप पहले सीख चुके है कि साधारण ब्याज क्या होता है और इसे किस सूत्र द्वारा निकाला जाता है, जानते हो न?

(2) उपयुक्त विषय सामग्री का प्रस्तुतीकरण -

पूर्व प्राप्त कौशलों का अनुस्मरण कराने के पश्चात् अध्यापक हो चाहिए कि वह उपयुक्त वातावरणीय उद्दीपको का उपयोग करें ताकि अधिगम प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष सक्रिय हो जाए । ये उद्दीपको (विषय वस्तु) इसी अवस्था में अपना उपयुक्त प्रभाव दिखा सकते है जबकि इनके साथ साथ विद्यार्थियों में अभिप्रेरणा सम्बन्धी अनुकूल मनोदशा अथवा तत्परता हो ।

(3) मनोदशा सक्रियण-

व्यक्ति की मनोदशा अथवा अधिगम तत्परता उसी अवस्था में सम्भव होती है जबकि अधिगम सम्बन्धी पूर्वपेक्षाएं विद्यमान हों । पूर्वपेक्षाओं में ध्यान अभिप्रेरणा तथा विकासात्मक क्षमता सम्मिलित होती है । ध्यानाकर्षण अथवा मनोयोग के लिए अध्यापक प्रबलनात्मक (reinforcing) परिस्थितियों का संचालन कर सकता है ।

परन्तु इसके लिए विद्यार्थियों को विद्यालय में उपस्थित रहने के लिए, सीखने के लिए और अधिगम- अध्यापन प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए अभिप्रेरित करने की आवश्यकता है । हम जानते है कि अभिप्रेरक दो प्रकार के होते है जिनकी अधिगम के लिए विशेष प्रासंगिका है। 1. सामाजिक अभिप्रेरक (social motives), जिस में व्यक्ति की समाज से सम्बद्धता, सामाजिक समर्थन तथा आत्म प्रतिष्ठा सम्मिलित है 2. वैयक्तिक अभिप्रेरक (personal motives), जिनमें कार्य कुशलता की आवश्यकता और उपलब्धि सम्मिलित है ।

वैयक्तिक अभिप्रेरको की वृद्धि उन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति पर निर्भर करती है जो दिए गए कार्य के लिए निश्चित किए थे ।

विकासात्मक क्षमता (developmental readiness) उस अवस्था में पूर्ण हुई कहीं जा सकती है जब विद्यार्थी उन अधीनस्थ कौशलों अथवा अधिगम प्रारूपों में निपुणता प्राप्त कर चुका होता है जो इस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है । सरल रूप में हम कह सकते है कि विकासात्मक क्षमता (तत्परता) इन बात से निश्चित की जाती है कि वह (विद्यार्थी) किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पहले से क्या जानता है तथा कितना और कैसा सीखना है ।

(4) प्रतिपुष्टि -

यदि किसी अधिगम कार्य को पूरा करना है तो उस के लिए प्रतिपुष्टि का प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है । प्राप्त पुष्टि वह कोई भी साधन (चीज) हो सकता है जो प्रक्रिया के दौरान हुए अधिगम को प्रभावित करता हो । इस के लिए आवश्यक है कि अध्यापक, जहां तक सम्भव हो उन को निष्पादन सम्बन्धी सही सूचना दे और उचित प्रोत्साहन भी ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

(1) शिक्षण एक एकाकी व सुनिश्चित सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है ।..... हां / नही

(2) गने महोदय शिक्षक को किस भान्ति परिभाषित करते हैं?

(3) शिक्षक की आन्तरिक अवस्थाओं से क्या अभिप्राय: है?

(4) अनुदेशन के चार महत्वपूर्ण घटको के नाम लिखें?

(5) मनोदशा सक्रियण के लिए क्या चीज अनिवार्य हैं?

(6) सामाजिक अभिप्रेरक और वैयक्तिक अभिप्रेरक के कम से कम एक एक उदाहरण दें।

(7) बौद्धिक कौशल को समझाने के लिए कोई उदाहरण दे ।

9.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. De Cecco, John P. and Crawford, Willian. The Psychology of Learning and Instruction, New Delhi: Prentric Hall of India.1977.
2. Gagne Robert. Conditions of Learning, New York: Holt,Rinehart & Wington Inc. 1965)
3. शुक्ल आर.एस., डागर, बी.एस. तथा शुक्ल अनिल शिक्षण तथा अधिगम के आधार भूत तत्व। कोटा: शिक्षक प्रकाशन, 1992.
4. Ausubel, David P., Educational Psycholagy: A Cognitive view, New York: Holt, Rinehart & Winstom, 1968.
5. De Cecco, John P., and Craw ford, Willian (1977).The Psychology of learning and Instruction, New Delhi. Prentiice Hall of Indian, 1997.

6. Fitts, Paul M., Factors in Complex Skill Learning, “in Train Re search and Education and Education. Ed A-W.Melton.New York: Academic Press Inc., 1964.
7. Gargne, Robert M; Conditions of Learning, New York: Holt, Rinehart & Winston, Inc., 1965.
8. Kausler, Donald, Readings in Verbal Learning, New York: John Wilky and Sons Inc., 1966.
9. Underwood, Benton J.,”Verbal Learning in the the Educational.” Harvard Educational Review (1959).

इकाई 10

व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास

(Personality Development)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 व्यक्तित्व अर्थ एवं परिभाषा

10.3 व्यक्तित्व प्रकृत्ति एवं विशेषताएं

10.4 व्यक्तित्व का विकास

10.5 व्यक्तित्व निर्धारकों का वर्गीकरण

10.5.1 जैविक निर्धारक

10.5.2 मनोवैज्ञानिक निर्धारक

10.5.3 सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्धारक

10.6 व्यक्तित्व की अध्ययन विधियां

10.6.1 मनोविश्लेषण विधि

10.6.2 शीलगुण विधि

10.6.3 सामाजिक शीलगुण

10.6.4 समन्वय शीलगुण

10.7 व्यक्तित्व प्रकार एवं विधि

10.7.1 भारतीय दृष्टिकोण

10.7.2 शरीर रचना का दृष्टिकोण

10.7.3 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

10.7.4 अन्य दृष्टिकोणों से

10.8 मूल प्रवृत्ति विधि

10.9 व्यक्तित्व - एकीकरण या समन्वय (संगठन)

10.10 स्वपरख प्रश्न

10.11 सारांश

10.12 मूल्यांकन प्रश्न

10.13 संदर्भ ग्रंथ

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- व्यक्तित्व के अर्थ को समझ सकेगें ।

- व्यक्तित्व में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दी गई परिभाषाओं के महत्व को आत्मसात कर सकेंगें ।
- व्यक्तित्व की प्रकृति एवं विशेषताओं को समझ सकेगें ।
- व्यक्तित्व के विकास में उन निर्धारकों से परिचित होगें जिनके द्वारा व्यक्तित्व का निर्माण होता है ।
- व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए प्रयोग की जाने वाली विधियों को जान सकेंगे ।
- व्यक्तित्व के विकास में भारतीय दृष्टिकोण, शरीर रचना का दृष्टिकोण, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण एवं अन्य दृष्टिकोणों को समझ सकेगें ।
- व्यक्तित्व में संगठनात्मक स्वरूप को समझ कर आप उसकी व्याख्या कर सकेगें ।

10.1 प्रस्तावना

शिक्षा जगत में "व्यक्तित्व" शब्द अपना एक विशेष स्थान रखता है । शिक्षा का मुख्य प्रयोजन बालक का सर्वांगीण विकास करना है अत: भावी अध्यापकों को व्यक्तित्व के अर्थ प्रकृति एवं विकास से परिचित होना आवश्यक है ।

शिक्षाविद् मनोविज्ञान में व्यक्तित्व को अत्यधिक महत्व देते हैं, क्योंकि व्यक्तित्व के अध्ययन द्वारा हम समग्र व्यक्ति का अध्ययन कर सकते है । मनुष्य की कोई भी शारीरिक व मानसिक क्रिया व्यक्तित्व से पृथक नहीं है । व्यक्तित्व वह समग्रता या योग्यता (Totality) है जिसमें व्यक्तित्व के सम्पूर्ण बाह्य व आन्तरिक गुणों, अवगुणों का पता चलता है । व्यक्तित्व में वे सभी मानसिक क्रियायें सम्मिलित है जो अपने गतिशील संगठन से व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती हैं।

व्यक्तित्व के अर्थ व स्वरूप को जानने से पहले हमें 'व्यक्तित्व' शब्द की विभिन्न धारणाओं से परिचित होना पड़ेगा -

(अ) व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक धारणाऐं हैं । बोलचाल भी भाषा में व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग - शारीरिक बनावट और सौन्दर्य के लिये किया जाता है । अक्सर सुनते हैं कि उस व्यक्ति का व्यक्तित्व सुन्दर है आकर्षक है, प्रभावशाली है । कुछ लोग व्यक्ति और व्यक्तित्व को पर्यायवाची मानते हैं । कुछ व्यक्तित्व में अनेक गुणों एवं विशेषताओं का संग्रह मानते है विभिन्न धारणाओं के कारण व्यक्तित्व को आजतक किसी निश्चित अर्थ से सम्बन्ध नहीं किया जा सका है और न किसी निश्चित सीमा में बांधा जा सका है, साधारणत: यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्तित्व काफी है, जटिल है एवं व्याख्या से परे हैं ।

(ब) यदि हम शब्द की दृष्टि से देखें तो व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी भाषा के Personality शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है । व्यक्तित्व शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के शब्द परसोना (Persona) से हुई है - जिसका शाब्दिक अर्थ होता है मुखौटा या आवरण (Mask) - आवरण, या मुखौटा से तात्पर्य उन चेहरों से होता है जिन्हें पहन कर रामलीला में रामलीला के पात्र बंदर, भालू राक्षस आदि बन जाया करते हैं - यूनान, में नाटक करते समय अभिनेता ऐसे ही आवरण या मुखौटा पहन लिया करते थे और उसे

परसोना कहा जाता था । धीरे-धीरे परसोना का रूप बदले-बदलते वह 'पर्सनल्टी' बन गया । आज भी इतने अन्तराल के बाद सामान्य लोग इसे इसी रूप में समझते हैं । लेकिन यह व्यक्तित्व को जानने का संकुचित अर्थ है - किसी के गठीले बदन, चमकते चेहरे को देखकर हम कह उठते हैं कि - देखा उसका व्यक्तित्व कितना आकर्षक, रोबीला है और दूसरी तरफ सूखी टांगे, चिपके गाल निस्तेज चेहरा आदि को देखकर उसकी उपेक्षा या तिरस्कार करते हैं । ऊपर अथवा बाह्य गुणों को देखकर, व्यक्तित्व का अनुमान लगाना गलत है । हमें व्यक्तित्व के बाह्य गुणीं को ही देखकर संतुष्ट नहीं होना चाहिए बल्कि व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष को भी स्वीकारना है । व्यक्तित्व में व्यक्ति के व्यवहार का समग्र रूप सामने आता है । अत: व्यवहार के बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों (Overt and Covert Behaviour) के अध्ययन को स्थान मिलना चाहिए - अब प्रश्न यह आता है कि व्यक्तित्व का फिर सही अर्थ और प्रकृति क्या है?

10.2 व्यक्तित्व अर्थ एवं परिभाषा

मनोवैज्ञानिक भाषा में व्यक्ति अपने आप में जो कुछ भी है वही उसका व्यक्तित्व है । व्यक्ति के पास शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से जो कुछ होता है वह सभी सम्मिलित होता है । थोड़े शब्दों में, "व्यक्तित्व वह सबकुछ है जो एक व्यक्ति के पास होता है ।" इस प्रकार निश्चित रूप में 'व्यक्ति' शब्द बाह्य रूप, आकृति, और व्यवहार से अधिक गूढ़ अर्थ धारण किये हुये हैं, जिसे निश्चित शब्दों में परिभाषित करना कठिन कार्य है फिर भी बहुत से मनोवैज्ञानिक ने अपने-अपने तरीके से इसे परिभाषा में बांधने का प्रयास किया है-

1. Moten Prince- ने व्यक्तित्व में वंशानुक्रम और वातावरण दोनों की भूमिका स्वीकार करते हुये परिभाषा दी है - "व्यक्तित्व व्यक्ति की सभी प्रकार की जन्मजात प्रवृत्ति, आवेगों, इच्छाओं, मूल प्रवृत्तियों और अनुभवों के द्वारा अर्जित बातों का योग है" ।
2. Allport-ने व्यक्तित्व की 49 विभिन्न परिभाषाओं की समीक्षा करने के बाद ऑलपोट ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये - "व्यक्तित्व व्यक्ति में निहित उन मनादैहिक व्यवस्थाओं का ग्रतिशील संगठन है जो कि वातावरण के साथ उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करती है ।"

   "Personality is the Dynamic organization within the individual of these psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment".
3. R.B.Cattell- -के अनुसार "व्यक्तित्व वह है जिसके द्वारा हम यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कोई व्यक्तित्व किसी परिस्थिति में क्या करेगा ।"

   Personality is that which primits a predication of what a person will do in a given situation.

4. Kurt Lewin- ने व्यक्तित्व के गत्यात्मक पहलू पर विचार करते हुये कर्ट लिविन ने अपनी पुस्तक "Dynamic Theory of Personality"' में कहा है कि - व्यक्ति व्यवस्थाओं का गत्यात्मक योग है ।

   "A Person is a dynamic totality of systems"

5. Gates and others- व्यक्तित्व से तात्पर्य है - "गुणों का प्रारूप है न कि कुछ विशेषताओं की सूची" ।

   "By Personality we refer to traits rather than to a mere list or collection of characteristic".

10.3 व्यक्तित्व की प्रकृति एवं विशेषताऐं

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर व्यक्तित्व के निम्न आयाम उभरते है -

1. व्यक्तित्व अपूर्व (Unique)और विशिष्ट (Specific) होता है । सब का व्यक्तित्व अलग-अलग ढंग का होता है । जुड़वा बच्चों में भी एक सा व्यवहार नहीं होता । हर व्यक्ति अपने ढंग से समायोजन करता है।
2. व्यक्तित्व में आत्मचेतना (Self-Consciousness) होती है ।
3. इसमें व्यवहार के तीनों पक्ष-ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक सम्मिलित होते हैं, - केवल यह चेतन स्तर तक ही सीमित नहीं बल्कि अर्द्धचेतन व अचेतन तक फैला है ।
4. विभिन्न गुणों के योग को व्यक्तित्व नहीं कह सकते । जब तक व्यक्ति के जैविक (Biological) सामाजिक (Social) अथवा वंशानुभव वातावरण सम्बन्धी पक्षों में पूरी तरह झांक नहीं लिया जाय तब तक उसके व्यक्तित्व के बारे में ठीक से विचार नहीं बनाया जा सकता ।
5. व्यक्तित्व जड़ नहीं, अपितु गतिशील और निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है ।
6. व्यक्तित्व वंशानुक्रम एवं वातावरण की ऊपज है ।
7. सीखना और अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता के कारण की व्यक्तित्व का निर्माण होता है ।

10.4 व्यक्तित्व का विकास

व्यक्तित्व निरन्तर निर्माण की क्रिया में रहता है (गैरीसन) व्यक्तित्व में उसका रंगरूप आकार, शारीरिक बनावट ढील-ढौल, शारीरिक अवयव - उनकी कार्य प्रणाली, बाह्य आन्तरिक व्यवहार, उसके द्वारा की गई ज्ञानात्मक, क्रियात्मक, भावात्मक, व्यवहार सम्बन्धी क्रियायें, उसकी चेतना अर्द्ध चेतना, अचेतन व्यवहार आदि जो इतने सारे गुणों को अपने व्यक्तित्व में लिये हुये होते हैं । वह किस एक दिन की घटना का परिणाम कहा जाता है, जिसकी शुरूआत मां-बाप के गभ में, गर्भादान से प्रारंभ हो जाता है । बालक क्रीमोसोम्स व जीन्स के माध्यम से व्यक्तित्व में सभी गुणों को धारण करता है एवं वातावरण द्वारा उसको सही आकार देकर वृद्धि विकास को प्रभावित करता है, तथा व्यवहार सम्बन्धी बातों को एक विशेष प्रकार के सांचे में

ढालने का प्रयत्न करता है, इस कार्य में जीन्स एवं बहुत से तत्व कारक एवं परिस्थितियों की भूमिका रहती है उन्हें की व्यक्तित्व विकास में सहायक तत्वों या कारकों की संज्ञा दी जाती है ।

व्यक्तित्व विकास में सहायक कारक बालक के वंशानुक्रम / वातावरण दोनों में सामान रूप से उपस्थित रहते है तथा किसी भी एक समय में व्यक्ति जो कुछ भी होता है वह अपने वंशक्रम एवं वातावरण की संयुक्त उपज के रूप में ही जाना जाता है ।

व्यक्ति को वातावरण की उपज ही माना जाता है । और यही दो शक्तियां व्यक्तित्व निर्धारण में सहायक होती है ।

10.5 व्यक्तित्व विकास में सहायक करकों का वर्गीकरण

व्यक्तित्व विकास के तत्व कारक तथा परिस्थितियों मुख्यरूप से दो प्रकार में वर्गीकरण किया सकता है-

मुख्य रूप से आन्तरिक व बाह्य रूपों में बांटा जाता है -

1. आन्तरिक निर्धारक तत्व - वे सभी बातें और कारण जो स्वयं व्यक्ति में निहित होते है और जिनके लिए स्वयं ही उत्तरदायी होता है - वे आन्तरिक निर्धारकों में आते है व्यक्ति की आन्तरिक रचना, गठन, लिंग, स्नायु, ग्रन्थियां आदि उसकी बुद्धि एवं मानसिक विकार रूचियां, आकांक्षा स्तर, इच्छा शक्ति दृष्टिकोण स्वभाव संवेगात्मक विकास कुशलता आदि आन्तरिक निर्धारक के अन्तर्गत आते हैं । व्यक्तित्व विकास के बाह्य निर्धारण, व्यक्ति के भीतर निहित न होकर व्यक्ति के वातावरण में निहित रहते हैं और इसी दृष्टि से इन्हें बाह्य कहा जाता है । मां के गर्भ में पालन पोषण के लिए मिलने वाली सुविधाएं एवं वातावरण के माध्यम से ही वातावरण की शक्तियों के रूप में बाह्य कारकों का खेल शुरू हो जाता है । इस तरह जन्म के बाद बालक को मिलने वाला भौतिक वातावरण-जलवायु वायु, जल, भोजन तथा अन्य प्रकार की भौतिक सुविधाएं एवं परिस्थितियों तथा परिवार, विद्यालय और समाज संस्थाओं आदि के रूप में उपलब्ध सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण को व्यक्तित्व निर्धारकों की संज्ञा दी जाती है ।
2. कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के मुख्य निर्धारकों को एकत्रित कर उन्हें मुख्यत: तीन भागों में वर्गीकृत किया है -

(A) जैविक निर्धारक

(B) मनोवैज्ञानिक निर्धारक

(C) सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्धारक

10.5.1 जैविक निर्धारक

1. वंशक्रम संबंधी प्रभाव

गर्भाधान के समय में मां और पिता के रज और वीर्य में उपस्थित जिन क्रोमोसोम्स तथा जीन्स का बालक को हस्तान्तरण होता है और उससे पैतृक एवं वंशक्रम सम्बन्धी जो गुण एवं विशेषताएं विरासत के रूप में बालक को प्राप्त होती हैं वे सभी व्यक्तित्व रूपी भवन के लिए ठोस बुनियाद का कार्य करती हैं । यह पूंजी है जिसे लेकर बालक अपना जीवन व्यापार शुरू

करता है । यह पूंजी जितनी अच्छी होगी व्यक्तित्व सम्बन्धी निर्माण कार्य में उतनी ही असफलता या सफलता मिलेगी । दूसरे शब्दों में उतनी ही कम या अधिक मेहनत व्यक्तित्व निर्माण में हमें करनी होगी जितनी अधिक या कम पूँजी बालक को विरासत के रूप में अपनी वंशक्रम धरोहर से प्राप्त होगी ।

2. स्नायु संस्थान

हमारा स्नायु संस्थान हमारे अपने व्यवहार को नियन्त्रित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । किस समय व्यक्ति कैसा व्यवहार करेगा, यह उसके अपने मस्तिष्क द्वारा लिये जाने वाले निर्णय के ऊपर ही निर्भर करता है । हमें अपनी ज्ञानेद्रियों के माध्यम से जो भी संवेदना (Sensation) होती है, वह स्नायु संस्थान द्वारा ही अर्थपूर्ण बनती है । हमारे कान सुनते हैं, परन्तु उन्होंने क्या सुना, यह मस्तिष्क ही बताता है । इसी तरह से जो भी गन्ध हमारी नासिका ग्रहण करती है, वह सुगन्ध है या दुर्गन्ध, इसका निर्णय मस्तिष्क ही लेता है । इस प्रकार से इन्द्रियों के माध्यम से रस, रंग-रूप, ग्रन्थ, ध्वनि और स्पर्श का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने मे स्नायु संस्थान हमारी पूरी सहायता करता है । बहुत कुछ सीमा तक हमारी सीखने की प्रक्रिया भी स्नायु संस्थान के सभी महत्वपूर्ण अवयवों का ठीक प्रकार विकसित होना तथा भली भांति कार्य करते रहना अत्यन्त आवश्यक है ।

3. प्रणालिका विहीन ग्रन्थियां

लार ग्रन्थियों की तरह कई ग्रन्थियां जो अपने द्वारा बनाये गये रसों को बारीक नलिकाओं या प्रणालियों के द्वारा बाहर निकलती है इन्हें Duct Glands कहलाती है । इसके विपरीत ऐसी ग्रन्थियां जिसमें उत्पन्न होने वाले रस किसी Duct (प्रणालिका) द्वारा बाहर की ओर नहीं बहती बल्कि ग्रन्थि से निकल कर सीधे एक में मिल जाती है वे प्रणालिका विहीन ग्रन्थियां कहलाती है । इनके द्वारा जिस रस का स्त्राव होता है उसे हारमोन (Harmone) कहा जाता है । ये ग्रन्थियां शरीर में अपन-अपने स्थान पर क्रियाशील रहती है । शरीर में ये ग्रन्थियां निश्चित स्थान में क्रियाशील रहती है, ग्रंथियां निम्न है -

(i) **चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid Gland)** - ये श्वास नली के सामने गर्दन के मूल स्थित होती है, यह थायरोक्सिन (Thyroid) नामक हारमान का निर्माण करती है । यह ग्रन्थि ऑक्सीजन प्रक्रिया को तेज करके भोजन को शक्ति के रूप में बदलने में सहायक होते है । इसमें समुचित स्त्राव से कोई विकार शरीर पर नहीं पड़ता कम स्त्राव से शरीर में दोष या शिथिलता आ जाती है । व्यक्ति आराम तलब व आलसी बन जाता है । मानसिक शक्तियां निष्क्रिय एवं स्मृति कमजोर हो जाती है । आवश्यकता से अधिक स्त्राव से व्यक्ति चिड़चड़े स्वभाव का हो जाता है ।

(ii) **उपचुल्लिका ग्रन्थियां (Parathyroid Gland)** - ये ग्रन्थियां चुल्लिका ग्रन्थियों के पीछे होती है । इनकी संख्या चार होती है । ये ग्रन्थियां शरीर में से उत्तेजक द्रव्यों को बाहर कर स्नायु, संस्थान को अधिक शांत और सहज बनाने में सहायक करती है, कम स्त्राव से मांस पेशियां बिना प्रयोजन उत्तेजना अनुभव करती है तथा अधिक स्त्राव से सक्रियता से शरीर शिथिल व निष्क्रिय हो जाता है।

(iii) **पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)** - ये मस्तिष्क के नीचे स्थित होती है । ये मटर के दाने के बराबर अंडाकार होनी है - इसे स्वामिनी ग्रन्थि भी कहते है । इनको दो भागों में बांटा जाता है - अगला व पिछला । अगला भाग को **Anterior Lobe** भी कहते है ये हड्डियों के विकास में बहुत सहयोग करती है । इस भाग में लगभग 6 प्रकार के हारमोन उत्पन्न होते है, इनकी कमी से शरीर का विकास ठीक तरह से नहीं होता आदमी बौना / नाटा हो जाता है । इनकी अत्यधिक मात्रा भी हानिकारक है । उससे शरीर के विभिन्न भागों में बिना किसी प्रभाव के अस्वाभाविक वृद्धि हो जाती है और मनुष्य बहुत कुरूप हो जाता है ।

पिछला भाग को **(Posterior Lobe)** यह उपयोगी हार्मोन्स उत्पन्न करता है । इनमें पिच्युट्रीन नामक हारमोन शरीर की जलधारण शक्ति और रक्तचाप पर नियन्त्रण रखता है । इसकी कमी होने से बहुमूत्रता का रोग हो जाता है । तथा रूधिर का दबाव भी कम हो जाता है ।

(iv) **उपवृक्क ग्रन्थियां (Adrenal Gland)** - ये संख्या में दो होती है । दोनों गुर्दों में से प्रत्येक को ये दोनों ग्रन्थियाँ अलग-अलग घेरे रहती है तथा दो अलग-अलग कोटिन (Cortin) तथा एड्रोनेलिन (Adenaline) नाम के हारमोन्स का निर्माण करती है । एड्रोनेलिन ग्रन्थि स्नायु संस्थान मांस पेशियां और यौन ग्रन्थि प्रणालियों पर प्रभाव डालती है । इन ग्रन्थियों को प्राण "रक्षा ग्रन्थियां" भी कहते है । क्योंकि इनकी थोड़ी सी भी शिथिलता हमारे शरीर को दुर्बल बनाती जाती है । इन ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है संकट के समय शरीर की रक्षा करना । उपवृक्क ग्रन्थियों की अति क्रियाशीलता व्यक्ति को बहुत अधिक क्रियाशील उत्तेजित और लड़ाकू प्रवृत्ति का बना देती है । समय से पहले ही यौन परिपक्वता भी इसी कारण आती है । इसी के कारण छोटी उम्र में लड़कों की दाढ़ी मुछे आ जाती है और लड़कियों में मासिक धर्म शुरू हो जाता है । इन ग्रन्थियों से आवश्यकता से अधिक विकसित होने पर कुछ स्त्रियां पुरुषों जैसी दिखाई देती है उनमें नारी जैसी सुलग कोमलता और सहनशीलता नहीं रहती ।

(अ) **यौन ग्रन्थियां (The Sex Gland or Gonads)** - यौन ग्रन्थियां जिन्हें गोनाड्स भी कहा जाता है, स्त्री और पुरुषों में भिन्न प्रकार की होती है । पुरुषों में यौन ग्रन्थियों की स्थिति अंडकोशों (Testes) में तथा स्त्रियों में अंडाशयों (Ovaries) में होती हैं । पुरुषों की यौन ग्रन्थियां एन्ड्रोजीन (Androgen) नाम हारमोन तथा स्त्रियों की यौन ग्रन्थियों एस्ट्रोजीन (Estrogen) नाम हारमोन उत्पन्न करती हैं । यौन ग्रन्थियों का समुचित विकास केवल यौन अंगों के विकास के लिए आवश्यक नहीं बल्कि व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास और व्यवहार भी उसके ऊपर निर्भर करता है ।

4. शारीरिक ढांचा एवं बनावट

शारीरिक ढांचा एवं बनावट व्यक्तित्व का आवश्यक अंग बालक का कद, भार, रंग, रूप, शारीरिक बनावट स्वास्थ्य आदि पर प्रभाव डालता है इसके दो रूप है-

(a) बालक शारीरिक विशेषताओं के दृष्टिकोण से जितना अधिक सम्पन्न होगा उसके व्यवहार करने का मूल्य और मान्यताएं उसी के अनुरूप बन जायेगी ।

(b) बालक के शारीरिक बनावट के प्रति जो व्यक्ति जिसके बारे में जैसा दृष्टिकोण रखता है उसके बारे में जैसी धारणाऐं बनाता है उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व के निर्माण में अवश्य पड़ता है ।

5. शरीर रसायन

बालक के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने में उसका शरीर रसायनों का भी काफी महत्वपूर्ण हाथ रहता है, हमारे शरीर को कार्य करने के लिये जो शक्ति मिलनी है उसे प्रदान करने में शरीर के भीतर चल रही रासायनिक क्रियाओं का सहयोग रहता है शर्करा को ग्लूकोस में बदलना, भोजन का पचना, ऑक्सीजन का कार्बनडाइऑक्साइड के रूप में बाहर आना आदि क्रिया में शरीर में चलती रहती है ये क्रियायें जिस रूप से हमारे शरीर में सम्पन्न होती हैं उसी के अनुरूप हमारा व्यक्तित्व प्रभावित होता है ।

10.5.2 मनोवैज्ञानिक निर्धारक :-

व्यक्तित्व को प्रभावित करने की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है -

1. बुद्धि और मानसिक विकास :-

दोनों की भूमिका बालक के व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण होती है । दोनों ही बालक के बौद्धिक विकास में सहायक होते है । बालक का समायोजन, समस्या को सुलझाने की प्रक्रिया, ज्ञान और कौशलों का अर्जन निर्णय लेने की शक्ति सभी इन दोनों पर निर्भर है ।

2. रूचियां और दृष्टिकोण :-

ये दोनों भी व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । बालकों वही काम करना पसन्द करते है जिन्हें वो चाहते है । जो काम करना चाहते उनमें बालकों की सकारात्मक रूचि होती है और जो काम नहीं करना चाहते है उनमें नकारात्मक रूचि होता है । हमारा व्यक्तित्व भी उन्हीं के रंग में रंग जाता है । इस बात में कोई सन्देह नहीं है । इस तरह रूचियां और दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक निधारकों के रूप में सशक्त भूमिका निभाने की पूरी क्षमता रखते हैं ।

3. महत्वाकांक्षा का स्तर एवं उपलब्धि प्रेरणा :-

व्यक्ति का महत्वाकांक्षा एवं उपलब्धि प्रेरणा का स्तर उसके व्यक्तित्व के निधारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । जिसकी कोई महत्वकांक्षा ही नहीं कुछ पाने के लिये प्रयत्न ही नहीं करेगा और किसी उपलब्धि के प्रति अभिप्रेरित नहीं रहेगा और उसका व्यक्तित्व पूरी तरह निकम्मा, आलसी व सुस्त व्यक्ति के रूप में बन जाएगा । ऐसे व्यक्ति भाग्य को कर्म से अधिक प्रधानता देगा। तथा जो कुछ प्राप्त होता रहेगा उसी में सन्तुष्ट अनुभव करेगा । दूसरी ओर जहां महत्वाकांक्षा अधिक होगी वहां उपलब्धि प्रेरणा का स्तर अधिक होगा वहां व्यक्ति संघर्षशील बनेगा । सक्रिय होकर जीवन में कुछ प्राप्त करना चाहेगा, आत्म विश्वासी होगा तथा भाग्य से कर्म पर विश्वास करेगा ।

4. इच्छा शक्ति :-

इच्छा शक्ति को व्यवहार का नियंत्रक और चालक शक्ति कहा जाता है । दृढ़ इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति संवेगात्मक रूप से काफी संतुलित पाये जाते हैं । ऐसे व्यक्ति जो ठान लेते है उस काम को पूरा करने में जी जान लगा देते है उनमें प्राप्त निर्णायक क्षमता तथा गजब का धैर्य देखने को मिलता है इसके विपरीत कमजोर इच्छा शक्ति वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व भी कमजोर सांचे ढला रहता है व सर्वथा असमंजस की स्थिति में रहता है और उसे अपने पर विश्वास नहीं रहता है ।

5. संवेगात्मक और स्वभावगत विशेषताएँ :-

व्यक्ति में जिस तरह के सकारात्मक व नकारात्मक संवेग होंगे, संवेगात्मक परिपक्वता का जो स्तर होगा स्वभावगत प्रकृति की जो विशेषताएं होगी, आदतों, भावनाओं तथा स्थायी भावों का जिस प्रकार का संगठन होगा, उसका व्यक्तित्व उसी प्रकार के रंग में रंगा दिखाई देगा । इस प्रकार स्वभावगत विशेषताएं व्यक्तित्व को सांचों में ढ़ालने की भूमिका निभाती रहती है ।

10.5.3 सामाजिक एवं सांस्कृतिक निर्धारक

हमारा बहुत कुछ व्यवहार अर्जित होता है और इस अर्जन के पीछे वातावरण जन्य अनुभव अपना पूरा प्रभाव दिखाते है । वातावरण सम्बन्धी अनुभव को प्रदान करने में व्यक्ति के सामाजिक एवं सांस्कृति परिवेश में निहित, शक्तियों संस्थायें तथा परिस्थितियां काफी सशक्त भूमिका निभाती है इसका संक्षेप में वर्णन किया है-

1. घर तथा परिवार :-

व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक जीवन का बहुत अधिक महत्व है । घर तथा परिवार के स्वस्थ वातावरण में बच्चे को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये समुचित अवसर प्रदान कर सकता है । घर तथा परिवार के वातावरण में बच्चे के व्यक्तित्व ने निम्नलिखित तत्व प्रभाव डालते है-

(a) माता-पिता का प्यार

(b) माता-पिता का बालक के प्रति दृष्टिकोण

(c) परिवार में बालकों की संख्या और उनका जन्म क्रम ।

(d) पारिवारिक स्थिति और न्यादर्श

(e) परिवार के सदस्यों का व्यक्तित्व और व्यवहार

2. विद्यालय का वातावरण-

बालक के व्यक्तित्व विकास में विद्यालय के वातावरण का भी विशेष महत्व है । अध्यापक, प्रधानाध्यापक तथा सहपाठियों के व्यक्तित्व सम्बन्धी गुण, शिक्षण विधियां पाठ्यक्रम पाठ्यान्तर क्रियाओं का आयोजन, विद्यालय द्वारा बनाये गये ऊंचे आदर्श आदि का बालक के व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं । विद्यालय का सोहार्द्ध पूर्ण वातावरण व्यक्तित्व को बहुत प्रभावित करते है ।

3. सामाजिक परिवेश में विद्यमान अन्य कारक-

घर परिवार और विद्यालय के प्रभाव के अतिरिक्त बालक के सामाजिक परिवेश में और बहुत सी संस्थाये संगठन तथा अन्य सामाजिक अनुभव प्रदान करने वाले कई स्त्रोत होते है जिनके बालक के व्यक्तित्व में विकास पर प्रभाव पड़ता है जैसे -

पास-पडौस

धार्मिक संस्थायें

4. सांस्कृतिक वातावरण

बालक जिस समाज में रहता है उसका सांस्कृतिक स्वरूप क्या है इस बात का बालक के व्यवहार, आचार, विचार तथा व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव पड़ता है । लोग कैसे रहते है, कैसे सोचते है, क्या खाते-पीते है, आपस में किस तरह व्यवहार एवं आचरण करते हैं, किस तरह के कपड़े पहनते हैं, उनका जीवन दर्शन क्या है, सामाजिक व धार्मिक मान्यतायें किस प्रकार की है - दूसरी जाति, पर्व, धर्म, प्रान्त तथा देशों के नागरिकों के प्रति उनका कैसा व्यवहार है, इस प्रकार की सभी बातें जो सांस्कृतिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करनी हैं, बालक को प्रारंभ से ही अपने रंग में रंगना प्रारम्भ कर देनी है ।

10.6 व्यक्तित्व के अध्ययन उपागन

व्यक्तित्व को समझने के लिये अनेक विद्वानों ने अपने पृथक उपाय किये हैं । इन उपायों द्वारा यह ज्ञात करने की चेष्टा की गई है कि व्यक्तित्व किन तत्त्वों से मिलकर बना है । कुछ विद्वान व्यक्तित्व के स्वरूप का अध्ययन शीलगुणों (Traits) के द्वारा करते हैं तो कोई शरीर-संरचना के द्वारा और कोई मानसिक प्रक्रिया का विश्लेषण करके, नीचे इसी प्रकार की अध्ययन विधियों की चर्चा है-

10.6.1 मनोविश्लेषण उपागम

व्यक्तित्व को समझने की इस विधि का विकास फ्रायड ने किया । फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व के तीन कारक या तत्व होते हैं - (1) इदम् (Id), (2) अहम् (Ego), परम अहम् (Super Ego) ।

प्रत्येक व्यक्ति में इदम् (Id) की भावना होती है । जिससे वह आवश्यकताओं की शीघ्रातिशीघ्र पूर्ति, करना चाहता है । इदम् का आधार भौतिक सुख है और इदम् सुख का अन्धा बनकर पीछा करती है । इसका सम्बन्ध अचेतन मन से होता है इसलिए यह कभी भी संवेगात्मक स्तर से ऊँचा नहीं उठ पाता । एक प्रकार से मनुष्य में यह आसुरीय या राक्षसीय प्रवृत्ति है । कुछ विद्वानों ने इसे आदि-मानव या पाशविक का भी नाम दिया है । संसार की वास्तविकता तथा यथार्थता से इसका सम्बन्ध नहीं होता है ।

अहम् (Ego) मानवीय प्रवृत्ति है जिसके कारण कोई व्यक्तित्व मानवोचित कार्य करता है । यह मनुष्य की यथार्थ या वास्तविकता की स्थिति है । अहम् का सर्वप्रमुख कार्य स्व-रक्षा है । 'स्व' की रक्षार्थ वह वातावरण - भौतिक व सामाजिक दोनों का ही ज्ञान प्राप्त करता है - थोथी कल्पनाओं से हटकर वास्तविक जगत में आता है । यह सुख प्राप्त करने के लिए इदम् के समान अन्धा नहीं बनता है और प्रत्येक कार्य के परिणामों को पूरी तरह सोच लेता है ।

अहम् अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करता है तथा वर्तमान समस्याओं को हल करता है । इसी के अन्तर्गत वह मूल-वृत्ति तथा संवेगों पर नियन्त्रण तथा दमन करता है ।

जहाँ तक परम अहम् (Super Ego) का प्रश्न है, इसका विकास वातावरण तथा समाज के नैतिक वातावरण से होता है । यह व्यक्ति में अति-मानव (Super-individual) की प्रवृत्ति है जो सदैव अच्छे तथा देवीय कार्यो की ओर प्रेरित करती है । फ्रायड के अनुसार इदम् का विकास शैशवावस्था में हो जाता है, अभिवृद्धि व विकास के साथ-साथ अहम् का भी विकास होता चलता है । किन्तु बालक देखता है कि समाज कुछ कार्यों को मान्यता नहीं देता है और कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें करने से रोका जाता है । धीरे-धीरे ऐसे कार्यो पर वह नियन्त्रण करना सीख जाता है । इसके लिए वह सर्वप्रथम अपने माता-पिता को प्रारूप (Model) मान लेता है । क्योंकि वे ही बालक को असामाजिक तथा अनैतिक कार्यो को करने से उसे डराकर, धमकाकर या प्यार से बालक को रोकते हैं । इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में माता-पिता ही परम अहम् का ज्ञान प्रदान करते हैं । यह एक प्रकार की नैतिक चेतना है जिसे हम अन्तःकरण या अन्तरात्मा भी कह सकते हैं । इदम् तथा परम अहम् में सदैव परस्पर संघर्ष होता रहता है क्योंकि दोनों ही परस्पर विरोधी प्रवृत्ति के होते हैं । इदम् मनुष्य को राक्षसी मार्ग पर ले जाता है तो परम् अहम् आदर्श नैतिकता के मार्ग पर । अहम् दोनों के बीच मध्यस्थता करके यथार्थ की ओर ले जाता है ।

व्यक्ति में इदम् अहम् तथा परम् अहम् में से जो तत्व अधिक शक्तिशाली होगा, व्यक्तित्व वैसा ही होगा । यदि व्यक्ति का इदम् शक्तिशाली है तो व्यक्ति निम्न कोटि का, कामी-क्रोधी तथा सुख के पीछे दीवाना होगा और यदि परम अहम् ऊँचे है तो वह अत्यधिक आध्यात्मिक, दैवीय शक्तिवाला, नैतिक व आदर्शवादी होगा । व्यक्ति का अहम् शक्तिशाली होगा तो वह यथार्थवादी होगा । अहम् के शक्तिहीन होने पर वह इदम् व परम अहम् के संघर्षो की मध्यस्थता नहीं कर पायेगा । फलत: उसका जीवन संघर्षों, दुविधाओं, असन्तुलन तथा अव्यवहारिकता से भरा हुआ होगा ।

10.6.2 शीलगुण विधि

आलपोर्ट तथा कोटिल आदि ने व्यक्तित्व को समझने के लिए व्यक्तित्व के शीलगुणो का अध्ययन करने पर बल दिया । व्यक्तित्व के शीलगुणो से तात्पर्य व्यक्तित्व के वे गुण हैं जो व्यवहार को निश्चित करते हैं । ये गुण व्यक्ति में एक प्रकार से स्थायी होते हैं । गैरिट ने शीलगुणों के सम्बन्ध में लिखा है, "Personality traits are distinctive ways of behaving, more or less permanent for a given individual. Personality traits are neat sufficient ways of describing the multifold aspects of behavior.''

आलपोर्ट ने अग्रेंजी भाषा के शब्दकोष से 17953 विशेषण शब्द तलाश किये जिनमें से उसने पुन: 4500 शब्दों को छाँटा । ये 4500 विशेषण शब्द व्यक्तित्व के शीलगुणों से सम्बन्धित थे । आलपोर्ट के अलावा केटल ने प्रारम्भ मे 171 शीलगुणों की सूची दी, बाद में कैटल ने इन 171 शीलगुणों को 12 समूहों में विभक्त किया ।

वुडवर्थ ने इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य कहा कि प्रत्येक शीलगुण के दो पक्ष होते है - सकारात्मक तथा नकारात्मक । इस सिद्धान्त के अनुसार प्रसन्न चित व मिलनसार शीलगुण का सकारात्मक पक्ष है तो उदासीन तथा झेंपू उसका नकारात्मक पक्ष है । कैटिल ने निम्न 12 प्राथमिक (Primary) शीलगुण बताये-

1. चक्रविक्षिप्त **(Cyclothania):-** भावुक, स्पष्ट तथा विचारों को बिना परिणामों के सोचे कहने वाला व्यक्ति चक्रविक्षिप्त होता है ।
2. सामान्य मानसिक क्षमता **(General Mental Capacity)** :- यह सामान्य मानसिक योग्यताओं वाले व्यक्तित्व होते हैं ।
3. प्रभुत्वपूर्ण **(Dominance)** - जो दूसरों पर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं, अत्यधिक विश्वसनीय होते हैं,बात-बात पर झगड़ा करते हैं वे प्रभुत्वपूर्ण व्यक्तित्व होते हैं ।
4. प्रसन्नचित्त **(Surgency)** - जो व्यक्ति प्राय: प्रसन्नचित्त रहते है, वे इस श्रेणी में आते हैं । ये आत्मविश्वासी होते है ।
5. सकारात्मक स्थिरता **(Positive Character)** - जो व्यक्ति दूसरे की बातों पर अधिक ध्यान देता है, वह इस श्रेणी में आता है ।
6. संवेगात्मक स्थिरता **(Emotional Stability)-**जो व्यक्ति संवेगात्मक दृष्टि से परिपक्व होते हैं, जिनके संवेग अपेक्षाकृत अधिक स्थिर होते हैं, इस श्रेणी में आते हैं ।
7. साहसी चक्रविक्षिप्त **(Adventurous Cyclothania)** -इस प्रकार के शीलगुण वाले व्यक्ति विषमलिंगी रूचि वाले, आत्म विश्वासी, साहसी तथा सामाजिक होते हैं ।
8. परिपक्वता **(Maturity)** - जिनमें आत्म-निर्णय, स्वतन्त्रता, अपने में परिपूर्णता होती है वे इस श्रेणी में आते हैं ।
9. सुसंस्कृत **(Cultured)** - सुसंस्कृत व्यक्ति वे होते हैं जो सामाजिक संस्कृति के अनुसार जीवनयापन करते हैं ।
10. विश्वासी **(Trustful)** - जो दूसरों पर सहसा ही विश्वास कर लेते हैं । वे विश्वासी कहलाते हैं।
11. अपरम्परागत **(Unconventional)** - जो व्यक्ति प्रचलित परम्पराओं के साथ न चलकर अपनी स्वयं की परम्पराऐं अपनाते हैं वे इस श्रेणी में आते हैं ।
12. विनयशील **(Sophisticated)** - एकान्तप्रिय, मष्दुभाषी, शान्त स्वभाव के व्यक्ति इस गुण से युक्त होते हैं ।

वुडवर्थ (Woodworth) ने अग्रांकित प्रधान गुणों का उनके विपरीत गुणों सहित उल्लेख किया है -

क्र.सं.	प्रधान गुण	क्र.सं.	विपरीत गुण
1	प्रसन्नचित्त, सामाजिक	1	उदासीन, झेंपू
2	बुद्धिमान	2	मूर्ख
3	संवेगात्मक स्थिर, यथार्थवादी	3	संवेगात्मक अस्थिरता, अयथार्थवादी
4	अधिकार प्रिय, आत्मगोरव	4	आज्ञाकारी, आत्महीनतापूर्ण

5	सामाजिक, शान्त	5	एकान्तप्रिय, झगड़ालू
6	दयालु, कोमल- हृदय	6	कठोर, हृदयहीन
7	शिष्ट, सत्यवादी	7	अशिष्ट, झूठे
8	परिश्रमी	8	आलसी
9	साहसी	9	डरपोक
10	चुस्त	10	सुस्त
11	शीघ्र क्रोधी, चिड़चिड़ा	11	शान्त, सहनशीलता
12	मित्रतापूर्ण	12	शत्रुतापूर्ण

सुविधा की दृष्टि से इन समस्त शीलगुणों को निम्न चार श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं -

1. शारीरिक शीलगुण
2. मानसिक शीलगुण
3. सामाजिक शीलगुण
4. समन्वय शीलगुण

नीचे इन चारों श्रेणियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है -

1. शारीरिक शीलगुण - शारीरिक शीलगुणों में हम व्यक्ति को शरीर संरचना से सम्बन्धित शीलगुणों को सम्मिलित करते हैं - जैसे - उसकी सुन्दरता, सुडौलता, रंग, रूप, स्वास्थ्य, लम्बाई, चौड़ाई आदि ।
2. मानसिक शीलगुण - शारीरिक शीलगुण के तीन पक्ष होते है -
   (i) ज्ञानात्मक (Knowledge) अथवा बुद्धि,
   (ii) अनुभूति (Feeling) अथवा स्वभाव
   (iii) इच्छा (Willing) अथवा चरित्र ।

समस्त मानसिक क्रियाएं इन्हीं तीन पक्षों में निहित होती है जैसे बुद्धि में मानसिक योग्यताएं आ जाती हैं, स्वभाव में उसके व्यवहार आ जाते हैं जैसे वह निराशावादी है या आशावादी, मिलनसार है या एकान्तप्रिय, स्थिर है अथवा अस्थिर, क्रोधी है या शान्त आदि तथा चरित्र में व्यक्ति की समस्त चारित्रिक विशेषताएं सम्मिलित करते हैं ।

3. सामाजिक शीलगुण - सामाजिक शीलगुणों में व्यक्तित्व के गुण सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा व्यक्ति समाज में सफलता के साथ समायोजन करता है । इन गुणों के अभाव में समाज के साथ समायोजन नहीं हो पाता है तथा व्यक्ति समाज की परम्पराओं को नहीं मानता है । सामाजिकता के अभाव में व्यक्ति क्रोधी, विद्रोही, एकान्तप्रिय, चिड़चिड़े तथा आक्रामक हो जाते है।
4. समन्वय शीलगुण - जैसा कि हम अध्ययन कर चुके हैं, व्यक्तित्व अनेक गुणों का समन्वय है। समन्वय करने की शक्ति जितनी अच्छी होगी, व्यक्तित्व उतना ही

सन्तुलित होगा । समन्वय के शीलगुण के कारण व्यक्ति विभिन्न मानसिक, शारीरिक व सामाजिक शीलगुणों का समन्वय कर एक सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

शीलगुण व्यक्तिगत को समझने के लिये बड़े महत्वपूर्ण होते है । शीलगुण ही वास्तव मे व्यक्तित्व के आधार होते हैं । गार्डनर तथा मर्फी (Gardner and Murphy) ने शीलगुणों के महत्व के सम्बन्ध में लिखा है कि "व्यक्तित्व के शीलगुण दूसरे व्यक्तियों तथा स्वयं अपने को समझने की योग्यता प्रदान करते हैं तथा इन्हीं के आधार पर हम भविष्यवाणी कर सकते है कि हममें से प्रत्येक क्या कार्य करेगा ।

10.7 प्रकार विधि

कुछ विद्वान व्यक्तित्व के प्रकारों को अध्ययन कर व्यक्तित्व को समझने की चेष्टा करते हैं । इस विधि से व्यक्तित्व को समझने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का श्रेणी-विभाजन अलग-अलग प्रकार से किया । नीचे व्यक्तित्व के विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गए प्रकारों का वर्णन है ।

10.7.1 भारतीय दृष्टिकोण-

भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व तीन प्रकार के बतलाये हैं - (1) सतोगुणी, (2) रजोगुणी, तथा (3) तमोगुणी । इनमें सतोगुणी व्यक्तित्व सर्वोत्तम होता है । सतोगुणी व्यक्तित्व सत् (अच्छे) के गुणों युक्त, उच्च आदर्शो, नैतिक मूल्यों तथा चरित्रवान् होता है, इसके विपरीत तमोगुणी व्यक्ति कामी, क्रोधी, आलसी तथा अमानवीय गुणों से युक्त होते हैं । रजोगुणी व्यक्ति इन दोनों के मध्य की स्थिति होती है ।

एक अन्य दृष्टिकोण से व्यक्तियों को दूसरी तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है - (1) कफज, (2) पित्तज, तथा (3) वायुज । कफ प्रधान व्यक्ति कफज, पित्त-प्रधान व्यक्ति पित्तज तथा वायु-प्रधान व्यक्ति वायुज कहलाते हैं । ये तीनों ही प्रकार के व्यक्ति व्यवहार, स्वभाव तथा चरित्र में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं ।

10.7.2 शरीर-रचना का दृष्टिकोण-

शरीर-रचना के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने व्यक्तित्व के अलग-अलग प्रकार बतलाये हैं-

(i) क्रेचमेर **(Kretschmer)** का वर्गीकरण - जर्मन विद्वान क्रेचमेर ने शरीर-रचना के आधार पर

व्यक्तित्व के निम्न चार प्रकार बतलाये हैं -

(A) सुडोलकाय **(Athletic)** - इस प्रकार के व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ, अच्छे डीलडोल वाले, हृष्ट-पुष्ट, दृढ़ निश्चयी, आत्म-विश्वासी तथा सुन्दर समायोजन शीलता वाले हैं ।

(B) लम्बाकाय **(Aesthemic)** - इस प्रकार के व्यक्ति दुबले-पतले तथा लम्बे होते हैं । स्वभाव से शीघ्र क्रोधी, चिड़चिड़े स्वभाव वाले तथा निराश प्रवृत्ति के होते हैं ।

(C) गोलाकाय **(Pyknic)-** इस प्रकार के व्यक्ति नाटे, मोटे, चर्बी वाले तथा गोल आकार के होते हैं । ये व्यक्ति स्वभाव से प्रसन्नचित्त, अत्यधिक मिलनसार तथा आरामप्रिय होते हैं ।

(D) **मिश्रित (Dysplastic)** -कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनमें उपर्युक्त तीनों प्रकारों का मिश्रित रूप देखने को मिलता है ।

(ii) शैल्डन **(Sheldon)** - का वर्गीकरण - शैल्डन ने 400 व्यक्तियों का अध्ययन करके शरीर-रचना के आधार पर व्यक्तियों को निम्न वर्गो में बांटा -

(A) लम्बाकृति

(B) आयताकृति

(C) गोलाकृति

लम्बाकृति व्यक्तियों का शरीर लम्बा होता है तथा इनका स्नायु-मण्डल अधिक विकसित होता है । आयताकृति व्यक्तित्व न अधिक मोटे होते हैं और न अधिक पतले, इनकी शरीर-रचना सामान्य होती है । गोलाकृति व्यक्ति बहुत मोटे, हँसमुख तथा सीमा से अधिक सामाजिक होते हैं ।

10.7.3 समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण:-

स्प्रेन्गर **(Spranger)** ने समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से व्यक्तित्व के 6 प्रकार बताये हैं -

(A) सैद्धान्तिक (Theoretical) (B) आर्थिक (Economic)

(C) सामाजिक (Social) (D) राजनैतिक (Political)

(E) धार्मिक (Religious) (F) सौन्दर्यात्मक(Aesthetic)

10.7.4 अन्य दृष्टिकोणों से-

थार्नडाइक ने विचार एवं कल्पना की दृष्टि से व्यक्तियों को तीन भागों में बांटा- (1) सूक्ष्म विचारक (Abstract Thinkers), (2) प्रत्यक्ष प्रचारक (Idea Thinkers) तथा स्थूल विचारक (Concrete Thinkers) ।

टरमैन ने बुद्धिलब्धि के आधार पर व्यक्तित्व का निम्न श्रेणी-विभाजन किया -

(1) जड़ (Idiot), (2) मूढ़ (Imbecile), (3) मूर्ख (Moron), (4) हीन-बुद्धि (Feebleminded), (5) निर्बल बुद्धि (Boarder), (6) मन्द-बुद्धि (Dull), (7) सामान्य (Normal), (8) उत्कृष्ट (Superior), (9) अति उत्कृष्ट (Very Superior), (10) प्रतिभाशाली (Genious), तथा (11) अति प्रतिभाशाली (Super Geniours) ।

सामाजिक को आधार बनाकर जुग (Jung) ने व्यक्तित्व के निम्न प्रकार बताए हैं -

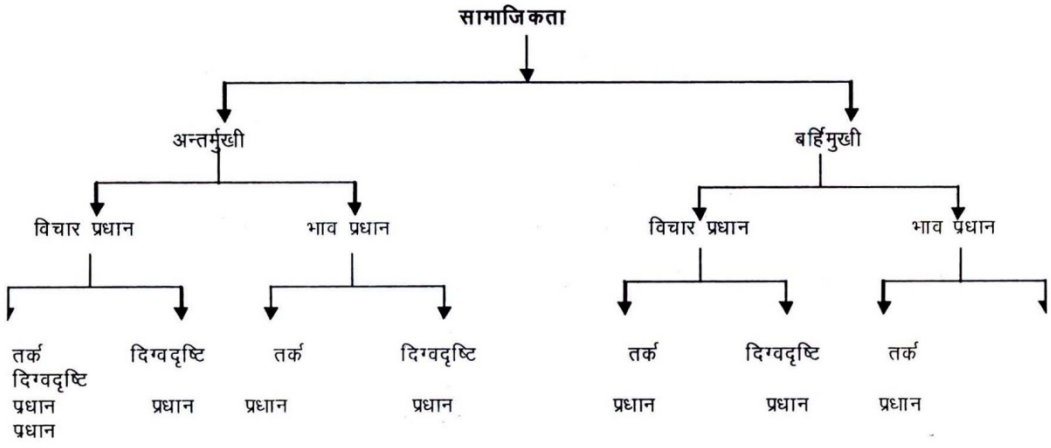

जुंग ने अन्तर्मुखी तथा बर्हिमुखी व्यक्तित्व की निम्न विशेषताएं इंगित की हैं

क्र. सं.	अन्तर्मुखी व्यक्तित्व	क्र. सं.	बर्हिमुखी व्यक्तित्व
1.	अन्तर्मुखी व्यक्ति अपने मे ही मस्त रहते है। ये एकान्तप्रिय तथा एकाकी होते है । सामाजिकता का इनमें अभाव होता है ।	1.	बर्हिमुखी अत्यन्त सामाजिक तथा वाचाल होते हैं ।
2.	अन्तर्मुखी कम बोलने वाले, लज्जाशील तथा अपने काम से काम रखने वाले होते है ।	2.	बहिर्मुखी दूसरों के साथ बडी जल्दी मित्रता स्थापित कर लेते हैं ।
3.	ये साहित्यिक तथा आध्यात्मिक विषयों के अध्ययन में रूचि रखते हैं एवं ये वर्तमान समस्याओं पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित रखते है ।	3.	ये अत्यन्त ही मनोविनोदी तथा मस्त रहने वाले होते है ।
4.	विचार-प्रधान तार्किक अन्तर्मुखी वे व्यक्ति होते हैं जो निरन्तर सत्य की खोज करते हैं । भाव प्रधान तार्किक अन्तर्मुखी अपने में दुःखी तथा अपने दुःखों को तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने वाले होते है ।	4.	बहिर्मुखी काफी आदर्शवादी,धैर्यवान कार्यशील होते हैं ।
5.	विचार-प्रधान तार्किक अन्तर्मुखी वे व्यक्ति होते है जो परम सत्य को प्राप्त करने हेतु दिव्य दृष्टि का विकास करने की चिन्ता करते हैं । महात्मा दयानन्द, बुद्ध, ईसा मसीह आदि इस श्रेणी में आते हैं ।	5.	ये वातावरण से शीघ्र प्रभावित होते हैं।
6.	भाव प्रधान दिव्य दृष्टि युक्त अन्तर्मुखी व्यक्ति सत्य की खोज में रहकर संसार	6.	ये प्राय : रुढिवादी होते है । इनका चेतन मन स्वार्थ रहित होता है। ये

	को प्रकाश देने वाले महापुरुष होते हैं । अन्तर्मुखी व्यक्ति अपनी वस्तुओं तथा कष्टों के प्रति सदैव सजग रहते है । तथा शंकालु होते हैं ।		कल्पना प्रधान होते है। विचारों को तार्किक ढंग से प्रयुक्त नहीं कर पाते किन्तु स्वयं ही अच्छे-अच्छे कार्य कर लेते हैं ।
7.	मनोविनोद करना उन्हें पसन्द नहीं है । दूसरों के साथ हंसी मजाक में साथ नहीं देते हैं।	7.	इनका चेतन मन स्वार्थ रहित होता है । विचार-प्रधान तार्किक बर्हिमुखी अपना जीवन तर्क-प्रधान कार्यो से व्यतीत करते हैं - जैसे वकील, शिक्षक, नेता आदि । ये कल्पना प्रधान होते हैं ।

10.8 मूल प्रवृत्ति विधि

व्यक्ति को समझाने की अन्तिम विधि मूल-प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की है । इस विधि की मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार मुख्य रूप से मूल प्रवृत्ति से प्रभावित होते हैं । मूल-प्रवृत्तियों का विकास जिस स्थिति में होगा, उसका व्यवहार भी उसी के अनुरूप होगा क्योंकि प्रत्येक मूल-प्रवृति के साथ एक न एक संवेग अवश्य जुड़ा होता हे। मूल-प्रवृति से हमारा तात्पर्य उन जन्मजात शक्तियों से है जो हमारे व्यवहारों को परिचालित करती है । मैक्डूगल के शब्दों में "मूल-प्रवृति वे जन्मजात मनोशारीरिक विशेषताएं हैं जिनके कारण कोई प्रणाली प्रत्यक्षीकरण करता है, ध्यान देता है, अनुभव प्राप्त करता है तथा एक विशिष्ट ढंग से प्रतिक्रिया करता है ।"

मैक्डूगल के अनुसार, मुल-प्रवृत्ति के तीन पहलू होते है - (1) ज्ञानात्मक, (2) संवेगात्मक तथा (3) क्रियात्मक । मैक्डूगल ने कुल मिलाकर 14 मूल-प्रवृतियां बतलाई हैं और कहा है प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ एक संवेग जुड़ा हुआ होता है । मैक्डूगल द्वारा बताये 14 संवेग निम्नलिखित है

क्र. सं.	**मूल- प्रवृत्ति**	**संवेग**
1.	पलायन	भय
2.	युयुत्सा	क्रोध
3.	निवृत्ति	घृणा
4.	पुत्र कामना	वात्सल्य
5.	शरणागत	करूणा
6.	कामप्रवृत्ति	कामुकता
7.	जिज्ञासा	आश्चर्य
8.	दीनता	आत्महीनता
9.	आत्म-गौरव	आत्माभिमान
10.	सामूहिकता	अकेलापन
11.	भोजनान्वेषण	भूखे
12.	संग्रह	अधिकार

13.	रचना	कृति
14.	हास	मनोविनोद

व्यक्तित्व को समझने के लिये मूल प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है । प्रत्येक व्यक्ति में मूल-प्रवृत्तियों का विकास पृथक-पृथक प्रत्येक व्यक्ति में पृथक-पृथक होता है तथा प्रत्येक मूल-प्रवृति की तीव्रता प्रत्येक व्यक्ति में पृथक-पृथक होती है अत: उसके व्यवहारों में पृथकता आ जाती है । यदि हम व्यक्ति के व्यवहारों के सन्दर्भ में व्यक्तित्व का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें मल-प्रवृत्तियों का अध्ययन करना पड़ेगा ।

10.9 व्यक्तित्व संगठन

नवजात शिशु के व्यक्ति की व्याख्या करना बहुत कठिन है, क्योंकि प्रौढ़ों के समान उसका कोई व्यक्ति नहीं होता । व्यक्तित्व तो विकास, अभिवृद्धि और परिपक्वता का ही परिणाम है । मानव के सभी विकासात्मक तत्व जैविक वंशानुक्रम और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होते हैं । जीवन के प्रारम्भिक अनुभव बालक के व्यक्तित्व को एक विशेष रूचि में ढाल देते हैं । बालक के साथ माता-पिता का व्यवहार, उसके प्रति अन्य व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएँ, उसे भोजन कराने का ढंग, उसकी अन्य जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति, समाज में उसका स्थान (आदर या निरादर) आदि बातें जीवन में आरम्भ से ही व्यक्तित्व को एक विशेष दिशा में मोड़ने लगती है । संक्षेप में व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाली मुख्य परिस्थितियां इस प्रकार हैं -

व्यक्तित्व

(1) शारीरिक संरचना	(2) वातावरण का प्रभाव	(3) अन्य प्रभाव
(क) स्वास्थ्य, रंगरूप	(क) घरेलू वातावरण	(क) संस्कृति
(ख) गामक संयोजन	(ख) पाठशाला का वातावरण	(ख) धर्म
(ग) सामान्य मानसिक योग्यताएं	(ग) पाठ्यक्रम	(ग) सामाजिक संगठन
(घ) कुशाग्र बुद्धि होना या मंद बुद्धि होना	(घ) गुरू शिष्य सम्बन्ध	
(ङ) विशेष योग्यताएं	(ङ) शिष्यों के आपसी सम्बन्ध	
(च) संवेग		

व्यक्तित्व के संगठन में गैसेल के विश्लेषणात्मक उपागम तथा फ्रायड की मनोविश्लेषण वादी उपागम के बहुत योगदान है ।

फ्रायड का सिद्धान्त फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी विचारों का वर्णन कामप्रवृत्ति के अन्तर्गत किया जा चुका है । फ्रायड, मानव व्यवहार की मूल प्रेरणा काम या लिबिडो को ही

मानता है । विकास के विभिन्न स्तरों पर काम प्रकाशन से व्यक्ति को संघर्ष, द्वन्द्व और विक्षिप्तावस्था का सामना करना पड़ता है । लिबिडो शक्तियों का वह भण्डार है जो सदैव सुखों की खोज करता रहता है, यह इड कहलाता है । एक सामान्य व्यक्ति का व्यक्तित्व ईगो और सुपर ईगो के सामंजस्य से ही बनता है । जिसका वर्णन निम्नांकित सारणी में किया गया है ।

क्र.सं.	**व्यक्तित्व के अंग**	**सिद्धान्त**	**आत्म का स्वरूप**
1	इड या पशु प्रवृत्ति	इन्द्रिय सुखों की पूर्ति का पुज है।	आत्म या सेल्फ दे रूप है।
2	ईगों या साधारण रण	वास्तविक से निकटता की स्थिति है। यह व्यक्ति की विवेचना शक्ति है।	आत्म का चैतन्य का स्वरूप है।
3	सुपर ईगो या उच्च रण	सामाजिकता, नैतिकता और का सिद्धान्त है। इसमें व्यक्ति की नैतिक शक्ति रहती है।	आत्म चेतन का स्तर है।

उदाहरण - एक बालक अपने साथी के पास सुंदर कलम देखता है । उसके मन में विचार उठते हैं

मैं इसका कलम चुरा लूं अथवा इस का कलम छीन लूं" (इड की प्रेरणा है), "लेकिन मेरी चोरी पकड़ी जा सकती है, वह मुझसे अधिक बलवान है, वह मुझे पीट देगा" (यह ईगा द्वारा समायोजनात्मक विचार या प्रतिक्रिया है ।) ।

"लेकिन मुझे ऐसे दूषित विचार मन में नहीं लाने चाहिए, यह पाप है" (यह सुपर ईगो - विवेकयुक्त अन्तःकरण की प्रेरणा का फल है) ।

इस प्रकार जीवन में पग-पग संघषों का सामना करते हुए जीवन के आत्म का विकास होता है । यह आत्म ही उसके व्यक्ति का क्रियाशील संगठन है ।

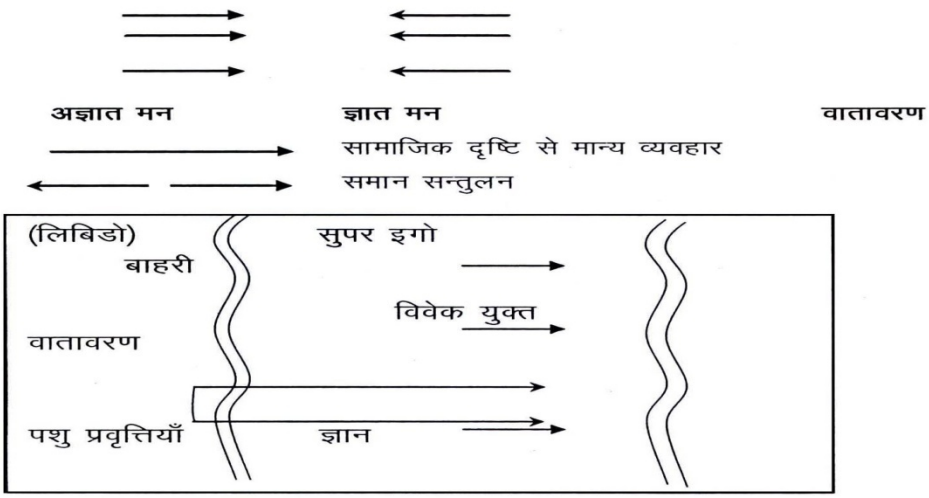

इस चित्र में अज्ञात मन, ज्ञात मन और वातावरण का सन्तुलन दर्शाया गया है । अज्ञात मन की प्रेरणाएं (लिबिडो प्रवृत्तियां, काम प्रेरणाएं) ज्ञात मन में प्रवेश करती है । इससे ज्ञात मन में संघर्ष भी होता है । दूसरी ओर ज्ञात मन की चेष्टाओं का लक्ष्य वातावरण के साथ उचित समायोजन करना है । एक सन्तुलित व्यक्ति अज्ञात मन की उन प्रेरणाओं को ग्रहण करता है । जो समाज और वातावरण के साथ समायोजन (अनकुलन) में सहायक होती' हैं, जिन्हें वह सामाजिक दृष्टि से मानवीय व्यवहार का रूप देता है ।

जीवन नाटक प्रारम्भ होते ही पशु प्रवृत्ति और वातावरण की शक्तियों का संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है । इस बाल्यकालीन संघर्ष में बालक जो कुछ भी सीखता है एवं प्रत्यक्षीकरण करता है, वह ही उसके आगामी विकास का आधार बन जाता है । इसीलिए व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से बाल्यकालीन संस्कारों का विशेष महत्व है । उसकी जन्मजात पशु-प्रवृत्तियां शीघ्र ही वातावरण से संघर्ष करने लगती है । इस संघर्ष के परिणामस्वरूप समायोजन होता है और इस समायोजन द्वारा जिस नवीन स्वरूप का उदया होता है उसे ईगो कहा जाता है । व्यक्ति का ईगो या आत्म इस संघर्ष के प्रति सदैव चैतन्य रहता है । ईगो का कार्य वातावरण की वास्तविकताओं से उचित समायोजन करके व्यक्तित्व को इस संघर्ष में नष्ट होने से बचाना विकताओं से उचित समायोजन करके व्यक्तित्व को इस संघर्ष में नष्ट होने से बचाना है । ईगो का पूर्ण व्यवस्थापित आदर्श, नैतिक स्वरूप, सुपर ईगो कहलाता है । जीवन पथ पर वातावरण से संघर्ष और समायोजन करते हुए बालक के सुपर ईगो का निर्माण होता है । अभिभावकों एवं अध्यापकों द्वारा बालिकाओं की समायोजनात्मक कठिनाईयों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है । जीवन की बदली हुई परिस्थितियों में उचित समायोजन करने के लिए उन्हें प्रौढ़ों से यथोचित सहायता मिलनी चाहिए । घर में माता-पिता और पाठशाला में अध्यापकों को बालक और बालिकाओं के सामाजिक और संवेगात्मक व्यवहार का निरीक्षण करना चाहिए ।

संगठित व्यक्तित्व में सामान्यत: निम्न विशेषताएं परिलक्षित होती है -

1. उसका व्यक्तित्व संगठित होता है । जिसके कारण समायोजन की समस्या उत्पन्न नहीं होती हैं ।
2. ऐसे व्यक्ति जीवन के प्रति अपने गुणों तथा दोषों की अच्छी तरह जानते हैं ।
3. ऐसे व्यक्ति जीवन के प्रति वास्तविक दृष्टिकोण रखते हैं तथा पलायनवादी नहीं होते हैं।
4. संगठित व्यक्तित्व वालों के लक्ष्य संकीर्ण नहीं होते । वे व्यापक लक्ष्य की ओर उन्मुख होते हैं।
5. संगठित व्यक्तित्व में मानसिक क्रियाएं व्यवस्थित होती है इनमें मानसिक तनाव तनाव संघर्ष द्वन्द का अभाव होता है ।
6. संगठित व्यक्तित्व वाले स्वाभाविक रूप से संवेगों को ढाल लेते हैं ।
7. इस प्रकार के व्यक्ति नवीन परिस्थितियों में अपने आप को आसानी से तथा शीघ्रता से समायोजित कर लेते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. व्यक्तित्व की सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा किसने दी हैं तथा इस परिभाषा की विशेषताएं क्या है ।
2. ऑलपोर्ट की विशेषक सिद्धान्त में विशेषकों को कितने भागों में बांटा गया है ।
3. शारीरिक गठन के आधार पर क्रेशमर के प्रारूप बताईये ।
4. व्यक्तित्व की प्रकृति और सम्प्रत्यय से सम्बन्धित विभिन्न विचार धाराओं का समीक्षात्मक वर्ण प्रस्तुत कीजिये ?
5. युंग द्वारा व्यक्तित्व के प्रकार बताये?

10.10 सारांश

शिक्षा जगत में व्यक्तित्व शब्द अपना विशेष स्थान रखता है । शिक्षा अपने सम्पूर्ण रूप में बालक के व्यक्तित्व सर्वांगीण विकास से अपना प्रयोजन रखती है । अत: भावी अध्यापकों को व्यक्तित्व के अर्थ, प्रकृति एवं विकास से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है । व्यक्तित्व शब्द की उत्पति अंग्रेजी भाषा के शब्द पर्सनल्टी का हिन्दी रूपान्तरण है । पर्सनल्टी शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द परसोना से हुई जिसका अर्थ होता है मुखौटा या आवरण।

व्यक्तित्व एक गतिशील संगठन है जो वातावरण के साथ अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है व्यक्तित्व के विकास में बाह्य एवं आन्तरिक निर्धारकों का बहुत प्रभाव पड़ता है । बालक वंशानुक्रम एवं वातावरण की ऊपज है वंशानुक्रम और वातावरण बालक के विकास में महत्वपूर्ण योग देते है । जैविक निर्धारण, मनोवैज्ञानिक निर्धारण, एवं सामाजिक व सांस्कृतिक निर्धारकों का भी व्यक्तित्व विकास में एक अभूतपूर्व योगदान है । मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास में विभिन्न प्रकार की ग्रन्थियों एवं गुणों का वर्णन किया है ।
जिनके समुचित स्त्राव से एक सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है ।

10.11 मूल्यांकन प्रश्न

1. व्यक्तित्व के अर्थ को स्पष्ट कीजिये?
2. व्यक्तित्व की सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा को स्पष्ट कीजिये?
3. व्यक्तित्व विकास में कौन-कौन से सहायक कारक हैं - स्पष्ट करें?
4. व्यक्तित्व की प्रकृति एवं विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये?
5. ऑलपोर्ट तथा कैटल के व्यक्तित्व सिद्धान्तों की शैक्षिक उपयोगिता बतायें?
6. व्यक्तित्व के उपागम कौन-कौन से है?

10.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Development of Personality- Alport
2. Development of Education Psychology- Gates and others
3. शिक्षा मनोविज्ञान - सुरेश भटनागर

4. शिक्षा मनोविज्ञान - एस.एस माथुर
5. विद्यार्थी विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया - डॉ. एस. के मंगल, श्रीमती शुभ्रा मंगल
6. शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार - डॉ. देवदत्त शर्मा एवं बीना भास्कर

इकाई 11

व्यक्तित्व के गुण, प्रकार व प्रभावित करने वाले कारक
(Traits, Types and Factors Affecting Personality)

इकाई की संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 व्यक्तित्व के गुण

11.2.1 गुण का अर्थ

11.2.2 ऑलपोर्ट का योगदान

11.2.3 कैटल का योगदान

11.3 व्यक्तित्व के प्रकार

11.3.1 शारीरिक संरचना के आधार पर

11.3.1.1 हिपोक्रेट्स का वर्गीकरण

11.3.1.2 रोस्टन का वर्गीकरण

11.3.1.3 क्रेश्मर का वर्गीकरण

11.3.1.4 शेल्डन का वर्गीकरण

11.3.2 मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर

11.3.2.1 युंग का वर्गीकरण

11.3.2.2 स्प्रेन्गर का वर्गीकरण

11.4 व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

11.4.1 वंशानुगत कारक

11.4.1.1 शारीरिक संरचना एवं शारीरिक स्वास्थ्य

11.4.1.2 शारीरिक रसायन

11.4.1.3 स्नायुमण्डल

11.4.1.4 अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ

11.4.2 पर्यावरणीय कारक

11.4.2.1 सामाजिक कारक

11.4.2.2 शैक्षिक कारक

11.4.2.3 मनोवैज्ञानिक कारक

11.4.2.4 सांस्कृतिक कारक

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 मूल्यांकन प्रश्न
11.8 सन्दर्भ ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- आप व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों को समझ सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व के गुणों के महत्व को समझ सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व के गुणों के वर्गीकरण के आधार पर इन लक्षणों की पहचान कर सकेंगे।
- आप व्यक्तित्व के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व के प्रकारों के वर्गीकरण को समझ सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व के प्रकारों के आधार पर व्यक्तित्व की पहचान कर सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व के निर्माण में गुणों की भूमिका का अनुमान लगा सकेंगे ।
- आप विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के व्यक्तित्व के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।
- आप व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों के मध्य भेद कर सकेंगे ।
- आप इन कारकों का सहसम्बन्ध व्यक्तित्व के विकास से कर सकेंगे ।
- आप व्यक्तित्व के विकास के विभिन्न आयामों के महत्व को समझ सकेंगे ।
- आप इन कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पढ़ा कि 'व्यक्तित्व' शब्द बहुत व्यापक है । हम सभी व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में करते हैं । यद्यपि जब भी हम किसी के व्यक्तित्व के बारे में बात करते है तो हमारे मस्तिष्क में उस व्यक्ति विशेष की शारीरिक संरचना ही उभर कर आती है लेकिन व्यक्तित्व के बारे में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों, प्रयोगों, अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि व्यक्तित्व का अर्थ किसी भी व्यक्ति का बाह्य रूप ही नहीं होता बल्कि व्यक्तित्व के सम्पूर्ण अर्थ में व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक संतुलित विकास उसके गुण, विशेषताएँ, स्वभाव, आचार, व्यवहार, मनोवृत्ति, वेशभूषा, बुद्धि, उसका व्यवहार करने का ढंग आदि सभी तत्वों को समाहित किया जाता है इस प्रकार व्यक्तित्व इन सभी के मिले जुले रूप को कहा जाता है । जब आप कहते हैं मोहन का व्यक्तित्व अच्छा है'' या राधा का व्यक्तित्व कितना सुन्दर है तो शारीरिक सौन्दर्य से इस कथन का तात्पर्य लगाया जाता है किन्तु व्यक्तित्व का अच्छा होना या सुन्दर होना शारीरिक गठन, अच्छे व्यवहार, अच्छी आदतों, विचारों, अभिवृतियों, रूचियों, सकारात्मकता आदि पर निर्भर करता है ।

इस प्रकार व्यक्तित्व एक **बहुआयामी (Multi- dimensional)** शब्द है जो कि सारगर्भित अर्थ लिये हुए है । व्यक्तित्व के अर्थ में वे लक्षण भी समाहित हैं जो किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्न करते हैं । जैसे - मानसिक क्षमता, परिपक्वता, प्रसन्नचित्त रहना,

सकारात्मक सोच, संवेगात्मक स्थिरता इत्यादि । ये सभी लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न पाये जाते हैं और इन्हीं लक्षणों के फलस्वरूप व्यक्तियों में भिन्नता होती है ।

व्यक्तित्व के इन्हीं गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्गीकरण किया जाता है । युंग ने इन्हीं गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये हैं -

- अर्न्तमुखी
- बर्हिमुखी
- उभयमुखी

ऐसे व्यक्ति जो शर्मीले स्वभाव के होते हैं, संकोची प्रवृत्ति के, एकान्तवासी होते हैं जिनके व्यक्तित्व के लक्षण उनके व्यवहार में अस्पष्ट व दबे रूप में दिखाई देते हैं उन्हें अर्न्तमुखी व्यक्तित्व कहा जाता है । इसके विपरीत जो व्यक्ति प्रसन्नचित्त रहते हैं विनोद प्रिय होते हैं सभी के प्रति व्यवहारकुशल होते हैं सामाजिक होते हैं अभिव्यक्ति की कुशलता लिये हुए होते हैं ऐसे व्यक्तित्व बर्हिमुखी कहलाते हैं । युंग ने इन दोनों प्रकार के व्यक्तित्वों के मिले जुले व्यक्तित्व को संतुलित व्यक्तित्व 'कहा है व जो अर्न्तमुर्खी व बर्हिमुखी दोनों प्रकार के व्यक्तित्वों की विशेषता लिये हुए होते हैं उन्हें उभयमुखी व्यक्तित्व कहा जाता है ।

मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि व्यक्तित्व स्थिर नहीं है यह परिवर्तनशील है अर्थात व्यक्तित्व दूसरों को प्रभावित करता है व दूसरों से प्रभावित भी होता रहता है व्यक्ति व्यक्तित्व के कुछ गुण दूसरों से ग्रहण करते हें किसी विशेष व्यक्ति या समूह के साथ उनका व्यवहार भिन्न प्रकार का होता है व उसी व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति या समूह के साथ भिन्न प्रकार का । इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व को प्रभावित करने में विभिन्न कारकों का योगदान होता है ये कारक मुख्य रूप से दो हैं वंशानुगत व वातावरण ।

इस इकाई में व्यक्तित्व के गुणों, व्यक्तित्व के प्रकारों व इसे प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

11.2 व्यक्तित्व के गुण

11.2.1 गुणों का अर्थ

व्यक्तित्व के गुण हमारे व्यवहार का एक मुख्य प्रकार का ढंग है । व्यक्तित्व के गुणों को दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व के लक्षण भी कहा जाता है । मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की अवधारणा के अन्तर्गत गुण सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की है । व्यक्तित्व की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार के गुणों द्वारा ठीक वैसी ही बनी होती है जैसे एक मकान की संरचना छोटी-छोटी ईटों से बनी होती है ।

व्यक्तित्व इन्हीं गुणों का गत्यात्मक संगठन (Continuous Configration) है किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिभाषित करना, उसका चित्रण करना, उसका सही वर्णन करना कठिन कार्य है । इसलिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों को निर्धारित किया गया है जिसके आधार पर व्यक्तित्व का वर्णन करना सरल हो जाता है ये गुण होते हैं - बुद्धिमान, सक्रिय, मंदित, विनोदप्रियता सर्तकता आदि । ये सभी गुण व्यक्ति के व्यवहार में

परिलक्षित होते हैं । गुणों का सामान्य अर्थ होता है व्यक्ति के व्यवहारों का वर्णन" व्यक्ति जैसा व्यवहार करता है उसके व्यवहार में उसके गुणों की अभिव्यक्ति होती है ।

"General meaning of traits is a description of Human Behaviour"

गैरेट के शब्दों में - "व्यक्तित्व के गुण, व्यवहार करने की निश्चित विधियाँ हैं जो प्रत्येक व्यक्ति में बहुत कुछ स्थायी होती है । व्यक्तित्व के गुण, व्यवहार के बहुसंख्यक स्वरूपों का वर्णन करने की स्पष्ट एवं संक्षिप्त विधियाँ हैं ।'

"Personality traits are distinctive ways of behaving, more or less permanent for a given individual. Personality traits are successful ways of describing the multifold aspects of behavior".

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व के कोई विशेष गुण का आइना होता है ।

"किसी गुण को गुण कहलाने के लिये यह आवश्यक है कि उस गुण के साथ संगति (Consistency) का गुण भी हो" अर्थात व्यक्तित्व का वह गुण तभी गुण कहलाने के योग्य होगा जब वह प्रत्येक परिस्थिति में पूर्ण स्थायित्व के साथ मौजूद रहेगा । किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का गुण ईमानदारी है तथा ईमानदारी को उसके व्यक्तित्व का गुण तभी माना जायेगा जब वह व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में ईमानदार रहता हो । यदि वह व्यक्ति कभी ईमानदारी दिखलाता है और कभी नही तो तब ईमानदारी उसके व्यक्तित्व का गुण नहीं मानी जायेगी । इस तथ्य को समझने के लिये हम राजा हरिशचन्द्र का उदाहरण ले सकते हैं कि राजा हरिशचन्द्र सत्यनिष्ठ थे यह उनके व्यक्तित्व का गुण था जो सदैव उनके व्यवहार से अभिव्यक्त होता था । राजा हरिशचन्द्र ने विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी सत्य का साथ नहीं छोड़ा उनके व्यक्तित्व में सत्यनिष्ठा सदैव विद्यमान रही ।

इसी प्रकार गुण कहलाने के लिये आवश्यक है कि उसमें स्थिरता भी हो दूसरे शब्दों में गुण कहलाने के लिये उस गुण में कम से कम थोड़े समय तक स्थिरता रहनी चाहिये तभी वह व्यवहार में दिखाई देगा, व्यवहार में लाया जा सकेगा और व्यक्तित्व का गुण कहा जायेगा । उदाहरणस्वरूप कोई व्यक्ति एक महीना ईमानदार रहता है और उसके बाद नहीं तो वह व्यक्ति ईमानदार नहीं कहलायेगा अर्थात ईमानदारी उसके व्यक्तित्व का गुण नहीं कहलायेगी । अत: गुणों में स्थायित्व का होना भी आवश्यक होता है । गुण के अर्थ को निम्न चित्र द्वारा भली भांति समझा जा सकता है ।

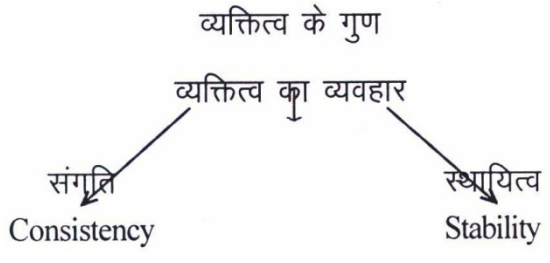

इस प्रकार गुणों के अर्थ में गुण की संगति व गुण का स्थायित्व सम्मिलित है यदि किसी व्यक्ति में कोई गुण पूर्ण संगति व पूर्ण स्थापित्व के साथ उपस्थित है तो वह उस व्यक्ति का गुण माना जायेगा ।

गुणों के प्रकार : (Types of Traits) व्यक्तित्व के गुणों को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग रूप से श्रेणीबद्ध किया है । व्यक्तित्व के गुण अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे - मानवीय, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, मानसिक, धार्मिक, नैतिक आदि । कुछ मनोवैज्ञानिक इन्हें आदर्श व व्यावहारिक दो प्रकारों में विभाजित करते हैं । कुछ इन्हें प्रधान गुण व कुछ गौण गुण नाम देते हैं । ये सामान्य भी होते हैं व्यक्तिगत भी । कुछ गुण स्थायी होते हैं । कुछ गुण अस्थायी होते हैं । इन्हीं गुणों के आधार पर किन्हीं दो व्यक्तियों का व्यक्तित्व भिन्न होता है । प्रत्येक व्यक्तित्व में कुछ गुण अवश्य होते हैं जो व्यक्तित्व विशेष को विशिष्टता व उसे दूसरे से भिन्नता प्रदान करते हैं । ये गुण व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास भी करते हैं ये गुण परिवर्तनशील होते हैं अर्थात समय के अनुसार बदलते रहते हैं गुणों के प्रकारों को स्पष्ट करने में कुछ मनोवैज्ञानिकों का योगदान महत्वपूर्ण है इन्हीं मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिया गया गुणों का वर्गीकरण इस प्रकार है ।

11.2.2 ऑलपोर्ट का योगदान

ऑलपोर्ट का नाम व्यक्तित्व व व्यक्तित्व के गुण सिद्धान्त के साथ गहरे रूप से जुड़ा है । ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व के गुणों को मूलरूप से दो भागों में बांटा है:-

(1) **सामान्य गुण (General Traits)** : व्यक्तित्व के सामान्य गुण वे होते हैं जो किसी समाज या संस्कृति के अधिकतर लोगों में पाये जाते हैं । उदाहरणार्थ प्रभुत्व व साहस ।

(2) **व्यक्तिगत गुण (Individual Traits):** ऑलपोर्ट ने इसे व्यक्तिगत गुण के स्थान पर व्यक्तिगत प्रवृत्ति (Personal Tendency कहना ज्यादा उचित समझा है । ऑलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत गुण किसी समाज या संस्कृति के व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है । ऑलपोर्ट स्पष्ट करते हैं कि व्यक्तिगत गुणों के आधार पर ही व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है । इन्होंने सामान्य गुणों की अपेक्षा व्यक्तिगत गुणों के अध्ययन पर बल दिया । ऑलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत गुणों की संख्या लगभग 18000 है ।

ऑलपोर्ट ने व्यक्तिगत गुणों की और अधिक व्याख्या करते हुए इसे तीन भागों में बांटा है ।

(i) **प्रधान / कॉर्डिनल गुण (Main Traits):** व्यक्तिगत गुण का यह तत्व व्यक्तित्व में इतना प्रबल व प्रमुख होता है जो छिपाया नहीं जा सकता । सभी व्यक्तियों में यह गुण नहीं पाया जाता किन्तु जिसमें यह गुण होता है वह व्यक्ति इसी प्रधानगुण से चर्चित होता है जैसे महात्मागॉधी का सत्य व अहिंसा का गुण, सिकन्दर महान का असंभव को संभव बना देने का साहस, विवेकानन्द की तेजस्विता आदि ।

(ii) **केन्द्रीय गुण (Central Traits)** : यह गुण सभी व्यक्तियों में पाये जाते हैं प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 गुण ऐसे पाये जाते हैं जिसके भीतर ही उसका व्यक्तित्व सक्रिय रहता है । जैसे - सामाजिकता, आत्मविश्वास गंभीरता आदि ।

(iii) **गौण गुण (Secondary Traits):** गौण गुण ऐसे गुणों को कहा जाता है जो व्यक्तित्व के लिये कम महत्वपूर्ण, कम संगत कम अर्थपूर्ण व कम स्पष्ट होते हैं । जैसे - खाने की आदत, केश शैली, पहनावा ओलपोट ने यह स्पष्ट किया कि एक व्यक्ति के लिए एक गुण केन्द्रीय गुण हो सकता है लेकिन दूसरे के लिए वह गौण गुण हो सकता है ।

11.2.3 कैटल का योगदान

ओलपोर्ट (Alport) के बाद कैटल का नाम व्यक्तित्व के गुणों का अध्ययन करने की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है । कैटल के अनुसार "गुण अपेक्षाकृत स्थायी व व्यापक प्रतिक्रिया प्रवृत्ति होती है । Traits are comparatively more stable and comprehensive reaction tendency.

कैटल ने गुणों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया । जैसे सतही गुण, स्रोत गुण, पर्यावरण प्रभावित गुण, स्वाभाविक गुण, तथ्यात्मक गुण समानता, चित्तप्रकृति गुण । इस वर्गीकरण के आधार पर इन्होंने व्यक्तित्व के कुछ प्रमुख गुण निम्न प्रकार से बताये हैं -

(i) **प्रसन्नमुद्राः (Surgences)** इस गुण वाले व्यक्ति सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं । इनमें आत्मविश्वास अधिक होता है । धैर्य से काम करते हैं तथा किसी भी परिस्थिति में घबराते नहीं है।

(ii) **विक्षिप्त (Cyclothymla).** इन गुणों वाले व्यक्ति भावुक होते हैं ये अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने वाले होते हैं । स्पष्टवादिता इनकी मुख्य विशेषता होती है।

(iii) **मानसिक क्षमताः (Mental Capacity)-**मानसिक क्षमता की दृष्टि से कुछ व्यक्ति अत्यन्त प्रतिभाशाली होते हैं । कुछ में सामान्य प्रतिभा पायी जाती है । मानसिक क्षमता व्यक्तित्व का एक प्रमुख गुण माना गया है ।

(iv) **प्रभुत्व (Dominance):** इस गुण वाला व्यक्ति सरलता से समूह या समाज में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है, प्रभावी व्यक्तित्व का यही अर्थ है । ऐसे व्यक्ति में आत्म विश्वास बहुत अधिक होता है ।

(v) **धनात्मक चरित्र (Positive Character).** चरित्र व्यक्तित्व का एक विशिष्ट गुण है । नैतिक व्यवहार में चरित्रवान व्यक्ति विश्वसनीय होता है ।

(vi) **संवेगात्मक स्थिरता (Emotional Stability)** ये व्यक्ति संवेगात्मक दृष्टि से परिपक्व होते हैं । अपने संवेगों पर इन्हें नियंत्रण होता है । क्रोध, भय, लालच आदि के वशीभूत होकर ये कोई काम नहीं करते ।

(vii) **साहसी चक्रविक्षिप्ति (Adventurous Cyclothymic)** ये व्यक्ति अत्यन्त साहसी होते है । कठिन से कठिन कार्य को करने के लिए तैयार रहते हैं । ये मिलनसार होते हैं और विषयलिंगी व्यक्तियों से स्वस्थ मैत्रीभाव रखते हैं ।

(viii) **परिपक्वता (Maturity)** ये व्यक्ति व्यवहारकुशल होते हैं । व्यवहार में सदैव प्रौढ़ता का प्रदर्शन करते हैं । इनमें विचार व धारणाएँ परिपक्व होती हैं ।

(ix) **सामाजिकता (Socialized):** ऐसे व्यक्ति समाज में प्रिय होते हैं तथा शिष्टाचार में कुशल होते हैं । सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों में उनकी रूचि अधिक होती है ।

(x) **विश्वासपात्रता (Trustfulness)** ये व्यक्ति विश्वास पात्र होते हैं तथा इनमें कृतज्ञता का भाव होता है अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिये ये सदैव कटिबद्ध रहते हैं । ये सत्यनिष्ठ तथा ईमानदार होते है ।

(xi) **अरूढ़िवादिता (Unconventional)** ऐसे व्यक्ति रूढ़िवादी नहीं होते । इनके विचार प्रगतिशील होते हैं । समय के साथ कदम मिलाकर चलने का गुण इन व्यक्तियों में होता है ।

(xii) **सूक्ष्मदर्शिता (Sophisticating)** ऐसे व्यक्ति समस्याओं की गहराई में जाकर विचार करने के आदि होते हैं । ये शांत स्वभाव के व एकांतप्रिय होते हैं ओर प्रत्येक कार्य में तर्क से काम लेते हैं । व्यक्तित्व के कुछ अन्य गुण निम्नलिखित हैं ।

(1) परिश्रमी (2) एकाग्रचित्त (3) अनुगामी (4) आत्मविश्वास (5) आकांक्षा (6) विनम्रता (7) मिलनसार (8) विनोदप्रिय (9) सहानुभूति (10) उत्तरदायित्व की भावना ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. व्यक्तित्व के गुणों का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
2. व्यक्तित्व के गुणों को वर्गीकृत करने मे अलपोर्ट का क्या योगदान रहा है? समझाइये ।
3. कैटल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के गुणों को समझाइये ।

11.3 व्यक्तित्व के प्रकार

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य "व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग से होता है जिनके गुण एक-दूसरे से मिलते जुलते हैं ।

व्यक्तित्व के प्रकारों का अध्ययन दो आधारों पर किया गया है -

1.3.1 शारीरिक संरचना के आधार पर

शारीरिक संरचना के आधार पर अन्य वर्गीकरण निम्न है -

1.3.1.1 हिपोक्रेट्स का वर्गीकरण

हिपोक्रेट्स (Hippocrates) ने (400 B.C.) में शरीर के द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बताये । इनके अनुसार मनुष्य के शरीर में चार प्रमुख द्रव पाये जाते हैं -

(i)काला पित्त (Black Bile) (ii) पीला पित्त (Yellow Bile)

(iii) रक्त (Blood) (iv) कफ या श्लेष्मा (Phlegm)

प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों में से किसी एक द्रव की प्रधानता उस व्यक्ति का स्वभाव या चित्त की प्रकृति निर्धारित करती है ।

हिपोक्रेटस द्वारा दिया गया द्रव आधारित वर्गीकरण इस प्रकार है -

(i) **काला पित्त**: ऐसे द्रव की प्रधानता वाले व्यक्ति उदास, मंदित व निराशावादी होते हैं ।

(ii) **पीला पित्त**: ऐसे व्यक्ति स्वभाव से चिड़चिड़े रहते हैं । प्राय: बेचैन रहते हैं । तुनुकमिजाज और गुस्सैल भी होते हैं ।

(iii) **रक्त** : रक्त की प्रधानता वाले व्यक्ति खुशमिजाज, उत्साही व आशावादी होते हैं ।

(iv) **कफ और श्लेष्मा**: ऐसे व्यक्ति शान्त और निष्क्रिय प्रकार के होते हैं इनमें भाव शून्यता व विरक्ती के गुण पाये जाते हैं ।

11.3.1.2 रोस्टन का वर्गीकरण

रोस्टन 1824 ने सबसे प्रभावकारी व्यक्तित्व के प्रकार विकसित किये हैं, जिनका आधार शारीरिक संरचना था ।

इन्होंने व्यक्तित्व के चार प्रकार बताये -

(i) **प्रमस्तिष्कीय प्रकार: (Cerebral Type)** ऐसे व्यक्ति दुबले पतले व लम्बे डील डौल के होते हैं ।

(ii) **पेशीय प्रकार (Muscular Type)** : ऐसे प्रकार के व्यक्तियों की मांसपेशियाँ गढ़ी हुई होती हैं व पुष्टकाय होते है

(iii) **आत्मसात्करणी प्रकार (Digestive type)** ऐसे लोग गोल-मटोल शारीरिक संरचना वाले होते हैं ।

(iv) **श्वसनी प्रकार (Respiratory Type)** इनकी शारीरिक संरचना किसी विशेष प्रकार की ना होकर मिली जुली प्रकार की होती है ।

11.3.1.3 क्रेश्मर का वर्गीकरण

क्रेश्मर (Kretschmer) जो एक जर्मन मनोचिकित्सक थे । इन्होंने अपनी पुस्तक (Physique and Character 1925) में शारीरिक संरचना एवं गुणों के आधार पर व्यक्तित्व को चार प्रकार से विभाजित किया ।

(i) **कृशकाय प्रकार (Athenic Type)** : इस तरह के व्यक्तियों का कद लम्बा, शरीर दुबला पतला, वजन आयु के अनुसार कम एवं माँसपेशियाँ विकसित नहीं होती हैं । इनके स्वभाव में चिडचिडापन पाया जाता है । इनमें काल्पनिक दुनियां में भ्रमण करने एवं सामाजिक दायित्व से दूर रहने की प्रवृति देखी जाती है ।

(ii) **पुष्टकाय प्रकार (Atletic Type)** इस प्रकार के व्यक्तियों का शारीरिक कद ना अधिक लम्बा, शरीर ना अधिक मोटा होता है । इनकी मांसपेशियाँ विकसित एवं गठित होती हैं । इनका शरीर सुडौल एवं संतुलित होता है । ऐसे व्यक्ति स्वभाव से भी संतुलित एवं विभिन्न परिरिथतियों के साथ सरलता से समायोजन करने वाले होते हैं ।

(iii) **स्थूलकाय प्रकार (Pyknic Type)** इस प्रकार के व्यक्तियों का कद छोटा, शरीर भारी व गोलाकार होता है। ऐसे व्यक्ति सामाजिक, खाने-पीने व सोने के शौकीन होते हैं और स्वभाव से खुशमिजाज होते हैं ।

(iv) **विशालकाय प्रकार (Dysplastic type)** इस श्रेणी के व्यक्तियों में ऊपर वर्णित तीनों प्रकारों में से किसी एक का भी स्पष्ट गुण नहीं मिलता बल्कि तीनों प्रकारों के गुण मिले जुले रूप में मिलते हैं।

11.3.1.4 शेल्डन का वर्गीकरण

शेल्डन (Sheldon) 1940 ने शारीरिक संरचना एवं शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्तित्व को तीन प्रकारों में बांटा और प्रत्येक प्रकार के गुणों को भी स्पष्ट किया । ये तीनों प्रकार निम्नलिखित हैं :-

(i) **एण्डोमार्फी (Endomorphy)** इस प्रकार के व्यक्ति शरीर से मोटे, कद में नाटे एवं गोलाकार आकृति के होते हैं । ऐसे व्यक्ति आराम पसंद, खुशमिजाज, सामाजिक, खाने-पीने की चीजों के प्रति रूचि रखने वाले होते हैं ।

(ii) **मेसोमार्फी (Mesomorphy)** इस प्रकार के व्यक्तियों की माँसपेशियाँ विकसित होती हैं। ऐसे व्यक्ति स्वभाव से साहसी दृढ निश्चय वाले, कर्मठ व आशावादी होते हैं इनके स्वभाव में आक्रामकता एवं आदेशात्मकता पायी जाती है ।

(iii) **एक्टोमार्फी (Ectomorphy)** ऐसे व्यक्तियों का शरीर दुबला पतला, कद लम्बा, माँसपेशियाँ कम विकसित होती हैं । ऐसे व्यक्ति स्वभाव से निराशावादी, एकान्तप्रिय, असामाजिक, सकोचशील और लजालु होते हैं ।

11.3.2 मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के प्रकारों की व्याख्या मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर भी की है । इसमें युंग (Jung) स्प्रेंगर (Spranger तथा हॉलेंड (Holland) प्रमुख हैं ।

11.3.2.1 युँग का वर्गीकरण

युँग (Carl G Jung 1923) ने अपनी पुस्तक (Psychological Types) में व्यक्तित्व के मुख्यत: दो गुणों का वर्गीकरण किया है -

(1) बर्हिमुखी (Extrovert) बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति सामाजिक, आशावादी, यथार्थवादी, उत्साही एवं खुशमिजाजी होते हैं । इनकी समायोजन क्षमता अच्छी होती है । ये विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्यवान और कार्यशील होते हैं । ये विनोदप्रिय होते हैं और खाने-पीने, पहनने व्यक्तित्व को आर्कषक बनाने में अत्यन्त रूचि लेते हैं, साहसी होते हैं । प्रत्येक कार्य को करने की इच्छाशक्ति रखते हैं ।

(i) विचारवान तार्किक बर्हिमुखी अपना जीवन तर्क प्रधान कार्यो में व्यतीत करते हैं जैसे वकील, शिक्षक, नेता आदि ।

(ii) विचारप्रधान भावुक बर्हिमुखी स्वयं बड़े-बड़े कार्यो को करने में सक्षम होते हैं ।

(iii) भावप्रधान बर्हिमुखी कल्पनाशील होते हैं । ये गुण प्राय: स्त्रियों में पाये जाते हैं ।

(2) अन्तर्मुखी (Introvert) व्यक्तियों में आत्म केन्द्रता, लज्जाशीलता, रूढ़िवादिता पायी जाती है । ये स्वभाव से सन्देही व शंकालु होते हैं । इनकी साहित्यिक व आध्यात्मिक विषयों के प्रति रूचि होती है । इनमें सामाजिकता व विनोदप्रियता का अभाव पाया जाता है ।

विचारप्रधान तार्किक अन्तर्मुखी सत्य की खोज में रहते हैं । भावप्रधान अन्तर्मुखी व्यक्ति संसार को प्रकाश देने वाले महापुरूष भी होते हैं ।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक द्वारा युंग द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के इन दोनों प्रकारों की आलोचना की गई है ने इन मनोवैज्ञानिकों का कहना था कि सभी लोग इन दोनों श्रेणियों में ही आये ऐसा आवश्यक नहीं है । अधिकतर लोगों ने इन दोनों श्रेणियों के गुण पाये जाते हैं । ऐसे व्यक्तियों को मनोवैज्ञानिकों ने "उभयमुखी" कहा है ।

(3) उभयमुखी (Ambivert) ऐसे व्यक्ति जिनमें व्यक्तित्व में अन्तर्मुखी एवं बर्हिमुखी दोनों प्रकार की विशेषताएँ पायी जाती हैं । ऐसे व्यक्ति एक परिस्थिति में बर्हिमुखी के रूप में व दूसरी परिस्थिति में अन्तर्मुखी व्यवहार करते हैं ।

इस दृष्टि से उभयमुखी व्यक्तित्व लगभग संतुलित होता है । संसार के अधिकतर व्यक्ति इसी श्रेणी में आते हैं ।

11.3.2.2 स्प्रेंगर का वर्गीकरण

स्प्रेंगर (Spranger) 1920 ने अपनी पुस्तक (Types of Men) में व्यक्तित्व के छः आदर्श प्रकार बताये हैं-

(i) **सैद्धान्तिक प्रकार (Theoretical Type)** व्यक्तित्व का यह प्रकार सच्चाई पर अधिक बल देता है और पूरे संसार को एक युक्तिमूलक (Rational) ढंग से देखता है ।

(ii) **आर्थिक प्रकार (Economic Type):** इस प्रकार के व्यक्ति धन से सम्बन्धित और लाभदायक वस्तुओं एवं व्यवहारों को अधिक महत्व देते हैं ।

(iii) **सौन्दर्यबोधी प्रकार (Aesthetic Type):** ऐसे व्यक्तित्व सुसंगति, सौन्दर्य, आकृति, आकार को महत्व देते हैं व जीवन को अधिक आकर्षक बनाने में विश्वास रखते हैं ।

(iv) **सामाजिक प्रकार (Social Type)** ऐसे व्यक्तित्व सामाजिक होते हैं । समाज के अन्य लोगों को स्नेह एवं प्यार करते हैं, उनकी मदद करते हैं ।

(v) **राजनैतिक प्रकार (Political Type)** ऐसे व्यक्तित्व शक्ति, प्रभुत्व, वैयक्तिक अधिकार एवं प्रभाव दिखाने में अधिक विश्वास रखते हैं ।

(vi) **धार्मिक प्रकार (Religious Type)** ऐसे व्यक्तित्व ब्रह्माण्ड के साथ एकता व मानव समाज को समझने पर अधिक बल देते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. शारीरिक संरचना के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों की व्याख्या कीजिए?
2. युंग द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के वर्गीकरण को समझाइये?
3. स्प्रेंगर ने व्यक्तित्व के कौन से आदर्श प्रकार बताये हैं? समझाइये ।

11.4 व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने में मुख्यतः दो कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

11.4.1 वंशानुगत कारक (Hereditary Factors)

11.4.1.1 शारीरिक संरचना एवं शारीरिक स्वास्थ्य

शारीरिक संरचना से अर्थ व्यक्ति के शरीर के कद, रंग, गठन, रूप इत्यादि से होता है। जिस व्यक्ति की शारीरिक संरचना सुडौल एवं संतुलित होती हैं । उसका शारीरिक स्वास्थ्य भी प्राय: अच्छा होता है । व्यक्ति के व्यक्तित्व पर उसकी शारीरिक संरचना एवं शारीरिक स्वास्थ्य भी प्रभाव डालते हैं ।

जिन व्यक्तियों का शारीरिक स्वास्थ्य एवं संरचना आर्कषक एवं सुन्दर होती है उन व्यक्तियों में आत्मविश्वास सामाजिकता, श्रेष्ठता का भाव, समयनिष्ठा के गुण पाये जाते हैं । माता-पिता, पास-पडौस एवं अन्य लोगों का व्यवहार भी उनके काफी अनुकूल होता है । इसके ठीक विपरीत जिन व्यक्तियों का शारीरिक स्वास्थ्य खराब एवं संरचना बेडौल और आर्कषणहीन होती है उन्हें अधिकतर लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और ऐसे व्यक्तियों में हीनता का भाव, संवेगात्मक अस्थिरता, संकोचशीलता आदि गुण विकसित हो जाते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शारीरिक संरचना एवं शारीरिक स्वास्थ्य व्यक्तित्व को एवं व्यक्तित्व के गुणों को प्रभावित करते हैं ।

11.4.1.2 शारीरिक रसायन (Physical Chemistry): व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले जैविकीय कारकों में शरीर रसायन महत्वपूर्ण होता है । प्राचीन काल से ही व्यक्तित्व में स्वभाव का कारण उसके शरीर में रसायनिक तत्वों को माना गया है । यह पाया जाता है कि आशावादी व्यक्तियों में रक्त की अधिकता, चिड़चिड़े व्यक्तियों में पीले पित्त की, निराशावादी में काले पित्त की और शांत और निष्क्रिय व्यक्तियों में कफ की अधिकता पायी जाती है । शरीर में रसायन तत्व दो प्रकार के होते हैं ।

(1) शरीर में बनने वाले (2) बाहर से शरीर से डाले गये । ये रसायन बहुत ही कम समय में रक्त प्रवाह के साथ पूरे शरीर में फैल जाते हैं और व्यक्तित्व पर इनका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगता है । उदाहरण के लिए नशीले पदार्थो जैसे - शराब, तम्बाकू मांग, गांजा आदि का प्रभाव तो तत्काल ही व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक दृष्टि पर दिखायी पड़ता है ।

रक्त में ग्लूकोज की कमी या अधिकता हो जाने से व्यक्तित्व प्रभावित होता है । रसायनिक पदार्थों जैसे विटामिन्स, आयरन आदि की कमी से शारीरिक और मानसिक रोग हो जाते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्तित्व निर्धारण में शरीर रसायन का भी महत्व होता है ।

11.4.1.3 स्नायुमण्डल (Nervous System) व्यक्तित्व के जैविकीय निर्धारकों में स्नायुमण्डल का भी महत्वपूर्ण स्थान है, स्नायुमण्डल में दो भाग हैं ।

(i) **सुषुम्ना (Spinal Cord):** यह सहज क्रिया का संचालन करती है इसमें दो प्रकार की नाडियां होती हैं। (1) संवेदी नाड़ियाँ (2) कार्यवाहक नाडियाँ । संवेदी नाड़ियाँ संवेदना को संग्रहको से स्नायु केन्द्र तक पहुंचाती है और कार्यवाहक नाड़ियाँ स्नायु केन्द्र से मांसपेशियों तक सूचना पहुंचाती हैं । ये नाड़ियाँ संग्रहको और प्रभावकों में परस्पर सम्बन्ध जोड़ती हैं ।

(ii) **मस्तिष्क** (Brain) उच्च मानसिक क्रियाओं जैसे - बुद्धि, निर्णय, स्मृति आदि का आधार मस्तिष्क है । संवेगों का अनुभव भी मस्तिष्क के द्वारा ही होता है । इस प्रकार मस्तिष्क की क्रियाऐं व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण निर्धारक है ।

11.4.1.4 अन्त: स्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine Glands): प्राय: देखा जाता है कि कभी-कभी हम लोग बहुत सक्रिय हो जाते है कभी-कभी निष्क्रिय, कभी-कभी उदास और विषादी भी हो जाते हैं । इसका कारण हमारे शरीर में होने वाले रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनका नियंत्रण कुछ ग्रंथियों द्वारा होता है । मानव शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ होती हैं । बर्हिस्रावी ग्रंथियाँ व्यक्तित्व के निर्धारक के रूप में महत्व नहीं रखती क्योंकि इन ग्रंथियों का । स्राव एक विशेष पथ नलिका से होकर शरीर से बाहर चला जाता है जैसे अश्रु ग्रंथियाँ और लार ग्रंथी ।

अन्त: स्रावी ग्रंथियों का महत्व व्यक्तित्व में निर्धारक के रूप में काफी अधिक है इससे निकलने वाले स्रावों को हार्मोन्स कहा जाता है जो सीधे रक्त में मिल जाते हैं ओर वही व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं, प्रमुख अन्तस्रावी ग्रंथियाँ जिससे व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है वो निम्नांकित है -

(i) **पीयूष ग्रंथि (Pituitary Gland)** इस ग्रंथि का स्थान मस्तिष्क में होता है । इस ग्रंथि को मास्टर ग्रंथि भी कहते हैं क्योंकि यह अन्य ग्रंथियों पर नियंत्रण रखने का कार्य करती है । इस ग्रंथि में अग्रवतीय भाग से एक हार्मोन्स निकलता है जिसे सोमैटोट्रोपीन कहते हैं । इस हॉर्मोन्स में अधिक स्रावित होने से शरीर की लम्बाई अधिक होती है और हॉर्मोन्स में कम स्रावित होने से व्यक्ति बौना हो जाता है । इसी अग्रवति भाग से दूसरा हॉर्मोन्स स्रावित होता है जिसे ट्रोफिक हॉर्मोन्स कहा जाता है । इसी हॉर्मोन्स की मदद से पीयूष ग्रंथि अन्य अन्त: स्रावी ग्रन्थियों जैसे एड्रीनल ग्रंथि, कण्ठग्रंथि, यौन ग्रंथि आदि के कार्यो पर अपना नियंत्रण रखती है । पीयूष ग्रंथि के परवर्ती भाग से पिटयूट्रीन नामक हॉर्मोन्स स्रावित होता है जिसका कार्य शरीर में एक विशेष रक्तचाप को बनाये रखना, मांसपेशियों को चिकना एवं सजग बनाये रखना तथा वृक्क को सामान्य ढंग से कार्य करने में मदद पहुंचाना होता है ।

(ii) **एड्रीनल ग्रंथि (Adrenal Gland):** यह ग्रंथि वृक्क के ऊपर होती है । इस ग्रंथि में दो भाग होते है । बाहरी भाग को ऐड्रीनल वल्कुट और भीतरी भाग को एड्रीनल मेडूला कहा जाता है, एड्रीनल वल्कुट में हार्मोन्स को कार्टिन (Cortin) कहा जाता है जो कार्बोहाइड्रेट नामक चयापचया पर नियंत्रण रखता है । कार्टिन (Curtin) की मात्रा कम हो जाने से व्यक्ति में बेहोशी की अवस्था उत्पन्न हो जाती है -व्यक्ति में थकान, अनिद्रा, निष्क्रियता के लिए भी ये हॉर्मोन्स ही उत्तरदायी है ।

एड्रीनल मेडूला द्वारा दो तरह के हॉर्मोन्स स्रावित होते हैं । (1) एड्रीनालीन (2) नार एड्रीनालीन । एड्रीनालीन हॉर्मोन्स व्यक्ति की सांवेगिक स्थिति पर नियंत्रण रखता है जैसे भय, क्रोध । ऐड्रीनालीन जब खून में मिल जाता है, तो व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों में भी समायोजित ढंग से व्यवहार करता है और सांवेगिक रूप से सजग होकर परिस्थितियों का सामना करता है ।

(iii) **कण्ठ ग्रंथि: (Thyroid Gland)** मानव शरीर में यह ग्रंथि कण्ठ के पास होती है । इस ग्रंथि से निकलने वाले हॉर्मोन्स को थाइराक्सीन कहते हैं जिसका प्रभाव शरीर में चयापचय प्रक्रियाओं पर पड़ता है । इससे शरीर का विकास काफी प्रभावित होता है । बचपन में इस हॉर्मोन्स की कमी से बौनेपन की स्थिति और बड़े होने इसकी कमी से चयापचय की गति मंद हो जाती है । जिससे व्यक्ति के हृदय की गति, श्वसन गति, रक्तचाप, शरीर का तापमान सामान्य अवस्था के कम हो जाता है । इस हॉर्मोन्स की अधिक क्रियाशील होने को हापरथाइराडीज्म कहा जाता है । इस अवस्था में व्यक्ति अधिक जोशीला, सक्रिय स्वभाव से चिन्तित हो जाता है और रक्तचाप बढ़ जाता है ।

(iv) **उपकण्ठ ग्रंथि (Parathyroid Gland)** : यह ग्रंथि कण्ठ ग्रंथि के पास में स्थित होती है और आकार में छोटी और वजन करीब एक ग्राम होता है । इस ग्रंथि से निकलने वाले हॉर्मोन्स को पारथोरमोन कहते है जो रक्त में कैल्शियम और फॉस्फेट की मात्रा का निर्धारण करता है । रक्त में पारथोरमोन होने से कैल्शियम अधिक मात्रा में रहता है । जिससे तंत्रिकाओं में उत्तेजनशीलता शिथिलता बनी रहती है और रक्त में पारथोरमोन कमी से कैल्शियम की मात्रा भी कम हो जाती है । व्यक्ति में शिथिलता बढ़ जाती है और तंत्रिका ऊत्तक ठीक से कार्य नहीं कर पाते हैं ।

(v) **पैंक्रियास ग्रंथि (Pancreas)** : मानव शरीर में यह ग्रंथि अमाशय के नीचे होती है इसकी दो कोशिकाओं से दो तरह के हॉर्मोन्स हैं । बीटा कोशिकाओं से निकलने वाले हॉर्मोन्स को इंसुलिन तथा (अल्फा) कोशिकाओं से निकलने वाले हॉर्मोन्स को ग्लूकाजोन की संज्ञा दी जाती है । रक्त में चीनी की मात्रा इंसुलिन द्वारा नियंत्रित होती है । जब उचित मात्रा में इंसुलिन स्रावित होता है तो रक्त में चीनी की मात्रा का ऑक्सीकरण हो पाता है, जिससे शरीर को पर्याप्त उर्जा मिलती है, जब इंसुलिन की मात्रा कम निकलती है तो रक्त में चीनी की मात्रा अधिक हो जाती है और वह मूत्र के सहारे बाहर आने लगती है जिसे हम मधुमेह रोग कहते है । जब इंसुलिन अधिक मात्रा मे स्रावित होता है तो रक्त में चीनी की मात्रा का ऑक्सीकरण अधिक होता है और रक्त में चीनी की मात्रा कम हो जाती है । ऐसी अवस्था में व्यक्ति चिन्तित होने लगता है भ्रम, विभ्रम अधिक होने लगता है कभी-कभी व्यक्ति बेहोशी की अवस्था में चला जाता है ।

11.4.2 पर्यावरणीय कारक

11.4.2.1 सामाजिक कारक (Social Factor):

(i) **माता-पिता (Parents)-** बच्चे के जन्म के बाद पहली अन्तःक्रिया मां के साथ फिर पिता के साथ होती है । माता-पिता का व्यवहार भी व्यक्तित्व को कई तरह से प्रभावित करता है । जैसे कुछ माता-पिता अपने बच्चों को जरूरत से ज्यादा प्यार करते हैं, कुछ काफी कठोरता से पेश आते हैं । वर्तमान में समय के अभाव के कारण अभिभावक बच्चों को आवश्यकतानुसार समय एवं स्नेह नहीं दे पाते । मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अधिक प्यार देने वाले माता-पिता के बच्चों में असुरक्षा की भावना घबराहट, समायोजन से सम्बन्धित समस्याएँ पैदा हो जाती हैं,

कठोरता से पेश आने वाले अभिभावकों के बच्चों में आक्रामकता, अधिनस्थता (Submissiveness) का गुण विकसित हो जाता है और अभिभावकों द्वारा बच्चों को समय न दिये जाने एवं प्यार न दिये जाने पर बच्चों में संकोचशीलता आत्मकेन्द्रता एवं सांवेगिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है ।

(ii) **पारिवारिक सदस्यों में आपसी सम्बन्ध (Relation between Family Members):** जिन परिवारों में माता-पिता, भाई-बहिन, दादा-दादी आदि सदस्यों के बीच आदर सम्मान प्रेम होता है तो इस तरह के वातावरण में पलने वाले बच्चे वैसे ही गुण ग्रहण कर लेते हैं, फलस्वरूप उनमें आत्मविश्वास विश्वसनीयता और श्रेष्ठता के गुण विकसित हो जाते है । इसके ठीक विपरीत जिन परिवार के सदस्यों में आपसी झगड़े एवं कलह होता है ऐसे बच्चों में हीनता का भाव अन्तर्मुखता, क्रोध, आक्रामकता, सांवेगिक अस्थिरता के गुण विकसित होने लगते हैं ।

(iii) **जन्मक्रम (Birth Order):** एडलर (Adler 1931) ने जन्मक्रम को चार भागों में प्रथम जन्मक्रम, मध्यम अंतिम एवं इकलौता बच्चा के आधार पर बांट कर अध्ययन किया और यह बताया कि प्रथम जन्मक्रम वाले बच्चे एकान्तप्रिय और अर्न्तमुखी, अंतिम जन्मक्रम वाले बच्चों में हीनता का भाव आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता की कमी और एकल इकलौते बच्चों में निर्भरता, आत्मकेन्द्रता एवं स्वार्थ की भावना पायी जाती है । एडलर के अनुसार मध्यक्रम वाले बच्चों में आत्मविश्वास और अहम अधिक होता है ।

(iv) सामाजिक अनुभव:

जिन व्यक्तियों को अपने सामाजिक जीवन में कड़वे अनुभव प्राप्त होते हैं अर्थात उन्हें सामाजिक रिश्तों में लोगों से धोखा, धिक्कार नफरत प्राप्त होती है और जिन्हें प्रतिपल संघर्ष करते रहना पड़ता है । उनके व्यक्तित्व पर इन सामाजिक अनुभवों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है । इसके विपरीत जिन लोगों के सामाजिक अनुभव अच्छे होते हैं जिन्हें सामाजिक सम्बन्धों में समाज के लोगों से प्रेम, विश्वास, शान्ति, खुशी प्राप्त होती है । जिन्हें जीवन में संघर्ष नहीं करना पड़ता उनका व्यक्तित्व आत्मविश्वास, इच्छा शक्ति व सकारात्मक सोच से भरपूर होता है ।

(v) सामाजिक वंचन

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और सामाजिक अन्त: क्रियाएँ करता है जैसे दैनिक जीवनयापन, जीवन में मूलभूत आवश्यकताएँ, पारिवारिक सुरक्षा, अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्ध आदि । जो व्यक्ति अपने जीवन में इन सभी से वंचित रह जाते हैं । उनके व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है । ऐसे व्यक्तियों में सामाजिक व्यवहार, अच्छी आदतों एवं सामाजिक सम्बन्धों का नियंत्रण नहीं रह पाता है । अत: सामाजिक जीवन की आवश्यकताऐं भी व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं ।

(vi) **परिवार का आकार एवं संरचना (Structure and Size of the Family):** कई परिवार आकार में बड़े और कई छोटे होते हैं । कुछ परिवार पितृविहीन होते हैं कुछ

मातृविहीन । जो परिवार बड़े होते हैं उनके बच्चों में ईर्ष्या, हीनता की भावना, इच्छाओं का अपूर्ण रह जाना, दब्बूपन के गुण विकसित हो जाते हैं । पितृविहीन या मातृहीन परिवार के बच्चों की पारिवारिक स्थिति भी अच्छी नहीं होती । छोटे परिवारों में बच्चों में ईर्ष्या कम पायी जाती है । उनकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं । कई बार ऐसे परिवारों में आवश्यकताओं से अधिक स्नेह और सतर्कता से बच्चों में उदण्डता और हठधर्मिता पर निर्भरता व कुसमायोजन के गुण विकसित हो जाते हैं । दोनों ही स्थिति में परिवार का आकार और संरचना व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।

(vii) **परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर: (Socio-Economic Status of Family)** व्यक्तित्व पर परिवार के सामाजिक आर्थिक स्तर का प्रभाव भी एक महत्वपूर्ण कारक है । शिक्षा व सीखने के अवसर, सुसंस्कृत परिवारों से सम्पर्क के कारण नगरीय परिवारों के बच्चों एवं सदस्यों के व्यक्तित्व का विकास अच्छा एवं सकारात्मक हो पाता है । उच्च आय वर्ग के परिवारों के व्यक्तियों के व्यक्तित्व पर नवीन ज्ञान, तकनीकी संसाधनों और आधुनिकता का प्रभाव पाया जाता है । जबकि सामान्य तौर पर ग्रामीण परिवारों में शिक्षा एवं सीखने के अवसरों की कमी, औपचारिक सामाजिक सम्बन्धों के निर्वाह के अभाव में ऐसे परिवारों के व्यक्तियों में सामाजिक व्यवहार अच्छी आदतों का विकास नहीं हो पाता । निम्न आय वर्गो के व्यक्तियों की आवश्यकताएँ, अपूर्ण रह जाती है, पौष्टिक भोजन एव शिक्षा से भी वंचित रह जाते हैं । अत: उनका व्यक्तित्व संकुचित होकर रह जाता है । यह माना जाता है कि अत्यधिक धनी और अत्यधिक निर्धन दोनों ही प्रकार के परिवार व्यक्तित्व के समुचित एवं सकारात्मक विकास में बाधक सिद्ध होते हैं ।

(viii) **समूह का प्रभाव (Effect of Group):** प्रत्येक व्यक्ति एक या एक से अधिक समूह में अन्त: क्रिया करता है । प्रत्येक समूह की एक निश्चित विचारधारा, मानक विश्वास, मूल्य होते हैं यदि ये समूह वांछित और आदर्श समूह होते है तो इनमें व्यवहार करने वाले व्यक्तियों का व्यक्तित्व भी सामाजिक मानकों के अनुकूल होता है, जैसे सामाजिक सेवा संगठन, स्वास्थ्य सेवा संगठन आदि । इसके विपरीत स्थिति में यदि समूह की विचारधारा नकारात्मक एवं कार्य व विश्वास अवांछनीय है तो ऐसे समूह में व्यवहार करने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर नकारात्मक प्रभाव पाया जाता है । जैसे कट्टर, जाति संगठन, आतंकवादी संगठन । समूह के अन्तर्गत मित्र मण्डली एवं संगति का प्रभाव भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तित्व पर देखा जा सकता है ।

(ix) **सामाजिक स्वीकृति : (Social Acceptance)** सामाजिक स्वीकृति से अर्थ है समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रशंसा एवं अनुमोदन । प्रत्येक व्यक्ति अपने माता-पिता, शिक्षक, पारिवारिक सदस्यों और अन्य सामाजिक व्यक्तियों से अपनी प्रशंसा की तीव्र इच्छा रखता है ये प्रशंसा उसके कार्यों, निर्णयों की स्वीकृति व व्यवहार से प्राप्त होती हैं । अत: व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में ऐसे गुणों को विकसित करने का

प्रयास करता है जिससे सामाजिक व्यक्तियों को प्रसन्न रखकर उनकी स्वीकृति और अनुमोदन प्राप्त कर सके और जिससे उसमें आत्मविश्वास नेतृत्व का गुण, श्रेष्ठता का भाव आदि गुण उसमें विकसित होने लगते हैं ।

दूसरी तरफ जिन व्यक्तियों के कार्यो, निर्णयों एवं व्यवहारों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं हो पाती उनमें अन्तर्मुखता, आत्महीनता, सामाजिक समायोजन की कमी, ईर्ष्या, आक्रामकता आदि गुण विकसित हो जाते हैं ।

(x) **पास-पड़ौस (Surroundings and Neighborhood):** व्यक्तित्व पर पास-पड़ौस का प्रभाव भी अधिक पाया जाता है । यदि पास-पड़ौस के लोग सभ्य, सुशिक्षित, सुसंस्कृत और अनुशासित होते हैं तो ऐसे पास-पड़ौस का प्रभाव बच्चों एवं परिवार के अन्य सदस्यों में पाया जाता है । उनमें अनुशासन की भावना, आत्म सम्मान, समझदारी, उत्तरदायित्व आदि गुणों का विकास होता है । दूसरी तरफ यदि पास-पड़ोस में झगड़ालू आपराधिक छवि के व्यक्ति अधिक होते हैं तो वहाँ रहने वाले बच्चे व अन्य लोग भी उनके असामाजिक व्यवहारों का अनुसरण करने लगते हैं ।

11.4.2.2 शैक्षिक कारक

(i) **विद्यालय का प्रभाव (Effect of School):** व्यक्तित्व के विकास में विद्यालय की प्रमुख भूमिका होती है । परिवार के पश्चात बालकों का सर्वाधिक समय विद्यालयों में व्यतीत होता है । अत: विद्यालय के आदर्शों, क्रियाकलापों, गतिविधियों, वातावरण का प्रभाव बालकों पर अवश्य पड़ता है। जिन विद्यालयों में बालकों पर ध्यान दिया जाता है। पठन-पाठन की अच्छी व्यवस्था होती है। अनुशासित शैक्षिक वातावरण होता है, अच्छी आदतें एवं संस्कार सिखाए जाते हैं उस विद्यालय के विद्यार्थियों का व्यक्तित्व जीवन पर्यन्त सक्षम बना रहता है, इसके विपरीत जिन विद्यालयों में अनुशासनहीनता, संसाधनों की कमी, अव्यवस्था, अच्छी आदतों एवं संस्कारों का अभाव, असुरक्षित वातावरण व शैक्षिक वातावरण का अभाव पाया जाता है ऐसे विद्यालय बालक के व्यक्तित्व के विकास को अवरूद्ध करते हैं ।

(ii) **पाठ्यक्रम (Curriculum):** शिक्षा का लक्ष्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। विद्यालय में विभिन्न स्तरों पर इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपयोगी पाठ्यक्रमों का चयन किया जाता है । ऐसे पाठ्यक्रम जो बालकों की रूचि, आयु मानसिक और बौद्धिक क्षमता एवं सीखने की क्षमता को ध्यान में रखकर बनाये जाते हैं, बालकों में सामाजिक, नैतिक और चारित्रिक गुणों के विकास के लिए बनाये जाते हैं । निश्चित रूप से ऐसे पाठ्यक्रम बालकों के व्यक्तित्व का विकास करते हैं । इसके विपरीत बालकों की सीखने की क्षमताओं, आयु, रूचि की अवहेलना कर केवल विषयवस्तु को रटने के आधार पर बनाये गये पाठ्यक्रम बालकों के व्यक्तित्व के विकास में बहुत बड़े बाधक हैं ।

(iii) **शिक्षक (Teacher):** माता-पिता के पश्चात व्यक्ति अपने जीवन में सर्वाधिक प्रभावित अपने शिक्षक से होते हैं । शिक्षक एक आदर्श रूप में होते हैं । शिक्षक की

मनोवृत्तियों, विश्वासों, विचारों, आदतों का अनुकरण विद्यार्थी करते हैं और अपने अन्दर उन्हीं के गुणों को विकसित करना चाहते हैं । इस दृष्टि से जो शिक्षक आदर्श होते हैं वे आदर्श व्यक्तित्व और आदर्श नागरिक का निर्माण करते हैं और जो शिक्षक विपरीत मनोदशाओं से ग्रसित होते हैं । वह अनजाने में ही अपने विद्यार्थियों के हास का कारण बनते हैं ।

(iv) **विद्यालय के साथी (Peer Group):** विद्यालय में बालक जिन बालकों की संगति में रहता है उसकी कक्षा के सहपाठी, उसके मित्र इनकी गतिविधियों ओर गुणों का प्रभाव बालक पर पड़ता है यदि ये सहपाठी, विनम्र, मिलनसार, सहयोगी प्रवृति के होते हैं तो बालक का व्यक्तित्व भी इन गुणों को ग्रहण कर लेता है और बुरे मित्रों और बुरे सहपाठियों की संगति का उसके व्यक्तित्व पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है ।

(v) **विद्यालय का वातावरण (School Environment)** : ऐसे विद्यालय जहाँ अनुशासन के विशेष नियम अपनाये जाते हैं । जैसे समय पर विद्यालय में उपस्थित होना, गणवेश-अनिवार्यता, शिक्षकों से आज्ञा लेकर कार्य करना, प्रार्थना सभा, सच बोलना, चोरी न करना, झगड़ा नहीं करना, गंदगी नहीं फैलाना वस्तुओं को व्यवस्थित रखना, स्वच्छता का पालन करना, शिक्षकों की आपसी बातचीत की भाषा, व्यवहार आदि विद्यार्थियों को आचारशील बनाते हैं । विद्यार्थियों के व्यवहार में आत्मनियंत्रण एवं आत्मनिर्भरता का भाव विकसित होता है । इसके विपरीत विद्यालय का दोषपूर्ण वातावरण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को भी दोषपूर्ण कर देता है ।

11.4.2.3 मनोवैज्ञानिक कारक

(i) **बुद्धि (Intelligence)** : बुद्धि एक ऐसी मानसिक योग्यता है जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है । मनोवैज्ञानिकों ने इसे अमूर्त चिंतन, समायोजन, अधिगम की योग्यता कहा है । बुद्धि का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी पड़ता है, तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति जल्दी सीखते हैं, उनमें विश्लेषण की, तार्किकता और चिंतन की अधिकता होती है । अत: उनमें श्रेष्ठता की भावना, कार्य करने के प्रति इच्छा शक्ति व साहस होता है, जबकि मंद बुद्धि व्यक्तियों का समायोजन भी संतोषजनक नहीं होता।

(ii) **प्रेरणा (Motivation)** : मनुष्य के जीवन में उसकी कुछ आवश्यकताएं एवं लक्ष्य होते हैं । जिन्हें वे प्राप्त करना चाहते हैं । ये आवश्यकता एवं लक्ष्य व्यक्ति को प्रयत्न करने हेतु प्रेरणा प्रदान करते हैं । यही प्रेरणा व्यक्तित्व में कर्मण्यता, कार्य के प्रति लग्न, मेहनत करने के प्रति लग्न, साहस, आत्म विश्वास ओर लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छा शक्ति का विकास करती है । जिससे व्यक्तित्व उज्जवल होता है । लक्ष्य प्राप्ति में असफलता और आवश्यकताओं की अपूर्णता व्यक्तित्व में हीनता, कुंठा, ईर्ष्या आदि गुणों का विकास करती है ।

(iii) **रूचि (Interest)** : रूचि एक प्रकार की व्यक्तिगत प्रेरणा है जो विभिन्न उद्दीपकों के प्रति व्यक्ति में झुकाव को निर्धारित करती है, प्रत्येक व्यक्ति की रूचि भिन्न-भिन्न

प्रकार की होती है और जिसके प्रति उसकी रूचि होती है व्यक्ति स्वत: उसकी ओर बढ़ता जाता है । उस कार्य को करने में लिप्त रहता है उस कार्य को करने में उसे सुखद अनुभूति प्राप्त होती है । अत: व्यक्ति की रूचियाँ उसके विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करती है जैसे संगीतज्ञ, वैज्ञानिक, गायक, चित्रकार आदि । अरूचिपूर्ण कार्यों को करने से व्यक्ति दूर भागता है । ऐसे कार्य को करने के प्रति उसकी इच्छा शक्ति नहीं होती और जिन कार्यों को करना पसंद नहीं करता उसमें उसको सुखद अनुभूति और आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, ऐसे अरूचिपूर्ण कृत्यों से व्यक्ति कुंठाग्रस्त हो जाता है ।

(iv) **अभिवृत्ति (Attitude)** व्यक्ति अपने जीवनकाल में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु अनेक परिस्थितियों व्यक्तियों, उद्दीपनों के सम्पर्क में आता है । जिन उद्दीपकों, व्यक्तियों, परिस्थितियों से लक्ष्य प्राप्ति में सहायता मिलती है, व्यक्ति की अभिवृत्ति उनके प्रति धनात्मक होती है व्यक्ति उनके प्रति अनुकूल संवेग व अनुकूल व्यवहार रखता है जो उसके लक्ष्य और आवश्यकता की प्राप्ति में अवरोधक होते हैं । उनके प्रति उसकी ऋणात्मक अभिवृत्ति होती है । उनके प्रति दुखद संवेग अनुभव करता है । उन परिस्थितियों से व्यक्ति दूर भागना चाहता है इस प्रकार अभिवृत्ति भी व्यक्तित्व को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

(v) **कुंठा (Frustration)** व्यक्ति सदैव ही किसी न किसी इच्छा व किसी न किसी आवश्यकता पूर्ति की चाह रखता है । जब उसकी आवश्यकता प्राप्ति या इच्छापूर्ति में बाधा होती है तो वह निराश व कुंठाग्रस्त हो जाता है । कभी-कभी यह कुंठा विशेष परिस्थिति या विशेष कार्यपूर्ति इच्छा के सम्बन्ध में होती है । किन्तु जिन व्यक्तियों को प्राय: ही असफलताओं का सामना करना पड़ता है तो यह कुंठा उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाती है और वह परिस्थितियों से पलायन, तटस्थता, आक्रामकता, अनैतिक मार्गों का अनुसरण आदि व्यवहार करने लगता है ।

(vi) **मूल्य: (Values)** मनुष्य को जीवन में अनुभव प्राप्त होते हैं और इन्हीं अनुभवों से मानव व्यवहार को दिशा निर्देश देने वाले कुछ सामान्य सिद्धान्तों का जन्म होता है जिन्हें मूल्य कहा जाता है । ये मूल्य व्यक्ति के जीवन में पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करते हैं ये मूल्य कई प्रकार के होते हैं, जैसे- धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक, मानवीय, चारित्रिक आदि जिस व्यक्ति में जिस प्रकार के मूल्य की प्रधानता पाई जाती है उस व्यक्ति का व्यक्तित्व वैसा ही बन जाता है । उदाहरणार्थ आर्थिक मूल्य की प्रधानता से व्यवसायी और राजनीतिक मूल्य प्रधानता से राजनैतिक व्यक्तित्व का विकास होता है ।

(vii) **संवेग (Emotion)** : मनुष्य के जीवन में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान होता है । ये संवेग व्यक्ति को कार्य करने की प्रेरणा देते है । सामाजिक सम्बन्धों को स्थिर रखते हैं वहीं कभी-कभी ये बाधा भी उपस्थित करते हैं, संतुलित, सकारात्मक, संवेग व्यक्तित्व का विकास करते हैं जैसे प्रेम, स्नेह, जिज्ञासा, प्रसन्नता और लगातार तीव्र

संवेगात्मक तनाव एवं प्रतिकूल संवेग जैसे ईर्ष्या, क्रोध, आलस्य, दुःख, निराशा व्यक्ति के शारीरिक विकास और व्यक्तित्व के विकास पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं ।

11.4.2.4 सांस्कृतिक कारक (Cultural Factors) - मॉर्गन एवं किंग (1971) के अनुसार "संस्कृति का तात्पर्य प्रथाओं, आदतों, परम्पराओं तथा कौशलों से है जिनसे किसी व्यक्ति या सामाजिक समूह की विशेषताओं का बोध होता है ।"

चैपलिन (1975) के शब्दों में "एक समाज को दूसरे समाज से भिन्न करने वाले रीति-रिवाजों, कला, विज्ञान तथा धार्मिक एवं राजनैतिक व्यवहारों के समन्वित समुच्चय को संस्कृति कहते हैं"

(i) **संस्कृति का प्रभाव (Effect of Culture):** संस्कृति से तात्पर्य रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, रीति-रिवाज, परम्पराओं आदि से होता है । इस दृष्टि से प्रत्येक समूह की एक विशिष्ट संस्कृति होती है । व्यक्ति के व्यक्तित्व पर इस संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । इन प्रभावों को उसके सामाजिक व्यवहार, उसके स्वभाव, उसकी आदतों के विकास एवं व्यक्तित्व के बाह्य रूप में स्पष्टतः: देखा जा सकता है।

(ii) **सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव (Effect of Cultural Values):** संस्कृति के अर्थ में परम्पराएँ, मान्यताएँ, लोक परम्पराएँ, विश्वास, भी सम्मिलित है ये विश्वास ये आदर्श सांस्कृतिक मूल्य कहे जाते हैं, जिन संस्कृतियों में धर्म निरपेक्षता, सहअस्तित्व, शान्तिप्रियता न्याय, एक दूसरे की स्वतंत्रता व समानता की रक्षा एवं लचीलेपन के मूल्य पाये जाते हैं उन संस्कृतियों का निर्वाह करने वाले व्यक्तियों में भी समायोजन शीलता लचीलापन एवं इन मूल्यों के प्रति आस्था पायी जाती है । दूसरी ओर ऐसे सांस्कृतिक मूल्य जो कट्टरवाद हिंसा, भेदभाव पर आधारित होते हैं ऐसे सांस्कृतिक मूल्यों का निर्वाह करने वाले व्यक्तित्व भी इसी प्रकार दोषपूर्ण होते हैं ।

(iii) **संस्कृति की प्रकारों का प्रभाव (Effects of types of Culture):** संस्कृति दो प्रकार की होती है (1) भौतिक संस्कृति (2) अभौतिक संस्कृति

(1) **भौतिक संस्कृति (Concrete Culture):** इसमें भवन मस्जिद, मंदिर, मूर्तियाँ, नगरीय सम्पन्नता, धार्मिक पुस्तकें, लिखित नियम, ऐतिहासिक धरोहरें आदि सम्मिलित हैं ।

(2) **अभौतिक संस्कृति (Abstract Culture)** : इसके अन्तर्गत मूल्य आदर्श, विश्वास, विचारधारा, सिद्धान्त, रीति-रिवाज दर्शन इत्यादि आते हैं ।

संस्कृति के इन प्रकारों से व्यक्ति का व्यवहार निर्देशित होता है ओर व्यक्तित्व का विकास उस संस्कृति के अनुरूप होता है । इन प्रतिमानों की अवहेलना करने वाला निन्दा का और पालन करने वाला प्रशंसा का पात्र बनता है । उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड के लोग सुसभ्य एवं सुसंस्कृत माने जाते हैं जबकि अफ्रीकी देशों के कुछ लोग आज भी इस श्रेणी में नहीं रखे जा सकते ।

(iv) **संस्कृति और व्यक्तित्व (Culture and Personality):** संस्कृति और व्यक्तित्व दोनों परस्पर संबंधित होते हैं क्योंकि संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है ओर संस्कृति में होने वाले परिवर्तन व्यक्ति द्वारा किये जाते हैं, और संस्कृति का संचरण

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता रहता है । संस्कृति का भौतिक स्वरूप व्यक्ति के बाह्य व्यक्तित्व को सुन्दर बनाता है तो संस्कृति का अभौतिक स्वरूप व्यक्तित्व को मूल्यपरक एवं समायोजनशील बनाता है । सांस्कृतिक भिन्नता के कारण ही व्यक्तियों में भिन्नता पाई जाती है । इस सांस्कृतिक भिन्नता का प्रभाव व्यक्तित्व के शारीरिक और क्रियात्मक विकास पर भी पड़ता है । लोक कथाएँ पौराणिक कथाएँ, रीति-रिवाज, पालन-पोषण, जीवन शैली, व्यक्तित्व एवं व्यवहारों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले दोनों कारकों का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
2. वंशानुगत कारक व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण से व्यक्तित्व किस प्रकार प्रभावित होता है?
4. मनोवैज्ञानिक कारक एवं व्यक्तित्व के अंतर सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए?

11.5 सारांश

व्यक्तित्व के अर्थ में व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक संतुलित विकास उसके गुण, विशेषताएँ, स्वभाव, विचार, व्यवहार, मनोवृत्ति, वेशभूषा, बुद्धि आदि तत्वों को मिले जुले रूप में समाहित किया जाता है । जैसा कि ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व को व्यक्ति की मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन कहा है । गुणों को दूसरे शब्दों में लक्षण भी कहा जाता है । किसी भी व्यक्ति को व्यक्तित्व को परिभाषित करना, उसका सही वर्णन करना कठिन कार्य है । इसलिए मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के विभिन्न गुणों को निर्धारित किया है । ये गुण व्यक्ति के व्यवहार में दिखाई देते हैं । व्यक्तित्व के गुणों के लिये दो तत्वों का होना आवश्यक है ये तत्व हैं संगति और स्थायित्व । संगति का अर्थ है विभिन्न अवसरों पर व्यवहार की समानता व स्थायित्व का अर्थ है सभी परिस्थितियों में किसी विचार, सिद्धान्त या विश्वास पर अटल रहना । यदि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के गुण संगति व स्थायित्व लिये हुए हैं तभी वह व्यक्तित्व के गुण कहलाते हैं । व्यक्तित्व के गुण कई प्रकार के होते हैं । जैसे - सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक चारित्रिक आदि । इन गुणों में कुछ आदर्श होते हैं व कुछ व्यवहारिक । मनोवैज्ञानिकों ने कुछ गुण प्रधान व कुछ गौण बताये हैं । ऑलपोर्ट का योगदान इस क्षेत्र में सराहनीय रहा है । ऑलपोर्ट ने इन गुणों को सामान्य, व्यक्तिगत श्रेणियों में बांटा है । कैटल ने भी व्यक्तित्व के गुणों को वर्गीकृत किया है ।

व्यक्तित्व के गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों का अध्ययन किया गया है । प्राचीन काल से ही व्यक्तित्व के प्रकारों का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों को प्रेरित करता आया है । प्राचीन दार्शनिकों ने भी व्यक्ति की शारीरिक संरचना के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों का अध्ययन किया । सर्वप्रथम थियोफ्रेस्टस व हिपोक्रेटस ने मनुष्य के शरीर में पाये जाने वाले द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों, व्यक्ति के स्वभाव व प्रकृति के बारे में बताया । तत्पश्चात रोस्टन, क्रेश्मर, शेल्डन आदि ने भी शारीरिक गठन व संरचना के आधार पर कृशकाय, पुष्टकाय स्थूलकाय, विशालकाय, एण्डोमार्फी, मेसोमार्फी, एक्टोमार्फी आदि व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्णन

किया । आगे चलकर शारीरिक गुणों के स्थान पर मनोवैज्ञानिक गुणों को अधिक महत्व दिया जाने लगा । युंग ने मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर अन्तर्मुखी, बर्हिमुखी व उभयमुखी प्रकारों की व्याख्या की । स्प्रेंगर ने भी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि मनोवैज्ञानिक गुणों की प्रधानता के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों का वर्णन किया । व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास गुणों के आधार पर होता है । ये गुण व्यक्ति को वंशानुगत रूप से प्राप्त होते हैं तथा कुछ गुण पर्यावरण के साथ समायोजन करते हुए विकसित हो जाते हैं अर्थात व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करने में वंशानुगत कारक व पर्यावरणीय कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । वंशानुगत कारकों में शारीरिक संरचना, शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक रसायन, स्नायुमण्डल, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ आदि व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं । व्यक्ति का व्यवहार, उसकी मनोदशाऐ संवेग, स्वभाव उसकी शारीरिक संरचना व वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त गुणों पर भी निर्भर करता है । व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला दूसरा प्रमुख कारक पर्यावरणीय कारक है । पर्यावरणीय कारक अर्थात व्यक्ति जिन परिस्थितियों व परिवेश में रहता है । जिस वातावरण के साथ समायोजन करता है वे सभी उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं । जैसे - सामाजिक कारकों में माता-पिता पारिवारिक सदस्यों के साथ सम्बन्ध, जन्मक्रम, सामाजिक अनुभव, परिवार का आकार, सामाजिक - आर्थिक स्तर, पास-पड़ोस, समूह, शैक्षिक कारकों में विद्यालय, पाठ्यक्रम, शिक्षक, विद्यालय का वातावरण आदि व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं । मनोवैज्ञानिक कारकों में वृद्धि, प्रेरणा, अभिवृत्ति, कुंठा, मूल्य, संवेग व सांस्कृतिक कारक भी व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं । दोनों ही कारक अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं व व्यक्ति कुछ गुण जन्म के साथ लेकर पैदा होता है जो उसके व्यक्तित्व का हिस्सा होते हैं जिस पर्यावरण में यह रहता है अपने आस-पास के वातावरण के साथ समायोजन करता है, अन्तःक्रिया करता है । कुछ गुण उस पर्यावरण से प्राप्त करता है । इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करने में वंशानुगत एवं पर्यावरणीय कारक महत्ती भूमिका निभाते हैं।

11.6 शब्दावली

संगति	अनुकूलता, विभिन्न अवसरों पर समान व्यवहार
वंशानुगत	गुणसूत्रों से प्राप्त गुण
बहुआयामी	विभिन्न पक्षों को समाहित किए हुए
मनोदैहिक	मानव स्वभाव, व्यवहार एवं शरीर से सम्बन्धित
उद्दीपन	उत्प्रेरक
भौतिक	मूर्त, दिखाई देने योग्य
अभौतिक	अमूर्त

11.7 मूल्यांकन प्रश्न

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं?
2. व्यक्तित्व के वंशानुगत कारकों का उदाहरण सहित वर्णन करें?
3. व्यक्तित्व के पर्यावरणीय कारकों का उदाहरण सहित व्याख्या करें ?

4. युंग द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के प्रकारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?
5. स्प्रेंगर द्वारा वर्णित व्यक्तित्व के प्रकारों की व्याख्या कीजिए?
6. शारीरिक गुणों पर आधारित व्यक्तित्व के प्रकारों से आप कहाँ तक सहमत हैं? अपने विचारों को उदाहरण सहित समझाइये?
7. क्रेचमर और शेल्डन द्वारा दिये गये व्यक्तित्व के प्रकारों की तुलना कीजिए?
8. व्यक्तित्व के गुणों हेतु कैटल के योगदान की समीक्षा कीजिए?
9. व्यक्तित्व के गुण किन तत्वों पर आधारित होते हैं, उदाहरण देकर समझाइये ।
10. व्यक्तित्व के गुणों हेतु ऑलपोर्ट के योगदान की समीक्षा कीजिए' ।
11. बालक के व्यक्तित्व के विकास में शैक्षिक कारकों की भूमिका को अपने तर्कों द्वारा समझाइये?
12. वंशानुगत एवं पर्यावरण में से कौनसा कारक बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिये अधिक महत्वपूर्ण है? आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए ।
13. व्यक्तित्व के विकास को मनोवैज्ञानिक कारक कैसे प्रभावित करते हैं? अपने शब्दों में व्याख्या करें?
14. व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने में संस्कृति एवं समाज किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं? विस्तार पूर्वक समझाइये?
15. व्यक्तित्व के विकास में अन्त: स्रावी ग्रन्थियाँ किस प्रकार सहायक हैं? प्रमुख अन्त: स्रावी ग्रंथियों का वर्णन कीजिए?

11.8 संदर्भ ग्रंथ

1. अस्थाना, विपिन व श्वेता, मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा
2. दत्ता, एन.के. - शिक्षा मनोवैज्ञानिक आधार, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा ।
3. जमुआर, कृष्ण कुमार, मनोविज्ञान की रूपरेखा, बिहार हिन्दी ग्रंन्दी अकादमी, पटना, 1973
4. जायसवाल सीताराम - व्यक्तित्व मनोविज्ञान, राधा प्रकाशन, आगरा ।
5. माथुर, एस.एस. - शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
6. पाठक, पी.डी. - शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
7. शर्मा, पी.आर. - शिक्षण 'अधिगम एवं विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
8. सिंह, अरूण कुमार आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006
9. सिंह अरूण कुमार, उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006

10. सुलैमान, मुहम्मद, सामान्य मनोविज्ञान: मूल प्रक्रियाएँ एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006
11. वर्मा प्रीति, आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1980
12. उपाध्याय भवानी शंकर, कार्ल गुस्ताव युंग: विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1983
13. योगेन्द्र जीत, सामान्य मनोविज्ञान की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1985, पृ. 345
14. Baron Robert, Psychology, 2008, Pearson Education, New Delhi.
15. Chandrana, Harish M., Personality Development: Modern Methods and Techniques, Paradise Publishers, Jaipur,2008
16. Dadu, Pratibha, A Study of Personality, Valves and religious attitude Radha Publications, New Delhi 2002.
17. Guilford, J.P., Personality, Surjeet Publication, New Delhi, 2007.
18. Hall & Lindsey, Theories of Personality, 2009
19. King & Morgan, Introduction to Psychology Mc Graw Hill Publication, New York.
20. Sharma Prahlad Sharan, Dictionary of Education MC Grall Hill, New york, 1976.

इकाई 12

वैयक्तिक विभिन्नताएँ : संकल्पना, प्रकृति एवं विशेषताएँ, प्रकार, क्षेत्र, कारण, मापन विधियाँ

(Individual Differences : Concept, Nature and Characteristics, type, Scope, causes, Measuring Method)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 वैयक्तिक विभिन्नता की संकल्पना

12.2.1 वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ

12.2.2 वैयक्तिक विभिन्नता की परिभाषा

12.3 वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति एव विशेषताएँ

12.4 वैयक्तिक विभिन्नता के प्रकार

12.4.1 अन्तर वैयक्तिक विभिन्नताएँ

12.4.2 अन्त: वैयक्तिक विभिन्नताएँ

12.5 वैयक्तिक विभिन्नता के क्षेत्र

12.5.1 शारीरिक क्षेत्र

12.5.1.1 शारीरिक विभिन्नताएं

12.5.1.2 गत्यात्मक योग्यता विभिन्नताएं

12.5.2 मानसिक क्षेत्र

12.5.2.1 बुद्धि भिन्नता

12.5.2.2 उपलब्धि भिन्नता

12.5.2.3 अभिक्षमता भिन्नता

12.5.2.4 विशिष्ट योग्यता भिन्नता

12.5.3 संवेगात्मक क्षेत्र

12.5.3.1 संवेगात्मक भिन्नता

12.5.3.2 अभिवृत्तियों में भिन्नता

12.5.3.3 रूचियों में भिन्नता

12.5.4 सामाजिक क्षेत्र

12.5.4.1 सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नता

12.5.4.2 आदर्श मूल्यों एवं नैतिकता में भिन्नता
12.5.4.3 जातीय एवं राष्ट्रीय भिन्नता
12.5.4.4 आत्म धारणाओं में भिन्नता
12.6 व्यक्तिक विभिन्नता के कारण
12.6.1 वंशानुक्रम
12.6.2 पर्यावरण
12.6.3 अन्य कारण
12.6.3.1 आयु
12.6.3.2 परिपक्वता
12.6.3.3 लिंग
12.6.3.4 रचनात्मक शक्ति
12.6.3.5 जाति, प्रजाति, संस्कृति और राष्ट्र
12.7 वैयक्तिक विभिन्नता की मापन विधियाँ
12.7.1 परीक्षणों के आधार पर
12.7.2 शिक्षण निरीक्षण के आधार पर
12.7.3 अभिलेखों के आधार पर
12.7.4 अप्रमाणिक विधियाँ
12.7.5 प्रमाणिक विधियाँ
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 मूल्यांकन प्रश्न
12.11 सन्दर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- वैयक्तिक विभिन्नता के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- वैयक्तिक विभिन्न के अर्थ और परिभाषा की व्याख्या कर सकेंगे ।
- वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति और विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे ।
- वैयक्तिक विभिन्नता के प्रकारों की विवेचना कर सकेंगे ।
- वैयक्तिक विभिन्नता के कारकों को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- वैयक्तिक विभिन्नता के मापन की विधियों की व्याख्या कर सकेंगे ।

12.1 प्रस्तावना

संसार में बहुत सारी विभिन्नताएं पाई जाती है ये सभी विभिन्नताएं प्रकृति के द्वारा सृजित होती है । अपने आस पास हम विभिन्न प्रकार की निर्जीव और जीव जैसे फल, सब्जी,

जानवर, चिडियाँ, मिट्टी, पत्थर इत्यादि चारों और पाते है । इन सभी में विभिन्नता पाई जाती है । कहीं पर लाल मिट्टी, कही पर काली मिट्टी, कही पर दोमट मिट्टी, कही पर बालू रेत पाई जाती है ये सभी सरंचना और उत्पति इत्यादि में भिन्न होती है पर इनमें कुछ समानता भी होती है । ठीक इसी प्रकार अपने आस-पास हम सभी लोग दूसरे व्यक्ति को कभी भिन्न पाते है । तो कभी कभी अपने समान पाते है । इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से समान होते हुए भी उससे भिन्न है । शारीरिक दृष्टि से कुछ शारीरिक रुप से स्वस्थ एवं सुन्दर हो सकते है । जबकि कुछ व्यक्ति कुरुप और अपंग हो सकते है । इसी प्रकार कुछ व्यक्ति व्यवहार कुशल भावात्मक रुप से स्थिर होते है तो अन्य व्यक्ति अव्यावहारिक व सांवेगिक अस्थिरता लिए दिखाई देते है । इसी प्रकार कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों मे विभिन्नता देखने को मिलती है । शारीरिक आकृति, लिंग आयु के अन्तरों के बिना किसी परीक्षण व तकनीक से पहचान लिया जाता है । लेकिन व्यक्तिगत अन्तर से संज्ञानात्मक व व्यक्तित्व के क्षेत्र में विचार शैली, चिन्तन, अधिगम, एक भावात्मक क्षेत्र में भी पाए जाते है । व्यक्तिगत विभिन्नताओं के फलस्वरुप उन्नीसवीं शताब्दी में वैयक्तिक मनोविज्ञान का जन्म हुआ और व्यक्ति की मानसिक शक्ति व परीक्षण होने लगा । आज व्यक्तिगत भिन्नता की विचारधारा ने शिक्षा को बहुत प्रभावित किया है । इसको समझे बिना शिक्षण असम्भव है । शिक्षण की प्रभावित व उच्च परिणामों को प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत विभिन्नताओं को जानना आवश्यक है ।

12.2 वैयक्तिक विभिन्नता का सम्प्रत्यय

विश्व में न जाने कितने प्राणी है और सभी एक दूसरे से भिन्न है वे एक दूसरे से किसी न किसी दृष्टि से भिन्न है । मनोविज्ञान मे इस भिन्नता पर विचार करते है तो हमारा क्षेत्र व्यक्ति-व्यक्ति की भिन्नता तक सीमित रहता है । मनोविज्ञान की भाषा में कभी भी दो व्यक्ति एक से नहीं होते है । यहां तक कि जुडवा बच्चों में भी असमानता पाई जाती है । इस दृष्टि से वैयक्तिक भिन्नता प्रकृति द्वारा स्वाभाविक गुण है । संसार के सभी प्राणियों को उनकी कुछ समानता व असमानता के आधार पर समूहों में विभाजित किया जाता है । एक ही जाति के प्राणियों में उनकी कुछ एक सी विशेषताओं के कारण पहचाना जा सकता है । परन्तु कोई भी एक प्राणी दूसरे से किसी ना किसी विशेषता के कारण निम्न होता है ।

अत: इन विभिन्नताओं और अन्तरों के फलस्वरुप सभी प्राणियों या जीवों को उनकों आकार, आकृति, स्वभाव व अन्य वैयक्तिक व्यवहारों के पक्षों के आधार पर अलग किया जा सकता है । हम में से कुछ अधिक स्वस्थ, उत्साह से भरपूर है तो कुछ अस्वस्थ या कमजोर सदैव चिढ़चिढाते रहते है । किसी की आंखें काली और किसी की भूरी या नीली है । हम में से कुछ छात्र या आदमी है और कुछ छात्राएं है । इनमें से कुछ बहुत जल्दी स्मरण कर लेते है और कुछ धीमी गति से करते है और भूल भी जल्दी जाते है । कुछ प्रतिक्रिया तुरन्त देते है और कुछ प्रतिक्रिया देने में समय लगाते है । इस प्रकार हम से कोई भी एक समान नहीं होता है, अत: इन्हीं विभिन्नताओं और अन्तरों के वैयक्तिक विभिन्नता कहते है । वैयक्तिक विभिन्नता के अर्थ को कार्टर बी.गुड (1959) के शब्दकोश में इस प्रकार दिया गया है :-

- वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ व्यक्तियों में कोई भी एक विशेषता या कई विशेषताओं में अन्तरों या विचलनों के कारण भिन्नता होती है ।
- व्यक्ति एक व्यक्ति से दूसरे में भिन्नता उनके सम्पूर्णता में विभेद होने के कारण वैयक्तिक विभिन्नता होती है ।

उपरोक्त दोनों व्याख्याओं के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है या परिभाषा का निरुपण इस प्रकार किया जा सकता है ।

व्यक्ति विशेष में उनके विभिन्नताओं के आधार पर एक दूसरे से भिन्न किया जा सकता है और विशिष्टता प्रदान की जा सकती है इसको वैयक्तिक विभिन्नता कहा जाता है । मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के बाह्य अंग-प्रत्येंगों की भिन्नता के साथ-साथ उनकी आन्तरिक शक्तियों की भिन्नता का भी अध्ययन किया है और उनके मापने की विधियों का भी विकास किया है और इन सभी के आधार पर व्यक्ति व्यक्ति की भिन्नता स्पष्ट की जा सकती है ।

12.2.2 वैयक्तिक भिन्नता की परिभाषाएँ

वैयक्तिक विभिन्नता का वैज्ञानिक अध्ययन 19 वीं शताब्दी में सर फ्रान्सिन गाल्टन ने की थी, उनके बाद 20 वीं शताब्दी में पीयरसन, कैटिल, टरमैन, टायलर और स्किनर इत्यादि ने वैयक्तिक भिन्नता के कारक तत्वों जैसे बुद्धि, रुचि, अभिरुचि, अभिक्षमता आदि के मापन की विधियों का आविष्कार किया जिन्हें आज परीक्षण के नाम से जाना जाता है । वर्तमान में वैयक्तिक भिन्नता में व्यक्ति के उन सभी तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जिसकी वैज्ञानिक विधि से माप की जा सकती है । स्किनर मनोवैज्ञानिक के अनुसार आज हम वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ सम्पूर्ण व्यक्तित्व के किसी भी मापीय पहलू को सम्मिलित करने से लेते है ।

उपरोक्त परिभाषा में व्यक्ति के किसी भी मापीय गुण अथवा लक्षण को वैयक्तिक विभिन्नता का आधार माना गया है परन्तु इसमें व्यक्तियों के गुण विशेष की स्थिति स्पष्ट करने का उल्लेख नहीं किया गया है । वर्तमान में किसी व्यक्ति की किसी गुण की दृष्टि से, स्थिति को उस गुण के मध्यमान से विचलन से स्पष्ट किया जाता है इस दृष्टि से वैयक्तिक विभिन्नता को इस रुप में परिभाषित किया जा सकता है ।

वैयक्तिक विभिन्नता से तात्पर्य व्यक्ति विशेष के किसी गुण अथवा लक्षण विशेष के प्राप्तांकों का उसके बड़े समूह पर प्राप्त मध्यमान (औसत प्राप्तांक) से विचलन से होता है । अत: कोई व्यक्ति किसी एक गुण में औसत के निकट हो सकता है, दूसरे में औसत से नीचे हो सकता है और तीसरे में औसत से ऊपर हो सकता है उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति शारीरिक भार की दृष्टि से औसत भार का हो सकता है, बुद्धि की दृष्टि से औसत बुद्धि से कम हो सकता है और सामाजिकता की दृष्टि से औसत से अधिक हो सकता है ।

जेम्स ड्रेवर के शब्द कोष के अनुसार 'कोई भी दो व्यक्तियों का परस्पर एक सा न होना ही वैयक्तिक भिन्नता है । ' व्यक्तिगत भिन्नता से तात्पर्य समूह के सदस्यों में सामान्य रुप से हटकर पाई जाने वाली व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक विशेषताओं से है । "

एक समूह के सदस्य के नाते एक व्यक्ति अनेक शारीरिक और मानसिक विशेषताओं के आधार पर अनेक समूह के औसत से या तो ऊपर होता है या नीचे । स्पष्ट है कि किसी

विशेषता के समूह के औसत से विचलन हो वैयक्तिक भिन्नता कहलाती है । बुद्धि, स्मृति, चिन्तन, कल्पना, विचार, लम्बाई, चौडाई, रंग रुप आदि कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएं है जिनके आधार पर प्रत्येक समूह के व्यक्तियों में समूह के औसत की दृष्टिकोण से अन्तर होता है, यह अन्तर ही वैयक्ति विभिन्नता कहलाती है ।

12.3 वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति एव विशेषताएं

मनोवैज्ञानिकों ने वैयक्तिक विभिन्नता का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन किया और वैयक्ति विभिन्नता की प्रकृति विशेषताओं के बारे में निम्नलिखित तथ्य बताए ।

1. कोई भी दो व्यक्ति आपस में एकदम समान नहीं होते । सभी शारीरिक, मानसिक-सवेंगात्मक और सामाजिक दृष्टि से एक से नहीं होते, उनमें कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होता है । ये सभी वैयक्तिक विभिन्नता के मुख्य आधार हैं ।
2. वैयक्तिक विभिन्नता में व्यक्तित्व के केवल मापीय लक्षणों को ही समाहित किया जाता है जैसे, भार, लम्बाई, वृद्धि, अभिक्षमता क्रोध एवं सामाजिकता आदि ।
3. सामान्य सम्भावना वक्र द्वारा किसी भी समूह के व्यक्तियों के किसी भी लक्षण का झुकाव मध्यमान की ओर होता है जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है -

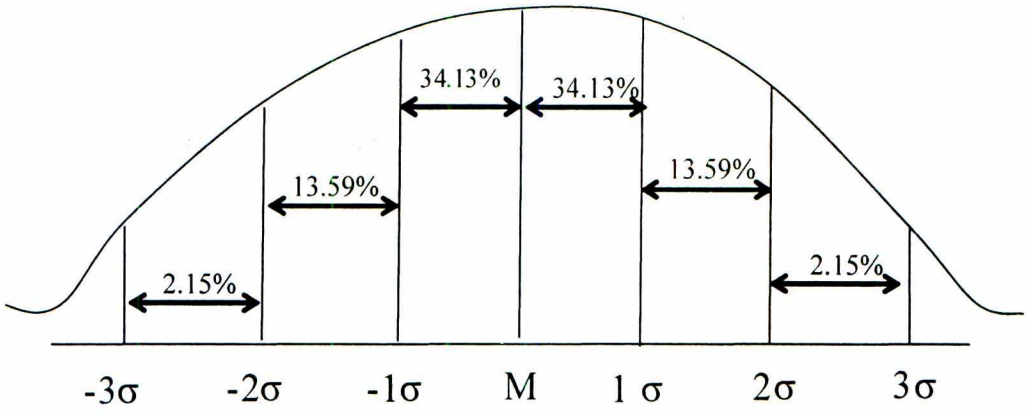

मध्यमान

सामान्य संभावना वक्र

4. व्यक्ति-व्यक्ति में किसी गुण में भिन्नता उनके प्राप्तांकों (वैवत) के गुण विशेष के मध्यमान से विचलन के अन्तर द्वारा प्राप्त होती है ।
5. कोई व्यक्ति किसी गुण विशेष की दृष्टि से औसत प्राप्तांक के निकट हो सकता है, दूसरे गुण में औसत प्राप्तांक से कम हो सकता है और किसी अन्य गुण में औसत प्राप्तांक से अधिक हो सकता है ।
6. वैयक्तिक भिन्नता के मापीय व्यक्तिव लक्षण सामान्यत: एक दूसरे से प्रभावित होते है । उच्च उस बुद्धि के बालकों की शैक्षिक उपलब्धि भी प्राय: उच्च होती है ।
7. वैयक्तिक विभिन्नता मानव के विभिन्न प्रकार के विकास का आधार हें

12.4 वैयक्तिक विभिन्नता के प्रकार

वैयक्तिक विभिन्नता को दो वर्गों में विभाजित किया हैं

12.4.1 अन्तर वैयक्तिक भिन्नताएँ

किन्हीं दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मापीय व्यक्तित्व लक्षणों में पाए जाने वाली भिन्नता को अन्तर वैयक्तिक भिन्नता कहते है, इसके अन्तर्गत उनकी शारीरिक गुणों की भिन्नता, मानसिक गुणों की भिन्नता संवेगात्मक भिन्नता और सामाजिक गुणों की भिन्नता आती है । उदाहरणार्थ व्यक्तियों के भार में होने वाली भिन्नता, बुद्धि में होने वाली भिन्नता, उनके क्रोध की मात्रा में होने वाली भिन्नता और उनमें पाए जाने वाली सामाजिकता की भिन्नता भी इसी वर्ग में आती है ।

12.4.2 अन्त: वैयक्तिक भिन्नताएं

किसी एक ही व्यक्ति के मापीय व्यक्तित्व लक्षणों में पाए जाने वाली भिन्नता को अन्त: वैयक्तिक भिन्नता कहते है । इसके अन्तर्गत एक ही व्यक्ति के विभिन्न गुणों की भिन्नता आती है । उदाहरणार्थ : किसी व्यक्ति के शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होने और मानसिक दृष्टि से रोगी होने, शरीर से अस्वस्थ होने पर भी उच्च बुद्धि का होना । उच्च बुद्धि के होते हुए शैक्षिक उपलब्धि में पीछे होने आदि की भिन्नताएं इसी वर्ग में आयेगी ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए ।
2. वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति व विशेषताओं को लिखे ।
3. अन्तर वैयक्तिक विभिन्नता और अन्त: वैयक्तिक विभिन्नता किसे कहते है ।

12.5 वैयक्तिक विभिन्नता के क्षेत्र

12.5.1 शारीरिक क्षेत्र

शारीरिक विभिन्नता: इसके अन्तर्गत शरीर का भार, लम्बाई, शारीरिक क्षमता, ज्ञानेन्द्रियों का कार्य अर्थात् हाथ पैर से ठीक से चलना ज्ञानेन्द्रियों में दृष्टि, कमेन्द्रियों में कर्ण का दोषयुक्त होना। शारीरिक रचना के सभी तत्व जिनका मापन किया जा सकता है । इस क्षेत्र के अन्तर्गत आते है।

12.5.2 गत्यात्मक योग्यता भिन्नता

एक ही आयु वर्ग के व्यक्तियों की गतिवाही क्षमता भिन्न होती है । कोई व्यक्ति किसी कार्य को जल्दी से करता है और कोई व्यक्ति किसी अन्य कार्य को जैसे महिलाएं, सिलाई-बुनाई का कार्य पुरुषों की अपेक्षा जल्दी करती है और पुरुष परिश्रम कार्य जो हाथ से किये जाते है जल्दी करते है, जैसे-फावडा चलाना । ये गत्यात्मक योग्यता भिन्नता के अन्तर्गत आते है ।

12.5.2.1 मानसिक क्षेत्र

यह क्षेत्र वैयक्तिक विभिन्न का सबसे प्रमुख आधार है । शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों का वर्गीकरण मुख्य रुप से इसी आधार पर किया जाता है । इसके अन्तर्गत:-

1. बुद्धिभिन्नता
2. उपलब्धि भिन्नता
3. अभिक्षमता भिन्नता
4. विशिष्ट योग्यता भिन्नता

12.5.2.2 बुद्धि भिन्नता

बुद्धि की दृष्टि से भी विभिन्नता देखने को मिलती है । मनोवैज्ञानिक टालमैन और बिने आदि ने व्यक्तियों की बुद्धि मापन के परीक्षण तैयार किए और उनके द्वारा व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि के ज्ञात की । बुद्धि लब्धि के आधार पर व्यक्तियों को जड बुद्धि से लेकर प्रतिभाशाली की कई श्रेणियों में विभाजित किया है । वर्तमान में बुद्धि वैयक्तिक भिन्नता का मुख्य आधार मानी जाती है ।

12.5.2.3 उपलब्धि भिन्नता

सामान्यत: शिक्षार्थी की परीक्षा में उपलब्धि उनकी बुद्धि पर निर्भर करती है किसी सीमा तक यह सत्य भी है परन्तु यह उपलब्धि बुद्धि के साथ साथ उनके विषय में रुचि, अध्ययन आदत, अध्ययन की परिस्थितियों आदि पर निर्भर करती है यही कारण है कि किसी छात्र की शैक्षिक उपलब्धि अपेक्षाकृत कम होती है जबकि बुद्धि लब्धि अधिक होती है । वर्तमान समय में शैक्षिक उपलब्धि भी वैयक्तिक भिन्नता का आधार है ।

12.5.2.4 अधिक्षमता भिन्नता

किसी कार्य या व्यवसाय के प्रति जन्मजात रुझान एवं क्षमता को अभिक्षमता कहते है। यह भिन्न भिन्न व्यक्तियों के भिन्न भिन्न होती है किसी में यान्त्रिक, अभिक्षमता, किसी में साहित्यिक अभिक्षमता और किसी में कलात्मक अभिक्षमता होती है । एक ही अभिक्षमता वाले भिन्न भिन्न व्यक्तियों में इसकी माप भिन्न-भिन्न होती है ।

12.5.2.5 विशिष्ट योग्यता भिन्नता

अभिक्षमता किसी कार्य के प्रति केवल जन्मजात समान एवं शक्ति को प्रकट करती है, विशिष्ट योग्यता अभिक्षमता एवं शारीरिक योग्यता दोनों का योग होती है इन विशिष्ट योग्यताओं के आधार पर व्यक्ति विशेष क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करता है जैसे कोई खेल में, कोई नृत्य मे,कोई साहित्य में, कोई कला में । वर्तमान में व्यक्तियों की विशिष्ट योग्यता को वैयक्तिक भिन्नता का एक विशेष आधार माना जाता है ।

12.5.3 संवेगात्मक क्षेत्र

संवेगों का सम्बन्ध शरीर एवं मन से दोनों से होता है । संवेगात्मक क्षेत्र में मुख्य रुप से निम्नलिखित लक्षणों की भिन्नता मिलती है ।

12.5.3.1 संवेगात्मक क्षेत्र

बालकों में संवेगात्मक रुप समान रुप से होता है पर जैसे बडे होते जाते है उनके संवेगों में परिवर्तन होता है और परिवर्तित संवेग स्थिर होते जाते है । कुछ व्यक्ति बात पर क्रोध करते है, कुछ डरे हुए रहते है कुछ सदैव चिंताग्रसित रहते है और कुछ सदैव हसमुख रहते है । इन संवेगों से उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार पर प्रभाव पडता है । वर्तमान इनके मापन की

विधियों की विकसित की गई है और इन विधियों से प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर व्यक्तियों में अन्तर किया जाता है ।

12.5.3.2 अभिवृत्तियों में भिन्नता

किसी उद्दीपक (वस्तु, व्यक्ति, विचार या क्रिया आदि) । के प्रति घनात्मक या ऋणात्मक तीव्र अनुक्रिया करने की प्रवृति को अभिवृति कहते है । यह जन्मजात न होकर अर्जित होती है । व्यक्ति को जैसा पर्यावरण मिलता है और उसे जैसी शिक्षा मिलती है उसमें वैसी ही अभिवृत्तियों का विकास होता है । कुछ व्यक्ति स्व केन्द्रित होते है तो कुछ समाज सेवा की अभिवृद्धि रखते है कुछ में राष्ट्र सेवा की अभिवृद्धि होती है वर्तमान में अभिवृद्धि मापन की विधियों का विकास हुआ और ये भी वैयक्तिक विभिन्नता के आधार होती है ।

12.5.3.3 रुचियों में भिन्नता

रुचियां दो प्रकार की होती है (1) जन्मजात और (2) अर्जित । जन्मजात रुचियां जैसे भोजन के प्रति रुचि, खेल के प्रति रुचि, ये सभी में समान होती है लेकिन अर्जित रुचियां जैसे- विशेष प्रकार के भोजन में रुचि विशेष प्रकार के खेल में रुचि, ये सभी में भिन्न होती है । कोई छात्र गणित में रुचि लेता है कोई विज्ञान में कोई भाषा के अध्ययन में और कोई इतिहास विषय के अध्ययन में अथवा कौशल के प्रशिक्षण में । वर्तमान में विशेषकर शैक्षिक क्षेत्र में रुचियाँ वैयक्तिक विभिन्नता का मुख्य आधार होती है।

12.5.4 सामाजिक क्षेत्र

सामाजिक क्षेत्र में मुख्य रुप से निम्नलिखित क्षेत्र आते है ।

12.5.4.1 सामाजिक एवं सांस्कृति भिन्नता

12.45.4.2 आदर्शो, मूल्यों एवं नैतिकता में भिन्नता

12.5.4.3 जातीय तथा राष्ट्रीय भिन्नता

12.5.4.4 अवधारणाओं में भिन्नता

12.5.4.1 सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता

व्यक्तियों की सामाजिकता की भावना और उनके सांस्कृतिक लक्षण ये दोनों तत्व व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते है इसलिए इन्हें भी वैयक्तिक विभिन्नता के क्षेत्र में शामिल किया है वर्तमान में इनके मापन की वैज्ञानिक विधियों से विकसित की गई है और इन विधियों से प्राप्त प्राप्तांको के आधार पर व्यक्तियों में भेद किया जाता है ।

12.5.4.2 आदर्शो मूल्यों एवं नैतिकता में भिन्नता

प्रत्येक समाज के कुछ आदर्श, मूल्य व मापदण्ड होते है । किसी व्यक्ति ने इनमें से किनकों और किस मात्रा में स्वीकृत किया है यह भी वैयक्तिक भिन्नता के क्षेत्र में आता है ।

12.5.4.3 जातीय तथा राष्ट्रीय भिन्नता

एक जाति के व्यक्तियों में कुछ गुण समान होते है, इन्हें जातीय गुण कहा जाता है और ये गुण दूसरी जाति के व्यक्तियों से कुछ भिन्न होते है और ये गुण उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार में भिन्नता लाते है । इसी प्रकार भिन्न-भिन्न राष्ट्र के व्यक्तियों में राष्ट्र के आधार

पर कुछ भिन्नता होती है । भिन्न-भिन्न धर्मो को मानने वाले व्यक्तियों में भी भिन्नता होती है । इसको वैयक्तिक विभिन्नता का आधार माना जाता है ।

12.5.4.4 आत्मधारणाओं में भिन्नता

व्यक्ति की अपने विषय में जो धारणा होती है उसे आत्म प्रत्यय कहते है । कुछ व्यक्ति अपने बारे में सोचते है कि वे बडे योग्य है समाज में उन्हें बडी प्रतिष्ठा प्राप्त है और कुछ इसके ठीक विपरीत सोचते है । आत्मधारणा का प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्व होता है । आत्माधारणा व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है अत: वर्तमान में इसको भी वैयक्तिक भिन्नता के क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता के चार क्षेत्रों के नाम लिखिए?
2. वैयक्तिक विभिन्नता के संवेगात्मक क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
3. वैयक्तिक विभिन्नता के सामाजिक क्षेत्र स्पष्ट कीजिए?

12.6 वैयक्तिक विभिन्नता के कारक

12.6.1 वशांनुक्रम

12.6.2 पर्यावरण

12.6.3 अन्य

12.6.1 वंशानुक्रम

वंशानुक्रम वैयक्तिक भिन्नता का मूल कारक होता है । इसमें व्यक्ति अपने माता-पिता एवं पूर्वजों की विशेषताओं को प्राप्त करने से होता है वह अपने माता-पिता एवं पूर्वजों की विशेषताओं को अपने माता पिता के जीन्स, से प्राप्त करता है । शरीर की लम्बाई, रंग, आखों की पुतली, मानसिक सरंचना, सभी वंशानुगत होते है ।

12.6.2 वातावरण

पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी भौतिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं शैक्षिक परिस्थितियों से है जिनमें बालक जन्म लेता है और बडा होता है । व्यक्ति के व्यक्तित्व के कुछ लक्षणों का विकास इस पर्यावरण पर ही निर्भर करता है । उदाहरणार्थ भाषा उच्चारण पर सामाजिक पर्यावरण का असर पडता है । रुचियों, आदर्शो, मूल्यों, एवं अभिवृतियों का विकास पर्यावरण पर निर्भर करता है । अब तो यह भी सिद्ध हो गया है कि बालकों के शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के विकास में भी पर्यावरण की भूमिका रहती हैं

12.6.3 अन्य कारण

12.6.3.1 आयु:

आयु के बढने के साथ-साथ व्यक्तियों के व्यक्तित्व में अन्तर होता जाता है । मनुष्य की जन्मजात शक्तियों भी आयु के साथ बढ़ती है और उनसे अर्जित गुण भी आयु के साथ-साथ बढते है । बालपन में खेल और जिज्ञासा की प्रवृति रहती है । युवकों में काम की प्रवृति अधिक

होती है और प्रौढो में उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक सचेष्ट रहते है और इन सबके कारण उनके व्यवहारों में भिन्नता रहती है ।

12.6.3.2 परिपक्वता

आयु और शिक्षा के साथ-साथ व्यक्ति परिपक्वता प्राप्त करता है । शारीरिक परिपक्वता में आयु और मानसिक परिपक्वता में शिक्षा की भूमिका आयु में अहम रहती है । भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में परिपक्वता भिन्न-भिन्न आयु में होती है । परिपक्वता व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है इसलिए इसे भी वैयक्तिक विभिन्नता का एवं कारण गया है ।

12.6.3.3 लिंग

लिंग के आधार पर शारीरिक भिन्नता होती है । लडकिया जल्दी परिपक्व हो जाती है जबकि बालक 18 से 30 वर्ष की उम्र में परिपक्व होते है ।

12.6.3.4 रचनात्मक शक्ति

मनोवैज्ञानिक एडलर ने रचनात्मक शक्ति को वैयक्तिक भिन्नता का मुख्य कारण माना है । इसके अनुसार वैयक्तिक भिन्नता के मूल कारण वंशानुक्रम एवं पर्यावरण ही है परन्तु व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में रचनात्मक शक्ति का बडा हाथ रहता है परन्तु जब एक बार किसी व्यक्ति में रचनात्मक शक्ति का विकास हो जाता है तब वह स्वतन्त्र रुप से कार्य करने लगते है । व्यक्ति के वंशानुक्रमीय गुणों, पर्यावरणी दशाओं और रचनात्मक शक्ति के बीच अन्तःक्रिया होती है और वह व्यक्ति की जीवन शैली निर्धारित करती है ।

12.6.3.5 जाति, प्रजाति संस्कृति और राष्ट्र

जाति और प्रजाति वंशानुक्रमीय गुणों, को प्रभावित करते है और संस्कृति एवं राष्ट्र पर्यावरणीय गुणों को प्रभावित करते है । यदि एक जाति प्रजाति, संस्कृति और राष्ट्र के व्यक्ति दूसरी जाति, प्रजाति, संस्कृति एवं राष्ट्र के व्यक्तियों में जाकर रहने लगते है तो कई-कई पीढियों तक भी उनमें भिन्नता बनी रहती है ऊपर से समान दिखाई देने पर बाद भी अन्दर रो बडी भिन्नता होती है ।

12.7 व्यक्तिगत विभिन्नताओं के मापन की विधियाँ

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के मापन हेतु तीन विधियों का विशेष उपयोग किया जा सकता है ।

12.7.1 परीक्षणों के आधार पर

12.7.2 शिक्षक निरीक्षण के आधार पर

12.7.3 अभिलेखों के आधार पर

12.7.1 परीक्षण के आधार पर

1. बुद्धि परीक्षण
2. उपलब्धि परीक्षण
3. रुचि परीक्षण
4. अभिक्षमता परीक्षण

5. सृजनात्मक परीक्षण
6. व्यक्तित्व परीक्षण

12.7.2 शिक्षक निरीक्षक के आधार पर

1. कक्षागत व्यवहार का निरीक्षण
2. कक्षा के बाहर व्यवहार का निरीक्षण

12.7.3 अभिलेखों के आधार पर

1. संचयी अभिलेख
2. स्थानान्तरण प्रमाण पत्र अभिलेख
3. छात्र का स्वास्थ्य अभिलेख
4. निर्देशन एवं परामर्श अभिलेख
5. मासिक एवं सत्र प्रगति अभिलेख
6. उपाख्यान सम्बन्धी अभिलेख

मानसिक क्षमताओं, योग्यताओं, अभिरुचियों, का मापन करने के लिए विभिन्न परीक्षाएं निर्मित की गई है । ये परीक्षाएँ मनोवैज़ानिक है । इनका स्वरुप शाब्दिक एवं अशाब्दिक सामूहिक एवं व्यक्तिगत और निष्पत्ति एवं कागज पेन्सिल परीक्षाएं है । मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के माध्यम से विद्यार्थियों का वर्गीकरण उनकी प्रगति, उनका मूल्याकंन एवं उनकी समस्याओं का पता लगाने का प्रयास किया जाता है । ये मनोवैज्ञानिक परीक्षण वस्तुनिष्ठ व प्रमाणिक है इसके आधार पर व्यक्ति के विभिन्न पक्षों का मापन किया जाता है । बुद्धि, उपलब्धि, रुचि, अभिक्षमता सृजनात्मक एवं व्यक्तित्व । वैयक्तिक विभिन्नता मापन की विधियां को मुख्य रुप से दो श्रेणी में विभिन्न किया जाता सकता है ।

12.3.4 अप्रमाणिक विधियाँ

अप्रमाणित विधियाँ के अन्तर्गत शिक्षक, निरीक्षक एवं प्रचलित विधि है । मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की उपलब्धता न होने की स्थिति के शिक्षक विद्यार्थियों के कक्षागत व्यवहार और कक्षा के बाहर व्यवहार का निरीक्षण कर व्यक्तिगत विभिन्नताओं को पहचानने का प्रयास करता है । शिक्षक व्यवहार के अनेक पक्षों एवं आयामों का निरीक्षण कर मानसिक एवं शारीरिक सांवेगिक विभिन्नताओं को विद्यार्थियों में पहचान सकता है ।

अप्रमाणिक विधियां सरल एवं सस्ती होती है परन्तु कभी कभी इसकी विश्वसनीयता ठीक नहीं भी हो सकती है, परन्तु व्यक्तिगत अभिनति और अभिवृत्तियां से दूर हरदम एवं लम्बे समय तक निरीक्षण के द्वारा विभिन्नताओं को शुद्ध रुप से पहचाना जा सकता है ।

अभिलेखों के आधार पर -

विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के अभिलेखों में विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न जानकारियों के अभिलेख तैयार किये जाते है । इन अभिलेखों का विस्तृत एवं गहन अध्ययन कर विद्यार्थी को पहचानने में सहायता होती है और सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम को एक दिशा प्रदान करता है परंतु सभी अभिलेख वास्तविक, वैद्य, उपयोगी तथा अपने में पूर्ण होने आवश्यक है ।

12.7.5 प्रमाणिक विधियां

प्रमाणिक विधियाँ अधिक उपयुक्त होती है परन्तु विद्यालयों के संस्थागत ढांचों व साधनों की अनुपलब्धता के कारण अप्रमाणिक विधियों का प्रयोग अधिक किया जाता है ।

स्वमूल्यांकन, प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता के कारणों को लिखिए ।
2. वैयक्तिक विभिन्नता के मापन की प्रमुख विधियां बताइए ।

12.8 सारांश

वैयक्तिक विभिन्नता सम्प्रत्यय

हम अपने आस पास सभी लोग एक दूसरे व्यक्ति से कभी भिन्न पाते है तो कभी कभी अपने समान पाते है । शारीरिक आकृति की दृष्टि से समानता है परन्तु फिर भी असमानता है क्योंकि कोई भावात्मक दृष्टि से स्थिर दिखाई देता है तो कोई अति व्यवहार कुशल होता है, तो कोई शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तो कोई अस्वस्थ होता है । अत: इन विभिन्नताओं और अन्तरों के फलस्वरुप सभी जीवों को उनके आकार, आकृति, स्वभाव व अन्य वैयक्तिक व्यवहारों के आधार पर अलग किया जा सकता है । अत: वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ व्यक्तियों में कोई भी एक विशेषता या कई विशेषताओं में अन्तरों या विचलनों के कारण भिन्नता । दूसरे शब्दों में एक व्यक्ति से दूसरे में भिन्नता उनके सम्पूर्णता में विभेद होने के कारण वैयक्तिक भिन्नता होती है और इसके वैयक्तिक विभिन्नता कहा जा सकता है ।

1. स्कीनर के अनुसार: "आज हम वैयक्तिक विभिन्नता का अर्थ सम्पूर्ण व्यक्तित्व के किसी भी मापीय पहलू को सम्मिलित करने से लेते है ।
2. जेम्स ड्रेवर के शब्दकोष के मनुष्य "कोई भी दो व्यक्तियों का परस्पर एक सा न होना ही वैयक्तिक भिन्नता है ।

वैयक्तिक विभिन्नता की प्रकृति एवं विशेषता :

I. कोई भी दो व्यक्ति आपस में एकदम समान नहीं होते है ।
II. वैयक्तिक विभिन्नता से व्यक्तित्व के केवल मापीय लक्षणों को ही सम्मिलित किया जाता है । - जैसे लम्बाई, बुद्धि, रुचि, अभिवृद्धि, क्रोध, सामाजिकता आदि
III. सामान्य सम्भावना वक्र द्वारा व्यक्तियों के किसी भी लक्षण का झुकाव मध्यमान की और होता है ।
IV. व्यक्ति-व्यक्ति में किसी गुण में भिन्नता उनके प्राप्तांकों के गुण विशेष के मध्यमान से विचलन के अन्तर द्वारा प्राप्त होती है ।.
V. वैयक्तिक विभिन्नता के मापीय लक्षण सामान्यता एक दूसरे से प्रभावित होते है ।
VI. वैयक्तिक विभिन्नता मानव के विभिन्न प्रकार के विकास का आधार हे ।

वैयक्तिक विभिन्नता के प्रकार

1. अन्तर वैयक्तिक विभिन्नता दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मापीय व्यक्तित्व लक्षणों में पाई जाने वाली भिन्नता ।

2. अन्तर वैयक्तिक विभिन्नता किसी एक ही व्यक्ति के मापीय व्यक्तित्व लक्षणों में पाई -जाने वाली भिन्नता

वैयक्तिक विभिन्नता के क्षेत्र

1. शारीरिक क्षेत्र :

(अ) शारीरिक विभिन्नता (ब) गत्यात्मक योग्यता भिन्नता

2. मानसिक क्षेत्र :

(अ) बुद्धि भिन्नता (ब) उपलब्धि भिन्नता

(स) अभिक्षमता भिन्नता (द) विशिष्ट योग्यता भिन्नता

3. संवेगात्मक क्षेत्र

(अ) संवेगात्मक भिन्नता (ब) अभिवृतियों में भिन्नता

(स) रुचियों में भिन्नता

4. सामाजिक क्षेत्र

(अ) सामाजिक एवं सांस्कृतिक भिन्नता

(ब) आदर्शो, मूल्यों एवं नैतिकता में भिन्नता

(स) जातीय तथा राष्ट्रीय भिन्नता

(द) आत्म धारणाओं में भिन्नता

वैयक्तिक विभिन्नता के कारण

आ) वंशानुक्रम (ब) पर्यावरण (स) अन्य कारण - आयु, परिपक्वता, लिंग, रचनात्मक शक्ति, जाति, प्रजाति, संस्कृति और राष्ट्र

वैयक्तिक विभिन्नता के मापन की विधियाँ

1. परीक्षणों के आधार पर
2. शिक्षक निरीक्षण के आधार पर
3. अभिलेखों के आधार पर

वैयक्तिक विभिन्नता मापन की प्रमुख दो विधियां है :

1. प्रमापीकृत मापन विधियां: सभी परीक्षण जो प्रमापीकृत होते है, जैसे कैटल (ब्जंजसम) का बुद्धि परीक्षण ।
2. अप्रमापीकृत मापन विधियां: इसके अन्तर्गत शिक्षकों के द्वारा निरीक्षण के आधार पर, अभिलेखों के आधार पर मापन होता है ।

अधिकांशत अप्रमापीकृत मापन विधियां ही उपयोग में ली जाती है क्योंकि प्रमापीकृत मापन विधियां की उपलब्धता कम रहती है ।

12.9 शब्दावली

मध्यमान : इसे अंकगणितीय माध्य भी कहते है । जब किसी एक समूह के आंकडों या प्राप्तांको को जोड़कर इस समूह की संख्या (छ) से

	विभाजित किया जाता है इस राशि प्राप्त होती है उसको उस समूह के आकड़ों के मध्यमान कहा जाता है ।
विचलन	किसी समूह के प्राप्तांकों के आपसी अंतर को सांख्यिकी भाषा मे विचलन कहते है ।
सामान्य सम्भावना वक्र	: एक ऐसा सैद्धान्तिक, आदर्श एवं गणितीय वक्र है जिसके प्राप्तांक मध्यमान के दोनों ओर एकदम समान रुप से वितरित होते है ।
अन्तर	: भेद, दो वस्तुओं या व्यक्तियों के मध्य पाई जाने वाली भिन्नता
अन्त:	वस्तु या व्यक्तित्व मे पाई जाने वाली भिन्नता
बुद्धि-लब्धि	
इसका सूत्र शैक्षिक लब्धि	$= \frac{\text{शैक्षिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}}$ X 100 (EQ= EA/CA X100)
EA	= विभिन्न विषयों में शैक्षिक उपलब्धि का मापन मानक उपलब्धि से किया जाता है । इसके औसत को शैक्षिक उपलब्धि कहते है ।
CA	= वास्तविक आयु, व्यक्ति की उस समय की आयु ।
अप्रमापीकृत विधियाँ	: वह परीक्षण जिन्हें स्थानीय प्रयोग के लिये ज्ञानोपार्जन, व्यक्तित्व, रुचि, अभिवृत्तियों आदि के मापन हेतु समय-समय पर बनाया जाता है । इनका प्रयोग स्थानीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है ।
प्रमापीकृत विधियाँ	: ऐसे परीक्षण जिन्हें मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों, प्रकाशन गृहों, मनोवैज्ञानिक ब्यूरों या । अनुसंधान संस्थाओं द्वारा अनेक अन्वेषणों की सहायता से बहुत बड़े समूह पर प्रशासित किया जाता है, तब इसकी वैद्यता, विश्वसनीयता, एवं मानकों को ज्ञात किया जाता है । इन्हें प्रमापीकृत परीक्षण कहते है ।

12.10 मूल्यांकन प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता से आप क्या समझते है? वैयक्तिक विभिन्नता के विशेष क्षेत्रों को स्पष्ट कीजिए?
2. मनोविज्ञान के क्षेत्र में वैयक्तिक विभिन्नता का क्या अर्थ है? वैयक्तिक भिन्नता के मुख्य कारण पर प्रकाश डालिए ।
3. वैयक्तिक विभिन्नताएं का अर्थ एवं परिभाषाओं का वर्णन कीजिए और वैयक्तिक विभिन्नता के प्रकार भी बताए ।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. वैयक्तिक विभिन्नता की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए ।
2. वैयक्तिक विभिन्नताएं मापने की विभिन्न विधियां लिखिए ।
3. वैयक्तिक विभिन्नता मूल रुप से कितने प्रकार की होती है?

4. वैयक्तिक विभिन्नता के मुख्य आधार क्या है?
5. वैयक्तिक विभिन्नता के कारणों का उल्लेख किजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

6. सत्य असत्य का निर्णय कीजिए :
   (अ) मनुष्य की बुद्धि शिक्षा पर निर्भर करती है?
   (ब) वैयक्तिक विभिन्नता में वे सभी लक्षण आते है जिनका मापन किया जा सकता है।
   (स) वैयक्ति भिन्नता माध्यमान से विचलन द्वारा स्पष्ट होती है ।
   (द) व्यक्तियों में शारीरिक भिन्नता होने का प्रमुख कारण वंशानुक्रम हो ।
7. सही विकल्प को चुनकर कोष्ठक में भरे :-

1. वैयक्तिक विभिन्नता का मापन मुख्य रुप से किन क्षेत्रों में किया जाता है ।
   (अ) शारीरिक क्षेत्र (ब) मानसिक क्षेत्र
   (स) संवेगात्मक क्षेत्र (स) इन सभी में
2. वैयक्तिक भिन्नता का प्रत्येक शिक्षा के किस क्षेत्र में नहीं किया जाता है ।
   (अ) पाठ्यक्रम के निर्माण में
   (ब) पाठ्यचर्या क्रियाओं में
   (स) शिक्षण विधियों के चयन में
   (द) शिक्षकों के चयन में
3. वैयक्तिक विभिन्नता के वैज्ञानिक अध्ययन का आरम्भ किसने की थी?
   (अ) गाल्टन (ब) टरमैन
   (स) पियरसन (द) स्कीनर

उत्तर

6 असत्य 6 (ब) सत्य 6 (स) सत्य 6(द) सत्य 7.1 (द) 7.2 (द) 7.3 (अ)

12.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. माथुर एस.एस. शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2006-2007 पृष्ठ संख्या 176-185 ।
2. भटनागर सुरेश: शिक्षा मनोविज्ञान, रॉयल बुक डिपो, मेरठ, 2006-2007 ।
3. लाल बिहारी रमन एवं जोशी चन्द्र सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान एवं मापन, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड मेरठ, 2005, पृष्ठसंख्या 173-186 ।
4. बैस सिंह नरेन्द्र, दत्ता संजय, चतुर्वेदी शुमा, अधिगम का मनोसामाजिक आधार एवं शिक्षण, जैन प्रकाशन मन्दिर, चौडा रास्ता, जयपुर 2005-06 पृष्ठ संख्या 15.1 से 15.4 तक, 2
5. अरोडा गीता, मारवाह सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञानिक एवं सांख्यिकी, शिक्षा प्रकाशन जयपुर 2006 पृष्ठ संख्या-332-342।

6. Mangal, S.K. Advanced Educational and Psychology, II Edition, Prictice House, New Delhi, 2004. Aug. 118

इकाई 13

बुद्धि की अवधारणा एवं बुद्धि के सिद्धान्त

(Concepts and Theories of Intelligence

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना, भूमिका

13.2 बुद्धि की अवधारणा

13.2.1 बुद्धि का अर्थ

13.2.2 बुद्धि की परिभाषाएँ

13.3 समायोजन पर बल देने वाली परिभाषाएँ

सीखने पर बल देने वाली परिभाषाएँ

अमूर्त चिन्तन पर बल देने वाली परिभाषाएँ

संगोलिय परिभाषाएँ

परिभाषाओं का विश्लेषण

13.3.1. बुद्धि की प्रकृति

बुद्धि की विशेषताएँ

बुद्धि का विकास

बुद्धि के प्रकार

बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

बुद्धि का मापन

बुद्धि मापन का वर्गीकरण

बुद्धि की मानसिक आयु तथा बुद्धि-लब्धि

13.4 बुद्धि के सिद्धान्त

13.4.1. एक कारक अथवा सत्तात्मक सिद्धान्त

13.4.2. द्वि कारक सिद्धान्त

13.4.3. त्रि कारक सिद्धान्त

13.4.4. बहु कारक अथवा असत्तात्मक सिद्धान्त

13.4.5. समुहकारक सिद्धान्त

13.4.6. क्रमिक महत्व का सिद्धान्त

13.4.7. त्रि-आयाम सिद्धान्त

13.4.8. लूड तथा क्रिस्टेलाइज्ड सिद्धान्त

13.4.9. बुद्धि (A) तथा (B) बुद्धि का सिद्धान्त

13.5 मूल्यांकन प्रश्न

13.6 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बुद्धि की परिभाषाओं को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि के विषय में भिन्न-भिन्न मतों को समझ सकेंगे ।
- परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- बुद्धि की प्रकृति को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि की विशेषताओं को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- बुद्धि के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि के विकास के बारे में समझ सकेंगे ।
- बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि के मापन को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि के वर्गीकरण को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि की मानसिक आयु एवं बुद्धि लब्धि को समझ सकेंगे ।
- बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे ।
- बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- बुद्धि के सिद्धान्तों के विभिन्न मॉड़लों को समझ सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना

बुद्धि: भारतीय दृष्टि

भारतीय अवधारणा के अनुसार बुद्धि को अर्थ प्रदान करते हुए वेदान्त में इसे अंतःकरण के एक अंश की तरह माना गया है । वेदान्त में अंतःकरण के चार अंश बताये गये है -

मनो बुद्धिरहंकारश्चितं करणमन्तरम् ।

संशयो निश्चयो गर्व: स्मरणं विषया इमें । ।

अंतःकरण के चार अंश होते हैं - मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त । मन से वितर्क और संशय होता है । बुद्धि से यह निश्चय होता है कि क्या उचित है क्या अनुचित, क्या कर्त्तव्य है क्या अकर्त्तव्य क्या भला है क्या बुरा, यह वस्तु अमुक है या नहीं इत्यादि । इसीलिए बुद्धि को सदअसद् विवेचनात्मिका कहा गया है ।

"Intelligence is the ability to undertake activities that are characterized by difficulty, complexity, abstractness, economy, addictiveness to a goal, social value and the emergence of originals, and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and a resistance to emotional forces."

-Stoddard

अर्थात् बुद्धि ही निश्चय करती है कि यह ठीक है, यह कर्तव्य है, इससे लाभ होता है, यह मनुष्य जितने भी कर्म करता है उन सबका प्रेरक अमुक वस्तु है आदि । तात्पर्य यह है कि मनुष्य जितने भी कर्म करता है उन सबका प्रेरक म नही है किन्तु मन के द्वारा प्रेरित होकर मनुष्य जितना कुछ काम करता है वह दो प्रकार का होता है - 1. बुद्धि द्वारा व्यवस्थित 2. बिना बुद्धि के किया हुआ कार्य क्योंकि सब प्रकार की मनःप्रेरित व्यापार में बुद्धि का योग नहीं होता । जब बुद्धि को सम्हाले रखने वाली शक्ति या विवके तथा पिछले किये हुए कर्म को या अनुभव को स्मरण किये रखने की शक्ति नष्ट हो जाती है तो मनुष्य बिना सोचे-विचारे अशुभ कर्म करने लगता है । दूसरे शब्दों में बुद्धि (धी), बुद्धि को सम्हाले रखने वाली धृति तथा स्मृति (पिछले किये हुए कर्म के स्मरण रखने की शक्ति), तीनों मिलकर व्यक्ति की बुद्धि निर्धारित करते है ।

भगवद्गीता में सात्विक, राजसिक और तामसिक बुद्धि का परिचय देते हुए कहा गया है -

प्रवृत्ति च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बंध मोक्ष च या वेति बुद्धि: सा पार्थ तात्त्विक ।।
मया धर्ममधर्म चकार्य चर्यमेव च ।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धि: सा पार्थ राजसी ।।
अधर्म धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान् विपरीताँश्च बुद्धि: सा पार्थ तामसी ।।

(जिसके द्वारा प्रवृत्ति, निवृति, कर्त्तव्य, भय, अभय, बन्धन और मोक्ष आदि जाना जा सके, उसे सात्विक बुद्धि कहते है । जिसके द्वारा धर्म, अधर्म, कार्य, अकार्य आदि को भली-भाँति बिना जाने-सुने उलटा ही ज्ञान उत्पन्न हो उसे राजसी बुद्धि कहते है और जिस बुद्धि के द्वारा अधर्म को धर्म, अकर्त्तव्य को कर्त्तव्य समझा जा, ऐसे विपरीत भाव को प्रकाशित करने वाली बुद्धि 'को तामसी कहते है ।) इनमें से राजसी और तामसी बुद्धि के द्वारा अयथार्थ या मिथ्या ज्ञान ही निश्चित होता है ।

13.2 बुद्धि की अवधारणा

13.2.1 बुद्धि का अर्थ

बुद्धि को सामान्यत: सोचने समझने और सीखने एव निर्णय करने की शक्ति के रूप में देखा-समझा जात है, परन्तु वास्तव में बुद्धि इससे कुछ अधिक होती है । बुद्धि के विषय में सर्वप्रथम भारतीय दार्शनिकों ने चिन्तन किया था । प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के अनुसार मनुष्य के अन्तःकरण के तीन अंग हैं - मन, बुद्धि और अहंकार । इनमें मन बाह्य इन्द्रियों और बुद्धि के बीच संयोजक का कार्य करता है । मन के संयोग से ही बाह इन्द्रियाँ क्रियाशील होती है और मन के संयोग से ही बुद्धि क्रियाशील होती है । इनके अनुसार इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान मन के द्वारा बुद्धि पर पहुँचता है । बुद्धि इसमें काट-छाँट करती है और उसे अहम् से जोड़ती है और अन्त में उसे सूक्ष्म शरीर पर पहुँचा देती है जहाँ वह संचित हो जाता है, और जब कभी प्राणी विशेष को इस ज्ञान की आवश्यकता होती है तो उसकी बुद्धि उसे सूक्ष्म शरीर से मन पर पहुँचा

देती है और मन प्राणी को तदनुकूल क्रियाशील कर देता है । परन्तु शल्य चिकित्सकों ने अभी तक बुद्धि के भौतिक अस्तित्व का पता नहीं लगा पाया है । लगाते भी कैसे । यह बाहय इन्द्रियों की तरह अपना कोई अलग अस्तित्व तो रखती नहीं, यह तो सूक्ष्म तन्तुओं से निर्मित एक ऐसी संश्लिष्ट रचना है जिसे प्राचीन भारतीय महर्षि ही अपनी अन्तर्दृष्टि और प्रज्ञादृष्टि से देख-समझ सके थे । आज इस तथ्य को प्रयोग की कसौटी पर कसकर सत्यापित करने में विद्वान असमर्थ हैं इसलिए वे बुद्धि को इस रूप में स्वीकार नहीं करते ।

13.2.1 बुद्धि की परिभाषाएँ

शिक्षा ही नहीं, सामाजिक तथा भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में बुद्धि तथा उसके मापन का अत्यधिक महत्त है । किसी व्यक्ति को शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करते समय उसके बौद्धिक स्तर का ध्यान रख जाता है । अत: बुद्धि क्या है तथा इसका मापन किस प्रकार होता है, आदि बातों की जानकारी आवश्यक है । समय-समय पर बुद्धि के रचरूप को समझने के लिए अनेक प्रकार से प्रयत्न हुए हैं तथा बुद्धि की लगभग उतनी ही परिभाषाएँ दी गयी हैं जितनी इस विषय पर लिखने वालों की संख्या है । कदाचित् जितना अधिक प्रयास बुद्धि को समझने के लिए किया गया है उतना व्यक्तित्व के किसी अन्य आयाम को समझने के लिए नहीं हुआ है फिर भी मनोवैज्ञानिक आज तक इस विषय पर एकमत नहीं है ।

बुद्धि की परिभाषा तथा स्वरूप निर्धारण के सम्बन्ध में मत-मतान्तरों की एक दीर्घ परम्परा है । इसकी परिभाषा निर्धारित करने के पहले ही मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि परीक्षणों (Intelligence Test) का निर्माण कर मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को मापने की चेष्टा की है । इस प्रकार बुद्धि की परिभाषा निश्चित होने के पहले ही मानसिक परीक्षण आन्दोलन (Mental Testing Movement) प्रारम्भ हो गया । इस आन्दोलन के प्रभाव की समीक्षा करते हुए बोरिंग (Boring) ने कहा है - "परीक्षण जिसे परीक्षित करते है, वही बुद्धि है ।"

इसी तरह का विचार एक दूसरे मनोवैज्ञानिक हिलगार्ड (Hilgard) ने भी व्यक्त किया है । बुद्धि परीक्षण आन्दोलन की ओर करते हुए उन्होंने कहा है - "बुद्धि परीक्षण जो कुछ मापता है, वही बुद्धि है ।"

बुद्धि की परिभाषा की समस्या का समाधान करने के लिए फ्रीमैन (Freeman) ने बुद्धि की तत्कालीन अनेक परिभाषाओं को एकत्रित कर उनका विश्लेषण किया । तत्पश्चात् वे इस नतीजे पर पहुंचे कि बुद्धि की समस्त परिभाषाओं को तीन प्रकार या वर्गो में बांटा जा सकता है-

1. प्रथम वर्ग की परिभाषाएँ व्यक्ति के सम्पूर्ण वातावरण अथवा उसके पहलुओं के प्रति उसके समयोजन एवं समंजन (Adjustment and adaptation) पर बल देती है ।
2. दूसरे वर्ग की परिभाषाएँ सीखने की योग्यता (Ability to Learn) को बुद्धि के रूप में स्वीकार करती है ।
3. तीसरे वर्ग की परिभाषाएँ बुद्धि को अमूर्त चिन्तन (Abstract Thinking) की योग्यता मानती है ।

13.3 समायोजन पर बल देने वाली परिभाषाएँ

कुछ मनोवैज़ानिक ने बुद्धि को समयोजन करने की क्षमता या शक्ति माना है । जो व्यक्ति जितनी शीघ्रता से अपने आपको नये वातावरण के साथ समायोजित कर लेता है, वह उतना ही बुद्धिमान होता है । स्टर्न (Stern) के अनुसार, "नयी परिस्थितियों के अनुसार अपने विचारों को समायोजित करने की सामान्य क्षमता बुद्धि है ।''

कालविन (ब्संअपद) के शब्दों में, "एक व्यक्ति उसी अनुपात में बुद्धि रखता है जिस अनुपात में वह अपने नये वातावरण में समायोजित होने की क्रिया सीख चुका है या सीख सकता है ।"

क्रूज (Cru) के अनुसार, "बुद्धि नयी और विभिन्न परिस्थितियों में अच्छी प्रकार से समायोजन की योग्यता है ।"

सीखने की योग्यता पर बल देने वाली परिभाषाएँ

कुछ मनोवैज्ञानिक बुद्धि को सीखने की योग्यता मानते हैं । बुद्धि के द्वारा ही व्यक्ति सीखता है । जो व्यक्ति अपने पूर्वानुभवों द्वारा भविष्य में कुशलतापूर्वक लाभ उठाने की जितनी क्षमता रखता है, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान समझा जाता है । इस दृष्टि से कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार है -

बकिंघम (Buckingham) के मतानुसार, "बुद्धि सीखने की योग्यता है ।

डियरबोर्न (Dearborn) के शब्दों में, "बुद्धि सीखने या अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता है ।"

अमूर्त चिन्तन पर बल देने वाली परिभाषाएँ

कुल मनोवैज्ञानिक बुद्धि को अमूर्त चिन्तन करने की योग्यता मानते हैं । इस वर्ग में आने वाली परिभाषाएँ इस प्रकार है -

टरमन (Terman) के अनुसार, "एक व्यक्ति उसी अनुपात में बुद्धिमान होता है जितना वह अमूर्त रूप से चिन्तन की क्षमता रखता है ।"

स्पीयरमैन (Spearman) के शब्दों में, "बुद्धि सम्बन्धात्मक चिन्तन है ।"

स्पीयरमैन ने बुद्धि के सम्बन्ध में तीनों सिद्धान्तों (Principle) का प्रतिपादन किया है-

1. अनुभव बोध (Apprehension of Experience): अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का अवलोकन करने की योग्यता (The ability to observe one's own mental processes).
2. दो वस्तुओं अथवा तथ्यों में निहित सम्बन्ध को समझने की योग्यता (Ability to understand relation between two things or fact).
3. दिये हुये संबंध के आधार पर सम्बन्धित वस्तु अथवा तथ्य को समझने की योग्यता (Ability to understand related things or facts on the basis of given relationship) स्पीयरमैन ने उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर बुद्धि-परीक्षणों का निर्माण किया । इन परीक्षणों में सादृश्य (Analogy) के अनेक परीक्षण पद (Test

Item) रखे गये, जो उपर्युक्त सिद्धान्तों पर आधारित थे । आज भी बुद्धि परीक्षणों में सादृश्य (Analogy) के पदों की अधिकता रहती है ।

उपर्युक्त सभी प्रकार की परिभाषाएँ सत्य हैं क्योंकि हम ऐसा तो नहीं कह सकते है कि जो जल्दी सीखे या शीघ्र समायोजित हो, वहीं बुद्धिमान है । किन्तु इन सभी परिभाषाओं में आशिक सत्यता है, क्योंकि ये सभी बुद्धि के व्यापक स्वरूप का अपनी दृष्टि से वर्णन करती है। अत: इन्हें परस्पर विरोधी न समझकर परस्पर पूरक समझना चाहिए । इसी आधार पर कुछ आधुनिक मनोवैज्ञानिक ने बुद्धि की ऐसी व्यापक परिभाषाएँ देने का प्रयास किया है जो उपर्युक्त तीनों प्रकार की परिभाषाओं को अपने में समाहित कर लें । ऐसी परिभाषाओं का एक चौथा वर्ग बन जाता है जिसे हम संगोलिय (लसवइंस) परिभाषाओं का वर्ग कह सकते है । उनमें से कुछ प्रतिनिधि परिभाषाओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

संगोलीय परिभाषाएँ

रेक्सनाइट (Rexknight) के अनुसार, "बुद्धि वह मानसिक शक्ति है जिसके द्वारा हम किसी उद्देश्य की पूर्ति अथवा किसी समस्या के लिए तत्सम्बन्धी वस्तुओं तथा विचारों के परस्पर संबंधों का पता लगाते हैं तथा अन्य संगत विचारों को सोचते हैं ।" इस परिभाषा में स्पीयरमैन के सिद्धान्तों के अतिरिक्त इस बात पर भी बल दिया गया है कि बुद्धि का सम्बन्ध सोद्देश्य किया से होता है ।

वेश्लर (Wechsler) ने बुद्धि के सम्प्रत्यय को और भी व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, 'बुद्धि मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियों का योग अथवा संगोलीय क्षमता है जिनके द्वारा वह उद्देश्यपूर्ण कार्य करता है, तर्कपूर्ण ढंग से सोचता है तथा प्रभावपूर्ण ढंग से वातावरण में व्यवहार करता है ।"

इस परिभाषा में उद्देश्य के साथ ही साथ इस बात पर भी बल दिया गया है कि बुद्धि व्यक्ति की विभिन्न मानसिक शक्तियों का योग है ।

स्टोडार्ड (Stoddard) ने बुद्धि को और भी अधिक व्यापक अर्थों में लिया है । उन्होंने बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार दी है -

"बुद्धि वह मानसिक योग्यता है जिसके द्वारा ऐसी क्रियाओं को सम्पादित किया जाता है जिनमें कठिनाई, जटिलता, सूक्ष्मता, मितव्ययिता, सोद्देश्यता, सामाजिक महत्ता तथा मौलिकता होती है इन क्रियाओं का सम्पादन उन स्थितियों में भी जारी रखा जाता है जिनमें शक्ति के केन्द्रीकरण तथा संवेगात्मक प्रभावों का निरोध अपेक्षित होता है । "

स्टोडार्ड द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषा बहुत व्यापक है तथा बुद्धि के लगभग सभी पहलू इसके अन्तर्गत आ जाते हैं किन्तु इसमें बुद्धि के कुछ ऐसे लक्षणों का समावेश किया गया है जिनकी वैधता सन्देहास्पद है । सामाजिक महत्ता तथा प्रेरणा (जो शक्ति के केन्द्रीकरण के लिए अपेक्षित है) का अध्ययन करना बुद्धि की अपेक्षा व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं के अन्तर्गत अधिक उपयुक्त होगा ।

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् अनेक मनोवैज़ानिक ने बुद्धि के प्रकारों की चर्चा की है । थार्नडाइक (Thorndike) तथा कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है

कि बुद्धि कई प्रकार की होती है और उन्हें एक दूसरे से अलग पहचाना जा सकता है । उनके अनुसार मोटे तौर पर बुद्धि को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है -

1. सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence) अथवा व्यक्तियों को समझने और उनके साथ परस्पर व्यवहार करने की क्षमता ।
2. मूर्त या यांत्रिक बुद्धि (Concrete or Mechanical Intelligence) अथवा वस्तुओं, यंत्रों तथा औजारों के साथ व्यवहार करने की क्षमता ।
3. अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) अथवा संकेतों, प्रतिबिम्बों एवं शाब्दिक सामग्रियों से सम्बन्ध रखने वाली योग्यता ।

बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं एवं बुद्धि के प्रकारों की पाश्चात्य अवधारण की यदि समीक्षा करें तो हम यह कह सकते है कि बुद्धि के अंतर्गत सूक्ष्मता, जटिलता, सामाजिकता, मितव्ययिता, समायोजन, अमूर्त चिन्तन आदि सभी का समावेश होता है ।

1.3.1 बुद्धि की प्रकृति एवं विशेषताएँ

बुद्धि के स्वरूप के विषय में सभी मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं । परन्तु अब तक उन्होंने बुद्धि के विषय में जो कुछ भी तथ्य उजागर किए हैं उन्हें ही हम बुद्धि की प्रकृति (Nature) और उसकी विशेषताएँ (Characteristics) मान सकते हैं ।

1. **बुद्धि जन्मजात शक्ति है** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक बर्ट, शील्डस, स्कार, जेन्सन और शोकले आदि अपने प्रयोगों के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य की बुद्धि वंशानुक्रमीय होती है । जिस प्रकार मनुष्य की लम्बाई उसके वंशानुक्रमीय पित्रैकों पर निर्भर करती है, उसी प्रकार उसकी बुद्धि भी वंशानुक्रमीय पित्रैकों पर निर्भर करती है ।
2. **बुद्धि के उचित विकास के लिए पर्यावरण का महत्व है** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक द्विस्क्र, मैकलैण्ड गेग और कामिन आदि अपने प्रयोगों के द्वारा इरा निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य की जन्मजात बुद्धि के विकास के लिए तदनुकूल उचित पर्यावरण आवश्यक होता है । जिस प्रकार मनुष्य की लम्बाई की सीमा उसके वंशानुक्रमीय पित्रैकों के आधार पर निश्चित होती है पर उसके विकास के लिए उचित पोषण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार वंशानुक्रमीय पित्रैकों के आधार पर निश्चित बुद्धि की सीमा के विकास के लिए तदनुकूल सामाजिक एवं शैक्षिक पर्यावरण आवश्यक होता है ।
3. **मनुष्य की बुद्धि का विकास 20 वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाता है ।** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक पिन्टर ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह तथ्य उजागर किया कि मनुष्य की वंशानुक्रमीय बुद्धि का विकास किशोरावस्था के अन्त अर्थात् 16 वर्ष तक पूरा हो जाता है । कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि का विकास 20 वर्ष की आयु में पूर्णता को प्राप्त करता है, उसके बाद उसकी बुद्धि (बुद्धि लब्धि,Intelligence Quotient I.Q.) में कोई वृद्धि नहीं होती ।
4. **यौगिक क्रियाओं द्वारा जन्मजात बुद्धि में वृद्धि सम्भव है** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के निष्कर्षों के विपरीत भारतीय योग मनोवैज्ञानिकों का दावा है कि यौगिक क्रियाओं द्वारा

मनुष्य की जन्मजात बुद्धि में वृद्धि 30 से 40 प्रतिशत तक की जा सकती है और यह बात अब पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे है ।

5. **लिंग भेद के कारण बुद्धि में कोई अन्तर नहीं होता** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक कोल और ब्रूस अपने प्रयोगों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि लिंग के आधार पर बुद्धि में कोई अन्तर नहीं होता । और यह तथ्य अब सभी स्वीकार करते है ।
6. **बुद्धि सीखने की योग्यता है** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक बुडवर्थ, गाल्टन और डीयरवर्न आदि के अनुसार बुद्धि सीखने की योग्यता है । इनकी दृष्टि से जो मनुष्य नए तथ्यों एवं क्रियाओं को जितने कम समय एवं स्थायी रूप से सीख लेता है वह उतनी ही अधिक बुद्धि वाला होता है । इन मनोवैज्ञानिकों के इस विचार से ऐसा लगता है कि बुद्धि केवल सीखने की योग्यता है जबकि बुद्धि में अनेक योग्यताएँ होती है । अत: हम इसे दूसरे रूप में कहना अधिक उपर्युक्त समझते हैं और वह यह कि जिस मनुष्य में जितनी अधिक बुद्धि है, वह उतनी ही शीघ्र सीखता है और स्थायी रूप से सीखता है ।
7. **बुद्धि पर्यावरण के साथ समायोजन की योग्यता है** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक स्टर्न, बर्ट और पिन्टर और ने बुद्धि को पर्यावरण के साथ समायोजन करने की योग्यता माना है । उनके अनुसार जो व्यक्ति अपनी परिस्थितियों में जितनी शीघ्रता के साथ समयोजन कर लेता है वह उतनी ही अधिक बुद्धि वाला होता है । हम इसे भी दूसरे रूप में कहना अधिक उपर्युक्त समझते हैं कि जिस मनुष्य में जितनी अधिक बुद्धि होती है वह उतनी ही अधिक शीघ्रता से अपने पर्यावरण के साथ समायोजन करता है ।
8. **बुद्धि अमूर्त चिन्तन की योग्यता है** - पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक बिने, टरमैन और स्पीयरमैन आदि ने बुद्धि को चिन्तन की योग्यता माना है । उनके अनुसार जिस मनुष्य में चिन्तन करने अर्थात् सोचने-समझने और निर्णय करने की जितनी अधिक क्षमता होती है, उसमें उतनी ही अधिक बुद्धि होती है । इस तथ्य को भी हम ठीक इसके उल्टे क्रम में कहना उपर्युक्त समझते हैं कि जिस मनुष्य में जितनी अधिक बुद्धि होती है वह उतने ही उच्च स्तर का चिन्तन कर सकता है ।
9. **बुद्धि पूर्व अनुभवों एवं पूर्व अर्जित ज्ञान से लाभ उठाने की योग्यता है** - हम जानते हैं कि मनुष्य सदैव कुछ न कुछ सीखता रहता है और सीखने की यह क्रिया उसके जीवन भर चलती है । कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि पूर्व अनुभवों एवं पूर्ण अर्जित ज्ञान से लाभ उठाने की योग्यता है । उनके अनुसार जो मनुष्य अपने पूर्व अनुभवों एवं पूर्व अर्जित ज्ञान का प्रयोग करने में जितना कुशल होता है, वह उतनी ही अधिक बुद्धि वाला होता है । हम इस तथ्य को भी दूसरे रूप में कहना अधिक उपर्युक्त समझते हैं कि जिस मनुष्य में जितनी अधिक बुद्धि होती है वह उतने ही अधिक रूप में अपने पूर्व अनुभवों एवं पूर्व अर्जित ज्ञान का प्रयोग करता है ।
10. **बुद्धि समस्या-समाधान की योग्यता है** - कुछ पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक बुद्धि को समस्या-समाधान की योग्यता के रूप में लेते हैं । उनके अनुसार जो मनुष्य समस्या-समाधान में जितना अधिक निपूर्ण होता है, उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक होती है । इस तथ्य

को भी हम दूसरे रूप में कहना अधिक उपर्युक्त समझते हैं कि जिस मनुष्य में जितनी अधिक बुद्धि होती है । वह समस्या-समाधान उतनी ही अधिक सरलता से कर लेता है।

11. **बुद्धि अनेक योग्यताआं का समुच्चय है** - कोलेस्तिक, रेम्स, नाइट, वैशलर और स्टोडार्ट आदि अधिकतर मनोवैज्ञानिक के अनुसार बुद्धि अनेक योग्यताओं का समुच्चय होती है। वर्तमान में प्राय: सभी मनोवैज्ञानिक यहीं मानते हैं और बुद्धि का मापन इन्हीं योग्यताओं के मापन द्वारा करते हैं ।
12. **बुद्धि और ज्ञान में अन्तर होता है** - मनोवैज्ञानिक के अनुसार बुद्धि और ज्ञान में अन्तर होता है । पहला यह कि बुद्धि जन्म जात होती है परन्तु बुद्धि के लिए ज्ञान आवश्यक नहीं होता और ज्ञान अर्जित किया जाता है । दूसरा यह कि ज्ञान अर्जन के लिए बुद्धि आवश्यक नहीं और तीसरा एवं सबसे बड़ा अन्तर यह होता है कि किसी कारण बुद्धि में विकार आने से ज्ञान विस्मरण हो जाता है पर विस्मरण हो जाने से बुद्धि में कोई विकार नहीं आता ।

विशेष -

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक बुद्धि को अनेक मानसिक क्रियाओं का योग मानते हैं परन्तु हमारे प्राचीन भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को मन का नियन्त्रक माना है । हमारी दृष्टि से मनोवैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में शोध करनी चाहिए ।

बुद्धि का विकास -

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि जन्मजात होतीं है, वह वंशानुक्रमीय पित्रैकों पर आधारित होती है; अर्थात् बच्चे के माता-पिता के संसर्ग के समय उनके गुण सूत्रों के जिन पित्रैकों का संयोग होता है, उनके द्वारा निर्धारित होती है । और जिस प्रकार पित्रैकों पर आधारित मनुष्य की लम्बाई का पूर्ण विकास किशोरा-काल के अन्त तक हो पाता है उसी प्रकार उसकी बुद्धि का विकास भी किशोराकाल के अन्त तक पूरा हो पाता है । परन्तु इससे पहले कि हम बुद्धि के क्रमिक विकास का अध्ययन करें, हमें बुद्धि के विकास का अर्थ समझ लेना चाहिए। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि अनेक मानसिक योग्यताओं - सीखने की योग्यता, समयोजन की योग्यता, अमूर्त चिन्तन की योग्यता, पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता एवं समस्या-समाधान की योग्यता, आदि का योग होती है और वर्तमान में मनोवैज्ञानिक मनुष्य की बुद्धि का मापन इन्हीं योग्यताओं के मापन द्वारा करते हैं । अत: बुद्धि के विकास के अर्न्तगत हम इन्हीं योग्यताओं के क्रमिक विकास का अध्ययन करेंगे ।

शैशव काल में बुद्धि का विकास -

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने जन्म से 6 वर्ष तक के आयु काल को शैशव काल माना है। शैशव काल को भी इन्होंने दो उपकालों में विभाजित किया है - पूर्व शैशव काल (जन्म से 3 वर्ष) और उत्तर शैशव काल (2 वर्ष से 6 वर्ष) मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से शैशव काल में बुद्धि का विकास बहुत तेजी से होता है । प्रथम तीन वर्षों में शिशु इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभवों को धारण करने लगता है पर ये अनुभव सामान्य होते हैं, वह सभी चार पाए सफेद पशुओं को गाय के रूप में स्वीकार करता है । अन्तिम तीन वर्षों में वह विश्लेषण करने लगता है, दो वस्तुओं

में समानता एवं विभिन्नता समझने लगता है । इस समय उसकी अनुकरण की प्रवृत्ति बहुत तीव्र होती है, वह अनुकरण द्वारा सीखता है । अनुकरण के साथ जिज्ञासा की प्रवृति भी बड़ी क्रियाशील होती है, वह क्या क्यों और कैसे प्रश्न पूछने लगता है जो उसकी बुद्धि के विकास के परिचायक होते हैं । शिशु काल में शिशुओं की कल्पना शक्ति भी बहुत तीव्र होती है, शिशु माता-पिता, घुड़सवार, साइकिल सवार, शिक्षक और डॉक्टर आदि को कल्पना में सजोकर खेल-खेल में उनकी अभिव्यामी करते है । यह बात अवश्य है कि उनकी कल्पना का क्षेत्र सीमित होता है, वे अमूर्त चिन्तन नहीं कर पाते ।

बाल्य काल में बुद्धि का विकास

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने 6 वर्ष से 12 वर्ष तक के आयु काल को बाल्य काल माना है । इस काल को भी उन्होंने दो उपकालों में विभाजित किया है - पूर्व बाल्यकाल (6 से 9 वर्ष तक) और उत्तर बाल्य काल (9 से 12 वर्ष) । पूर्व बाल्य काल में बच्चे का अवधाम विस्तार बढ़ने लगता है, निरीक्षण शक्ति बढ़ने लगती है, दो तथ्यों में अन्तर करने की शक्ति बढने लगती है और समस्या-समाधान की योग्यता बढ़ने लगती है । उत्तर बाल्य काल में इन सब शक्तियों एवं योग्यताओं में दृढ़ता आती है । बाल्य काल के अन्तिम वर्षा में बच्चों में विवेक का विकास भी होने लगता है और वे स्वयं निर्णय लेने लगते हैं । मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से इस काल के अन्त तक बालकों की बुद्धि का 75 प्रतिशत विकास हो जाता है ।

किशोर काल में बुद्धि का विकास -

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने 12 से 18 वर्ष के आयु काल को किशोर काल माना है । इनकी दृष्टि से इस काल में किशोरों की बुद्धि का विकास बाल्य काल की अपेक्षा मन्द गति से होता है पर वह अपने पूर्णरूप से हो जाता है । किशोर काल में मनुष्य की बुद्धि की सभी मानसिक शक्तियों ध्यान, कल्पना, चिन्तन, तर्क, निर्णय एवं स्मृति आदि और सभी मानसिक योग्यताओं - सीखने की योग्यता, समायोजन की योग्यता, अमूर्त चिन्तन की योग्यता, पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता और समस्या समाधान की योग्यता आदि का पूर्ण विकास हो जाता है ।

अधिकतर मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से 20 वर्ष की आयु के बाद मनुष्यों की बुद्धि में कोई वृद्धि नहीं होती ।

विशेष -

यूँ अधिकतर मनोवैज्ञानिक यह मानते है कि मनुष्य की बुद्धि जन्मजात होती है अर्थात् वंशानुक्रमीय नहीं होती है और इसका विकास मनुष्य की 16 वर्ष की आयु तक पूरा हो जाता है और पर्यावरण अर्थात् बाह्य प्रयत्नों द्वारा उसमें उससे आगे वृद्धि नहीं की जा सकती, परन्तु इस सन्दर्भ में पहल बात तो यह है कि किसी भी प्रकार की वंशानुक्रमीय शक्तियों के विकास के लिए तद्नुकूल उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है और दूसरी बात यह है कि अब यौगिक क्रियाओं द्वारा मनुष्य की जन्मजात बुद्धि में 30 से 45 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। तब कहना न होगा कि बुद्धि का विकास वंशानुक्रम एव पर्यावरण दोनों पर निर्भर करता है और मनुष्य की 16 वर्ष की आयु परी होने के बाद भी इसमें वृद्धि एवं विकास करना सम्भव है।

बुद्धि के प्रकार

मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक (जिवतदकपाम) ने बुद्धि के तीन प्रकार बताए थे गामक या यान्त्रिक बुद्धि (Motor or Mechanical Intelligence), अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) और सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)ए । गैरेट (Garette) ने थॉर्नडाइक की गामक अथवा यान्त्रिक बुद्धि को मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence) की संबा दी वर्तमान में बुद्धि के ये ही तीन प्रकार माने जाते है ।

1. **मूर्त बुद्धि** - वह बुद्धि जो मनुष्यों को वस्तुओं के स्वरूप को समझने एवं तदनुकूल क्रिया करने में सहयोग करती है, उसे गैरेन्ट ने मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence) की संबा दी । मूर्त बुद्धि इसलिए कि वह मूर्त वस्तुओं को समझने एवं मूर्त क्रियाओं को करने में सहायता करती है । इस प्रकार की बुद्धि को थार्नडाइक ने गत्यात्मक बुद्धि (Motor Intelligence) या यान्त्रिक बुद्धि (Mechanical Intelligence) कहा था । जिन बच्चों में इस प्रकार की बुद्धि की अधिकता होती है वे वस्तुओं के तोड़ने-जोड़ने में विशेष रूचि लेते हैं । अन्य शारीरिक कार्य, जैसे - खेल-कूद एवं नृत्य आदि में भी उनकी रूचि होती है । ऐसे बच्चे आगे चलकर कुशल कर्मकार और इंजीनियर बनते है ।
2. **अमूर्त बुद्धि** - वह बुद्धि जो मनुष्यों को पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने में, विभिन्न तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने में, सोचने-समझने में और समस्याओं के समाधान खोजने में सहायता करती हैं, उसे थार्नडाइक ने अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) की सबा दी । अमूर्त बुद्धि इसलिए क्योंकि वह अमूर्त चिन्तन-मनन और समस्या समाधान में सहायक होती है । जिन बच्चों में इस प्रकार की बुद्धि की अधिकता होती है वे पुस्तक अध्ययन और चिन्तन-मनन में अधिक रूचि लेते हैं । ऐसे बच्चे आगे चलकर अच्छे वकील, डॉक्टर, अध्यापक, साहित्यकार, चित्रकार और दार्शनिक बनते है ।
3. **सामाजिक बुद्धि** - वह बुद्धि जो मनुष्यों को अपने समाज में समायोजन करने एवं सामाजिक कार्यो में भाग लेने में सहायता करती है, उसे थार्नडाइक ने सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence) की संबा दी है । जिन बच्चों में इस प्रकार की बुद्धि की अधिकता होती है वे परिवार के सदस्यों, समाज के हमजोलियों और विद्यालय के सहपाठियों के साथ समायोजन करते हैं और सामाजिक कार्यों में रूचि लेते हैं । ऐसे बच्चे आगे चलकर अच्छे व्यवसायी, समाज सेवक एव राजनेता बनते है ।

बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

बुद्धिः

दैनिक जीवन के अनुभवों में समाज में यह देखा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धि दूसरे से भिन्न होती है । बुद्धि की इस भिन्नता के मुख्य रूप से दो कारण है - एक आनुवांशिकता (Heredity or Genetics) और दूसरा वातावरण (Environment) । इन दोनों कारकों के पक्ष में अनेक प्रयोगात्मक साक्ष्य है । इस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहने से पूर्व आवश्यक है कि दोनों कारकों के पक्ष में जो साक्ष्य हैं उनका अवलोकन कर लिया जाये ।

आनुवांशिकता

कुछ मनोवैज्ञानिक अध्ययनों (Burt ,1955,1956; Shields, 1962; Scarr, 1981) में इस प्रकार अध्ययन किया गया कि जन्म के तुरन्त बाद बच्चों को लेकर एक समान वातावरण वाले घरों में रखा दिया गया, जिसमें इनका लालन-पालन पोष्य माता-पिता (Foster Parent) द्वारा किया गया । कुछ वर्ष बाद इन बच्चों, इनके पोष्य माता-पिता और इनके वास्तविक माता-पिता (Real Parent) की बुद्धि का मापन किया गया । परिणाम में यह पाया गया कि बच्चों की बुद्धि एक दूसरे के समान न होकर भिन्न है, जबकि सभी बच्चे एक ही वातावरण में पोषित हुए थे । इनकी बुद्धि एक दूसरे में अन्तर इनकी अलग-अलग आनुवांशिकता के कारण था । स्कार (1981) ने अपने अध्ययन में देखा कि बच्चों की बुद्धि और वास्तविक माता-पिता की बुद्धि 0.50 सहसम्बन्ध गुणांक पाया गया जबकि बच्चों और उनके पोष्य माता-पिता के बीच इसी सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.25 था । इरा अध्ययन के आधार पर कह सकते है कि बच्चों की बुद्धि पर आनुवांशिकता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।

एक अण्डे वाले जुड़वाँ बच्चों (Identical Twin Children) की आनुवांशिकता लगभग 100 प्रतिशत समान होती है । दूसरी भ्रात्रीय जुड़वां बच्चों (Fraternal Twin Children) की बुद्धि में 50 प्रतिशत तक समानता होती है । स्कार (1981) ने इस जुड़वाँ बच्चों को लेकर ऐसे 20 अध्ययन किये हैं और उसने अपने अध्ययन में देखा कि एक अण्डे वाले जुड़वाँ बच्चों की बुद्धि में सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.90 था । दूसरी और भ्रात्रीय जुड़वाँ बच्चों में यही सहसम्बन्ध गुणांक 0.55 था । इससे स्पष्ट होता है कि आनुवांशिकता बुद्धि का निर्धारण करती है ।

एक अण्डे वाले जुड़वाँ बच्चों (Identical Twin Children) को जन्म के तुरन्त बाद अलग-अलग वातावरण में रखकर पालन-पोषण किया गया । दूसरी और भ्रात्रीय जुड़वा बच्चों (Fraternal Twin Children) को समान वातावरण में रखकर पालन-पोषण किया गया । एक अण्डे वाले जुड़वा बचें की बुद्धि में अधिक समानता थी । जेनसन (लमदेवदए 1972) ने इस तरह के अध्ययनों से यह परिणाम निकाला कि आनुवांशिकता बुद्धि को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है जबकि वातावरण की भूमिका काफी सीमित होती है ।

जेनसन (Genson1972) ने बुद्धि और आनुवांशिकता सहसम्बन्ध 0.80 पाया । उनका यह कहना है कि बौद्धिक भिन्नता (Intellectual Difference) लगभग 80 प्रतिशत आनुवांशिक कारकों द्वारा निर्धारित होती है और वातावरण के कारक इस भिन्नता के लिये केवल 20 प्रतिशत ही जिम्मेदार हैं । जेनसन के यह परिणाम जेनसन उपकल्पना (Genson Hypothesi) के नाम से जाने जाते हैं । इस उपकल्पना के आधार पर कह सकते हैं कि बुद्धि के निर्धारण में वातावरण कारकों की अपेक्षा आनुवांशिकता कारक की भूमिका चार गुण अधिक है । बोचार्ड और उनके साथियों (Bouchard, et. al., 1990) को भी इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए है । उसके अध्ययनों से इस परिकल्पना को समर्थन व बल मिलता है।

कुछ अध्ययनों (Bouchard and Mcgeach,1981;Erlemeyer, et al., 1963) के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि रिश्तेदार बच्चों की बुद्धि में समानता अधिक होती हैं,

विशेष रूप से उन बच्चों की अपेक्षा जो आपस में रिश्तेदार नहीं हैं । चचेरे, फुफेरे और ममेरे भाइयों की बुद्धि में जितनी समानता होती है उतनी समानता असम्बन्धित बालकों की बुद्धि में नहीं होती है । इससे स्पष्ट है कि बुद्धि का निर्धारण आनुवांशिकता के द्वारा महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित होता है ।

वातावरण का भी महत्व बौद्धिक विकास से पर्याप्त रूप से होता है । जो मनोवैज्ञानिक वातावरण सम्बन्ध कारकों को महत्व देते है । उनका यह मानता हैं कि वंशानुक्रम या जीन्स तो केवल यह निर्धारित करते हैं कि बुद्धि की निचली और ऊपरी सीमा क्या होगी? जो मनोवैज्ञानिक वातावरण संबंधी कारकों को महत्व देते है । उनका यह मानना है कि बच्चे का स्वास्थ्य, बच्चे का आहार, सांवेगिक वातावरण और उद्दीपंक स्तर आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण वातावरणीय कारक हैं आहार, सांवेगिक वातावरण और उद्दीपक सार आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण वातावरणीय कारक हैं जिनका प्रभाव बौद्धिक विकास पर सार्थक ढंग से पड़ता है ।

अनेक मनोवैज्ञानिक (Hirsch, 1970; MCelland, 1972, Gage, 1972, Kamin, 1974) ने ऊपर दिये हुए आनुवांशिकता सम्बन्धी अध्ययनों की आलोचना इन अध्ययनों की त्रुटियों को निकाल कर की है । इन मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि उपरोक्त अध्ययनों की प्रक्रिया विधि में अनेक त्रुटियाँ थीं, इन अध्ययनों में बुद्धि का मापन करने के लिये अलग-अलग प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग किया गया, इसके अतिरिक्त बुद्धि परीक्षण उपर्युक्त मानकीकृत नहीं थे ।

रामे और कैम्पबैल (Ramey and Campbell, 1979) ने अपने एक अध्ययन में देखा कि जिन बच्चों का पालन-पोषण प्रेरणात्मक वातावरण और धनाढ्य परिवारों में हुआ था, उनकी बुद्धि अधिक थी । दूसरी ओर दूसरे समूह के बच्चों को अप्रेणात्मक वातावरण और गरीब घरों में पाला-पोसा गया, इन बच्चों की बुद्धि पहले समूह के बच्चों की बुद्धि की अपेक्षा बहुत कम थी । अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन ने सन् 1956 में अमेरिका में बच्चों की बुद्धि को बढ़ाने का कार्यक्रम चलाया गया । कार्यक्रम के अन्त में यह देखा गया कि बच्चों की बुद्धि में 10 (I.Q.) का इजाफा हुआ अर्थात् हर बच्चे की (I.Q.) लगभग 10 बिन्दु बढ़ गई ।

एक अध्ययन (Wachsngren, 1982) में यह अध्ययन किया गया कि बालकों की बुद्धि पर शोरगुल और परिवार की दुर्व्यवस्था का क्या प्रभाव पड़ता है । इस अध्ययन के परिवारों में पाया गया क जिस परिवार में दुर्व्यवस्था जितनी अधिक होती है बच्चों की बुद्धि का अपेक्षाकृत उतना ही कम हो जाता है । एक अन्य अध्ययन (ळवजजतिपमकए 1984) में यह सिद्ध किया गया कि जब बालकों के पालन-पोषण पर माता-पिता का ध्यान कम होता है और बालकों की सफलता पर उपर्युक्त पुरस्कार नहीं मिलता है तो ऐसे बालकों की बुद्धि ऋणात्मक रूप से प्रभावित होती है और उनकी बुद्धि कम रह जाती है ।

कुछ अध्ययनों (Royce, et al., 1983, Zigler and Berman, 1983) में यह देखा गया कि जब बच्चों को अलाभान्वित परिवारों से चुना गया तब इनकी बुद्धि में पर्याप्त विकास देखा गया । इन अध्ययनों से स्पष्ट हुआ कि बालकों के बौद्धिक विकास पर पर्यावरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।

ज्योंक और मार्क्स (Zajonc and Markus, 1986) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि बुद्धि और जन्म क्रम में महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है । इन मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों में यह निष्कर्ष निकाला कि पहले जन्मक्रम वाले बच्चों की बुद्धि दूसरी जन्मक्रम वाले बच्चे की अपेक्षा अधिक होती है । बेले ने बुद्धि-लब्धि और उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर और निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर का अध्ययन किया है । उसने अपने अध्ययनों के बाद यह निष्कर्ष निकाला क निम्न आर्थिक स्तर वाले परिवारों में जन्मे बच्चों की बुद्धि कम होती है अपेक्षाकृत उन परिवारों के बच्चों से जिनका आर्थिक स्तर उच्च होता है ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जहां कुछ मनोवैज्ञानिक जेनेटिक्स और आनुवांशिकता को महत्व देते हैं और यह मानते हैं कि बुद्धि के विकास में आनुवांशिकता की भूमिका 80 प्रतिशत होती है तथा वातावरण सम्बन्धी कारकों की भूमिका मात्र 20 प्रतिशत होती है । दूसरी और वातावरण कारकों को महत्व देने वाले मनोवैज्ञानिक यह मानते है कि आनुवांशिकता तो केवल बुद्धि की सीमाओं का निर्धारण करती है, वातावरण की भूमिका के बिना बालक की बुद्धि का विकास उचित रूप से नहीं हो सकता है । यहां यह बता देना उपयुक्ता है कि आनुवांशिकता का प्रभाव बुद्ध के विकास पर पड़ता है, वातावरण का प्रभाव भी बुद्धि के विकास पर पडता है । इन दोनों कारकों का अलग-अलग प्रभाव तो बुद्धि के विकास पर पड़ता ही है साथ-साथ इन दोनों कारकों का अन्तःक्रियात्मक प्रभाव भी बुद्धि के विकास पर पड़ता है । इस सम्बन्ध में हान्जिक (भ्वद्रपाए1973) के अनुसार) "Heredity sets the limits and is relevant to the child's intelligence as measured by his mental test performance but the correlations are low and suggest the effect that experiential factors may be having on the mental growth pattern. Environment factors don't begin with the birth of the child but at conception or before''. - Honzik: The Development of Intelligence, 1973.

बुद्धि का मापन

बुद्धि के मापन का इतिहास बहुत पुराना है । प्राचीन काल में हमारे देश भारत में किसी व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान उसकी सीखने, स्मरण करने, तर्क करने एवं कल्पना करने की शक्ति से लगाया जाता था । ज्योतिषशास्त्र के विकास के बाद उसकी जन्मकुण्डली को देखकर यह बताया जाने लगा कि वह उच्च, मध्यम अथवा निम्न बुद्धि का होगा । हस्तरेखा विशेषज्ञ यह बात हाथ की रेखाओं को देखकर बता देते हैं । कुछ लोग चेहरे की बनावट, नाक, कान व माथा देखकर भी मनुष्य की बुद्धि का अनुमान लगा लेते हैं । बच्चों के सामने पहेलियाँ के रूप में समस्याओं को उपस्थित कर उनकी बुद्धि का मापन करना एक सामान्य विधि रही है । परन्तु इन सब विधियों से यह तो अनुमान लगाया जा सकता है कि कौन व्यक्ति बुद्धिमान है और कौन नहीं परन्तु यह पता नहीं लगाया जा सकता है कि कौन व्यक्ति कितना बुद्धिमान है।

बुद्धि के प्रामाणिक मापन की विधियों की खोज आधुनिक युग में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने शुरू की । इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम जर्मन मनोवैज्ञानिक वुन्ट (वनदज) का नाम आता है । उसने 1879 में बुद्धि मापन के लिए एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना

की थी । इस प्रयोगशाला में व्यक्ति की बुद्धि का मापन यन्त्रों की सहायता से किया जाता था । इसी प्रयोगशाला में वुन्ट के शिष्य कैटिल (Cettell) ने बुद्धि परीक्षण तैयार करने का प्रयास किया । उसने मनुष्य का बुद्धि के मापन का आधार उसकी कार्य करने की तत्परता, तीव्रता एवं पूर्णता और प्रत्यक्षीकरण एवं विभेदीकरण की शक्ति को माना ।

परन्तु इनके द्वारा तैयार किए गए परीक्षणों को अब बुद्धि परीक्षण नहीं माना जाता क्योंकि ये केवल मानसिक क्रियाओं का मापन करते है । (Alfred Binet) था । उसने अपने साथी साइमन (Simon) के सहयोग से 1905 में एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया जो आज भी प्रामाणिक माना जाता है । बिने को बुद्धि परीक्षण का जन्मदाता माना जाता है ।

बिने और साइमन ने बुद्धि के मापन का आधार बच्चों के निर्णय, स्मृति, तर्क एवं आंकिक जैसे मानसिक कार्यो को माना । उन्होंने इन कार्यों से सम्बन्धित अनेक प्रश्न तैयार किए और उन्हें अनेक बच्चों पर प्रशासित किया । अन्त में उन्होंने इनमें से केवल 30 प्रश्नों का चयन किया और उन्हें सरल से कठिन के क्रम में व्यवस्थित कर उसे बुद्धि परीक्षण का रूप दिया ।

बिने-साइमन के इस परीक्षण में जो बालक अपनी आयु के लिए निर्धारित सभी प्रश्नों के सही उत्तर देता है वह सामान्य बुद्धि का होता है, जो अपनी आयु से ऊपर की आयु के बच्चों के लिए निर्धारित प्रश्नों के उत्तर भी देता है वह उच्च बुद्धि का होता है और जो अपनी आयु से ऊपर की आयु के बच्चों के लिए निर्धारित प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे पाता वह निम्न बुद्धि का होता है । उसी समय विलियम स्टर्न (William Stern,) ने बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, I.O.) के प्रयोग का सुझाव दिया । यह बुद्धि लब्धि बच्चे की मानसिक आयु को उसकी वास्तविक आयु
से भाग करके, 100 गुणा करने पर प्राप्त की जाती है ।

$$\text{बुद्धि लब्धि (I.Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु (M.A).}}{\text{वास्तविक आयु (C.A)}} \times 100$$

बिने महोदय मनोवैज्ञानिकों को बुद्धि मापन का आधार दे गए । देश-विदेश के मनोवैज्ञानिकों ने बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण को मान्यता प्रदान की । अमेरिका के स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में टरमैन (M.L. Terman) को अध्यक्षता में बिने-साइमन परीक्षा का अमेरिका देश के सन्दर्भ में अनुकूलन किया गया और इसे 1916 में स्टेनफोर्ड बिने स्केल (Stanford Binet Scale) के नाम से प्रकाशित किया गया । इसके बाद अमेरिका के मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक (Thorndike) ने 1926 में एक बुद्धि परीक्षण तैयार किया । उसने स्पष्ट किया कि बुद्धि को उसके देखे जा सकने वाले उत्पाद (Product) के रूप में मापा जा सकता है । र्थानडाइक के अनुसार बुद्धि के उत्पाद वे कार्य हैं जिन्हें कोई व्यक्ति पूर्ण करने में समर्थ होता है।

भारत में बुद्धि परीक्षण की इस तकनीक की शुरूआत बिने-साइमन परीक्षण के अनुवाद से शुरू हुई। सर्वप्रथम भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने बिने-साइमन परीक्षण के संशोधित संस्करण 1911 का तमिल तथा बंगाली भाषा में अनुवाद किया । इसके बाद 1912 में राइस महोदय

(ब्ण्भ्ण त्पबम) ने बिने-साइमन परीक्षण का भारतीय परिस्थितिनुकूल अनुकूलन (।कंचजंजपवद) किया और उसे 'हिन्दुस्तानी बिने परफोरमेन्स स्केल' का नाम दिया । इसके बाद तो हमारे देश में अनेक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ । 1927 में इलाहाबाद मनोविज्ञानशाला में मुनरी ने कुछ बुद्धि परीक्षण तैयार किए । इसके बाद लज्जा शंकर झा ने 1933 में, जलोटा ने 1934 में, कीमथ ने 1939 में, सोहनलाल ने 1942 में और सी.एम. भाटिया ने 1955 में बुद्धि परीक्षण तैयार किए । इनमें भाटिया बैटरी ने सर्वाधिक मान्यता प्राप्त की । 1955 से 2003 तक तो न जाने कितने और बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हुआ है, सभी ने अपने-अपने क्षेत्रों के लिए अपने-अपने तरीकों के बुद्धि परीक्षण तैयार किए है ।

बुद्धि को मापना

'बुद्धि परीक्षा' से ही हम व्यक्ति की बुद्धि के सम्बन्ध में जान सकते है । बुद्धि को मापने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने कई बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण किया है ।

बुद्धि परीक्षाओं का वर्गीकरण

1. जहां तक प्रशासनिक दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, बुद्धि को दो व्यापक वर्गों में बांटा जा सकता है
2. व्यक्तिगत-परीक्षाएं - इसमें केवल एक व्यक्ति की परीक्षा ली जाती है ।
3. सामूहिक परीक्षाएं - इनमें व्यक्तियों के समूह की परीक्षा ली जाती है ।
4. 'परीक्षा के रूप' के आधार पर बुद्धि परीक्षा के दो वर्गो में बांटा जाता है-
5. शाब्दिक या भाषात्मक परीक्षायें
6. अशाब्दिक या भाषा रहित परीक्षायें
7. भाषात्मक परीक्षाएं - इन परीक्षाओं में भाषा का प्रयोग किया जाता है इसमें शब्दों (मौखिक या लिखित रूप में) के द्वारा आदेश दिये जाते हैं तथा व्यक्तियों को जवाब देने के लिये भाषा के प्रयोग की अनुमति होती है ।
8. अशाब्दिक या भाषा-रहित परीक्षाएं - इन परीक्षाओं में ऐसी क्रियायें होती हैं जिन में भाषा का प्रयोग आवश्यक नहीं होता । आदेश भले ही भाषा द्वारा दी जाएं परन्तु परीक्षा सामग्री तथा अनुक्रिया (Response) में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता ।

'क्रिया-परीक्षाएं' ही भाषा रहित परीक्षायें होती है । इन परीक्षाओं की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित होती है-

9. इस परीक्षा की 'परीक्षा सामग्री' ठोस वस्तुओं पर आधारित होती है ।
10. इन परीक्षाओं में जो कुछ व्यक्ति को करना होता है उसे परीक्षक द्वारा संकेतों या इशारों से समझाया जा सकता है ।
11. व्यक्ति की अनुक्रिया उसे कार्य पर निर्भर होती है ।
12. प्राय: ये व्यक्तिगत परीक्षाएं होती हैं । जैसा डा. पिल्लै (Dr. Pillai) ने कहा है, 'इन्हें ग्रुप-परीक्षा के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इनसे परीक्षार्थी का व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण करना होता है और उसे आवश्यक निर्देशन देना होता है ।

बुद्धि परीक्षा के तमाम वर्गो को चित्र में इस प्रकार दिखाया जा सकता है-

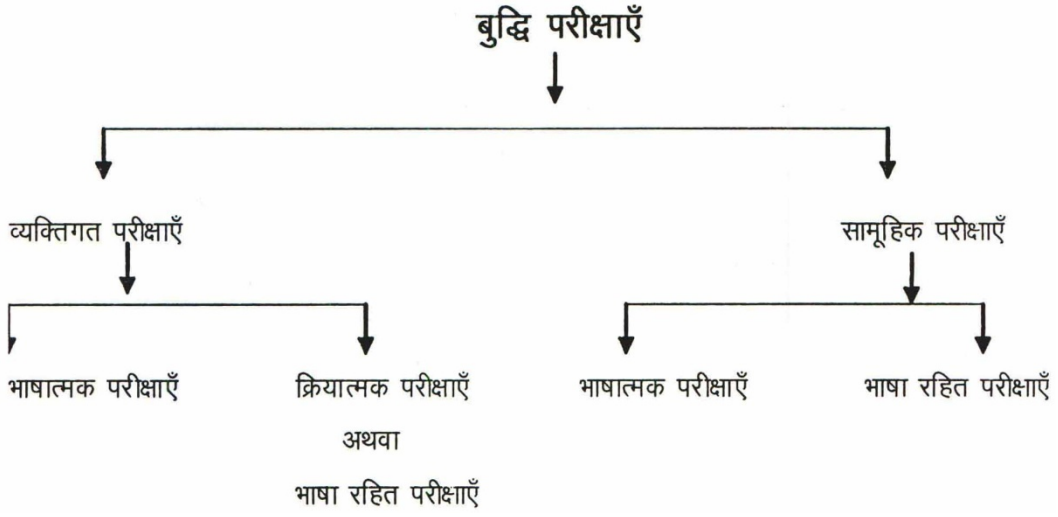

बुद्धि-लब्धि का वर्गीकरण -

स्टर्न द्वारा किये गये बुद्धि-लीख के सूत्र का प्रयोग करते हुए टरमैन ने अपने बुद्धि परीक्षणों के द्वारा बहुत से व्यक्तियों तथा बालकों की (विभिन्न आयु वर्गों के) बुद्धि परीक्षाएं ली। उसने पाया कि बुद्धि की दृष्टि से व्यक्तियों तथा बालकों में बहुत अधिक भिन्नतायें पायी जाती हैं । अगर इन भिन्नताओं का ध्यान से अवलोकन किया जाए तो व्यक्तियों को उनकी बुद्धि-लब्धि के हिसाब से विभिन्न बुद्धि समूहों में विभाजित किया जा सकता है जिसमें उन्हें औसत से कम या अधिक बुद्धिमान बताया जा सकें । इस प्रकार का एक वर्गीकरण, जिससे बुद्धि की दृष्टि से वैयक्तिक भेदों को समझने में मदद मिल सकती है, टरमैन के अनुसार भिन्न प्रकार का हो सकता है।

बुद्धि - लब्धि (I.Q)	बुद्धिमानता की श्रेणी (Level of Intelligence)
140 और उससे ऊपर	प्रतिभाशाली (Giften or Genious)
120 - 140	बहुत अधिक या प्रखर बुद्धि वाला (Very Superior)
110 - 120	अतिसामान्य या औसत से अधिक बुद्धि वाला (Superior)
90 -110	औसत या सामान्य बुद्धि वाला (Normal or Average)
75 - 90	सीमा पर और अल्प बुद्धि (Border Lined and Dull)
50 - 75	मूर्ख (Morons)
25 -50	मूढ़ (imbecile)
25 से कम	महामूर्ख या जड़ - बुद्धि (Idiot)

परन्तु जहां तक भारतीय परिस्थितियों में प्रयुक्त बुद्धि परीक्षणों का प्रश्न है उनको ध्यान में रखते हुए प्रो. उदयशंकर द्वारा वर्णित निम्न वर्गीकरण अधिक उपुयक्त सिद्ध हो सकता है -

बुद्धि - लब्धि (I.Q)	बुद्धिमानता की श्रेणी (Level of Intelligence)
140 और उससे ऊपर	और उससे ऊपर प्रतिभाशाली (Giften or Genius)
120 - 140	अति श्रेष्ठ (Very Superior)
110 - 120	श्रेष्ठ (Superior)
90 -110	औसत (Average)
75 - 90	सीमा और अल्प बुद्धि (Border Lined and Dull)
50 - 75	मूर्ख (Morons or Feeble Minded)
25-50	मूढ़ (Imbecile)
25 से कम	से कम महामूर्ख या जड़ बुद्धि (Idiot)

मानसिक आयु तथा बुद्धि-लब्धि की अवधारणा

हमने ऊपर मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि का उल्लेख किया है । इनके सम्बन्ध में कुछ जानना उपयोगी होगा ।

मानसिक आयु - सबसे पहले बिने (Binet) ने 'मानसिक आयु' का प्रयोग किया था । निम्नलिखित उदाहरणों से इस धारणा को समझा जा सकता है -

मान लो, एक परीक्षा में 100 प्रश्न हैं (जैसे जलोटा कृत परीक्षा में) और परीक्षार्थियों की अधिकांश संख्या, जिनकी आयु 13 वर्ष 6 महिने है, 48 प्रश्नों की ठीक उत्तर देने में सफल हो जाती है, तो कोई भी व्यक्ति (जिनकी वास्तविक आयु चाहे कितनी ही क्यों न हो) जो 48 प्रश्नों के ठीक उत्तर दे सकता है, उसकी मानसिक आयु 13 वर्ष 6 महिने होगी ।

बुद्धि लब्धि (intelligence Quotient or I.Q.) - जर्मन मनोवैज्ञानिक विलियम स्टर्न (William Sterm) ने सबसे पहले इसका प्रयोग किया था और बाद में टरमैन (Terman) ने भी इसका प्रयोग किया । स्टर्न (Stern) ने अनुभव किया कि यदि 6 वर्ष की आयु का बच्चा 8/6 अर्थात् 1. 33 दर्ज अधिक बुद्धिमान होगा अर्थात् व्यक्ति के मानसिक विकास को मापने के लिये उसने मानसिक आयु / वास्तविक आयु अनुपात बनाया ओर उसे बुद्धि-लब्धि (I.Q.) की संज्ञा प्रदान की।

दशमलव अनुपात को दूर करने के लिये उसने अनुपात को 100 गुणा करने का नियम बनाया और इस प्रकार (I.Q.) निकालने का निम्न सूत्र बन गया-

$$\text{बुद्धि लब्धि (I.Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

13.4 बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि का स्वरूप क्या है ओर बुद्धि कैसे कार्य करती है, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के आधार पर, भिन्न-भिन्न निकाले है । इन निष्कर्षों को बुद्धि के सिद्धान्त कहा जाता है । यहाँ बुद्धि सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है । इन सिद्धान्तों से बुद्धि के स्वरूप एवं कार्य विधि को समझने में सहायता मिलेगी और साथ ही उसके मापन की विधियों को भी समझने में सहायता मिलेगी । अस्तु -

1. **एक कारक अथवा एक सत्तात्मक सिद्धान्त** - बिने (Binet), टरमैन (Terman) और स्टर्न (tern) अपने अध्ययनों से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्धि अपने में एक इकाई कारक, शक्ति अथवा ऊर्जा है जो व्यक्ति की सभी क्रियाओं को प्रभावित करती है । इस सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी व्यक्ति की बुद्धि तीव्र है तो वह किसी भी कार्य को दक्षता के साथ कर सकता है । जॉनसन (Johnson) ने तो इस सन्दर्भ में यहाँ तक कहा है कि यदि वैज्ञानिक न्यूटन अपनी बुद्धि का प्रयोग विज्ञान के क्षेत्र में न करके साहित्य के क्षेत्र में करते है तो वे एक अच्छे साहित्यकार होते है ।

परन्तु यथार्थ तो यह है कि तीव्र अर्थात् उच्च बुद्धि वाले व्यक्ति सभी क्षेत्रों में समान रूप से सफलता प्राप्त नहीं करते, यह उनकी बुद्धि के साथ-साथ उनकी रूचि, रूझान एवं आवश्यकताओं की तीव्रता आदि पर भी निर्भर करता है । यही कारण है कि वर्तमान में इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जाता ।

2. **द्विकारक सिद्धान्त** - बिट्रिश मनोवैज्ञानिक स्पीयरमैन (pearman) ने अपने प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला कि बुद्धि दो कारकों (शक्तियों अथवा योग्यताओं) का योग है । प्रथम कारक को उन्होंने सामान्य मानसिक योग्यता (General Mental, Ability G) तथा दूसरे कारक को विशिष्ट मानसिक योग्यता (Specific Mental Ability,) कहा । उन्होंने स्पष्ट किया कि सामान्य योग्यता (G) व्यक्ति को भी कार्यों में सहायता करती है और विशिष्ट योग्यता (S) उसे उसी कार्य में सहायता करती है । जिसके लिए वह होती है । उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि सामान्य योग्यता (G) एक ही होती है परन्तु विशिष्ट योग्यता (S) अनेक होती है । उन्होंने इन्हें क्रमश: सामान्य बुद्धि (General Intelligence) और विशिष्ट बुद्धि (Specific Intelligence) की संज्ञा दी और विभिन्न प्रकार की विशिष्ट योग्यताओं को S1, S2, S3, S4 आदि से व्यक्त किया । इसे सामने अंकित रेखाचित्र द्वारा देखा-समझा जा सकता है ।

द्विकारक सिद्धान्त

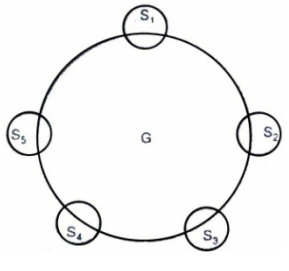

विद्वानों ने स्पीयरमैन की यह बात तो स्वीकार की कि मनुष्य के कार्यों में उसकी सामान्य बुद्धि (G) और विशिष्ट बुद्धि (S) कार्य करती हैं परन्तु चूँकि इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट नहीं होता है कि किसी कार्य के सम्पादन में उसकी किस बुद्धि अथवा कारक का कितना योग होता है इसलिए उन्होंने इस सिद्धान्त को भी स्वीकार नहीं किया ।

3. **त्रिकारक सिद्धान्त (Three Factor Theory)** - द्वि-कारक सिद्धान्त की कमी को स्वयं स्पीयरमैन ने समझ लिया था और उसे दूर करने के लिए उन्होंने त्रिकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । उन्हें बुद्धि के (G) और ¼ S½ कारकों (तत्वों) के साथ एक तीसरा कारक - समूह कारक और जोड़ दिया । समूह कारक से उनका तात्पर्य उस कारक से था जो (G) तथा (S) कारकों में समान रूप से विद्यमान रहता है । इसे सामने अंकित रेखाचित्र द्वारा देखा समझा जा सकता है ।

त्रिकारक सिद्धांत

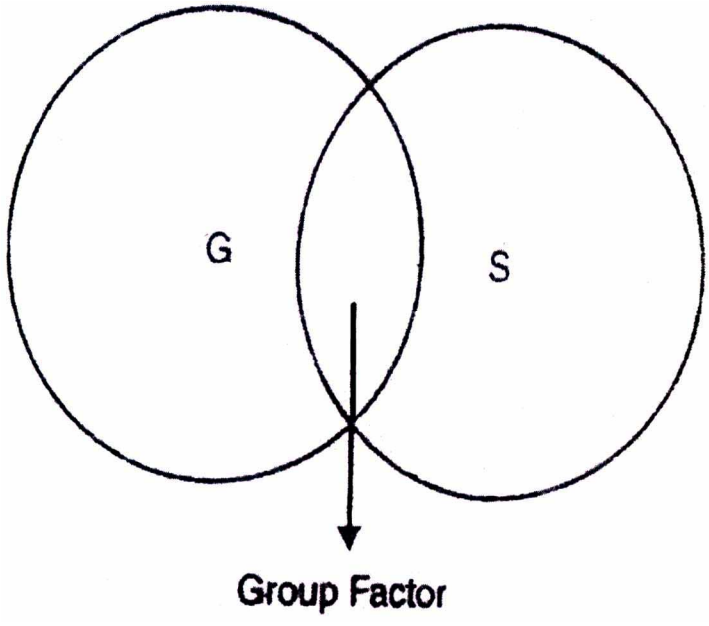

अमरीकी मनोवैज्ञानिक थॉर्नडाइक (Thorndike) ने इस सिद्धान्त की आलोचना की और कहा कि बौद्धिक कार्य जटिल तन्तु संस्थान से सम्पादित होते हैं और विभिन्न शैलियों (Patterns) में सम्पादित होते हैं, उन्हें (G'',) और सामूहिक (Group Factor) कारक के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता ।

4. **बहुकारक अथवा असत्तात्मक सिद्धान्त** - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमरीकी मनोवैज्ञानिक थार्नडाइक ने किया है । उसके अनुसार बुद्धि में सामान्य योग्यता जैसा कोई तत्व नहीं होता, बुद्धि तो अनेक विशेष प्रकार के तत्त्वों का योग है, और किसी भी मानसिक कार्य करने में कई तत्त्व मिलकर एक साथ कार्य करते हैं । उन्होंने स्पष्ट किया कि जिन अनुभवों में उद्दीपन (Stimulus) और अनुक्रिया (Response, R) में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है उनका प्रयोग मनुष्य भविष्य में उसी प्रकार की समस्याओं को हल करने में करता है । उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि यही कारण है

कि यदि कोई व्यक्ति एक प्रकार के कार्यो के करने में दक्ष है तो यह आवश्यक नहीं कि वह दूसरे कार्यो को भी करने में दक्ष होगा ।

परन्तु आज के मनोवैज्ञानिक अभी तक बुद्धि के इन बहु कारकों अथवा तत्त्वों की खोज नहीं कर पाए हैं, कोई 5 कारक बताता है, कोई 7 और कोई 9, और कोई 120 बताकर भी यह कहता है कि इस प्रकार के अनेक अन्य कारक भी हो सकते है ।

5. **समूह कारक या संधसत्तात्मक सिद्धान्त** - शिकागो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थर्सटन (Thurston) ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि न तो बुद्धि किसी एक योग्यता का द्योतक है, न दो योग्यताओं का, न तीन योग्यताओं का और न अनेक योग्यताओं का, अपितु यह सामूहिक योग्यताओं के अनेक समूहों का योग है । उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि प्रत्येक ऐसे समूह का एक प्राथमिक कारक (Primary Factor) होता है जो उस समूह का प्रतिनिधित्व करता है । इसे उन्होंने प्राथमिक मानसिक योग्यता (Primary Mental Abilities, PMA) की संज्ञा दी है । इस आधार पर इसे प्रारम्भिक मानसिक योग्यता सिद्धान्त (Primary Mental Ability Theory, PMAT) भी कहते है, और चूँकि इसमें अनेक मानसिक योग्यता का होना स्वीकार किया जाता है इसलिए इसे बहु मानसिक योग्यता का सिद्धान्त (Multi Mental Ability Theory) भी कहते हैं और उन्होंने इस प्रकार के सात प्रारम्भिक कारकों (Primary Factors) अथवा प्राथमिक मानसिक योग्यताओं (Primary Mental Ability) की खोज भी की ।

1. संख्यात्मक योग्यता
2. शाब्दिक योग्यता
3. स्थानिक योग्यता
4. शब्द प्रवाह योग्यता
5. तार्किक योग्यता)
6. स्मृति योग्यता
7. प्रत्यक्ष सम्बन्धी योग्यता

इसे संक्षेप में निम्नांकित रूप में व्यक्त किया जाता है -

बुद्धि = N + V + S + W + R + M + P

थर्सटन के अनुसार ये सात मानसिक योग्यताएँ ही बुद्धि के रूप में कार्य करती है । उन्होंने आगे स्पष्ट किया कि ये योग्यताएँ अपने में अपेक्षाकृत स्वतन्त्र (Independent) होती है, जिस मनुष्य में इन सात मानसिक योग्यताओं में जो योग्यता अधिक होती है, वह मनुष्य उसी के अनुकूल विकास करता है । उदाहरणार्थ - जिस मनुष्य में संख्यात्मक योग्यता अधिक होती है वह गणित को समस्याओं को सरलता से समझता और हल करता है और जिस व्यक्ति में शाब्दिक योग्यता अधिक होती है उसका शब्दकोष विस्तृत होता है । थर्सटन ने इन सात मानसिक योग्यताओं के आधार पर बुद्धि मापन के लिए एक बुद्धि

परीक्षण भी तैयार किया था जिसे 'प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण' (Test of Primary Mental Ability) कहा जाता है । यूँ तो अभी तक मनोवैज्ञानिक मानसिक योग्यताओं की सर्वमान्य सूची नहीं बन सके हैं परन्तु अधिकतर विद्वान बुद्धि को अनेक मानसिक योग्यताओं का योग मानते हैं ।

6. **क्रमिक महत्व का सिद्धान्त (The Hierarchical theory)** - ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक बर्ट (Burt) और (Philip Vernon) ने (G,S) तथा समूह कारकों से सम्बन्धित सिद्धान्तों का संश्लेषण कर एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे क्रमिक महत्व का सिद्धान्त कहते हैं । इनकी मूल मान्यता यह है कि मानवीय योग्यताएँ क्रमिक (Hierarchical) रूप में व्यवस्थित होती है । इस क्रमबद्ध व्यवस्था में क्रमश: सामान्य कारक (General Factor), मुख्य समूह कारक (Major Group Factors,) लघु समूह कारक तथा विशिष्ट कारक होते हैं । इन्होंने सबसे ऊपर स्पीयरमैन के सामान्य बुद्धि कारक (ळ) को स्थान दिया । दूसरे स्तर पर मुख्य समूह कारकों को स्थान दिया और इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया - एक शाब्दिक शैक्षिक मानसिक योग्यताएँ और दूसरा प्रयोगात्मक यान्त्रिक अभियोग्यता । तीसरे स्तर पर उपरोक्त मुख्य समूह कारकों को अन्य लघु कारकों में विभक्त करके रखा - शैक्षिक मानसिक योग्यताओं को शाब्दिक एवं आंकिक आदि योग्यताओं में और प्रायोगिक यान्त्रिक अभियोग्यता को यान्त्रिक सूचना एवं स्थानिक योग्यता आदि योग्यताओं में । चौथे और अन्तिम स्तर पर लघु समूह कारकों से सम्बन्धित विशिष्ट कारकों को रखा । मानवीय योग्यताओं के इस क्रमिक रूप को एक दृष्टि से देखा समझा जा सकता है ।

वर्तमान में अधिकतर मनोवैज्ञानिक बुद्धि को विभिन्न प्रकार की योग्यताओं का योग तो मानने लगे हैं परन्तु उनमें किसी प्रकार के क्रम के होने में एक मत नहीं हैं । इस प्रकार यह सिद्धान्त भी अपने में पूर्ण नहीं है ।

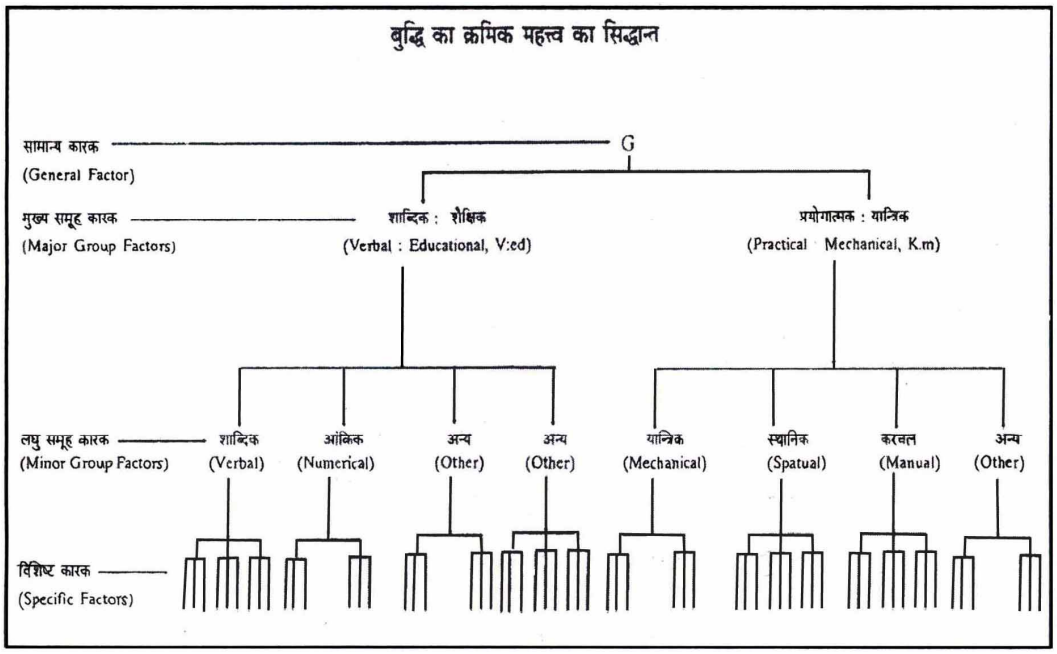

7. **त्रिआयाम सिद्धान्त** - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक गिलफोर्ड (J.P. Guilford) ने किया है । गिलफोर्ड ने बुद्धि की संरचना (Structure of Intelligence) को एक व्यवस्थित तीन आयाम प्रतिमान (Three Dimensional Model) के रूप में प्रस्तुत किया है । इसे बुद्धि संरचना प्रतिमान ''(Structure of Intelligence Model) कहते है । इस प्रतिमान के तीन आयाम है - विषयवस्तु (Content), संक्रियाएँ (Operations) और उत्पाद (Product) । उन्होंने 4 विषयवस्तु, 5 संक्रियाएँ और 6 उत्पादों की खोज भी की और यह कहा कि बुद्धि इन 4 x 5 x 6 = 120 मानसिक योग्यताओं का योग हो सकती है । गिलफोर्ड के द्वारा प्रस्तुत बुद्धि के तीन आयाम प्रतिमान रेखाचित्र द्वारा एक दृष्टि में देखा-समझा जा सकता है ।

गिलफोर्ड के अनुसार कोई भी बौद्धिक घटना इन तीन आयामों के आधार पर घटती है । इस प्रतिमान के प्रत्येक वर्ग (Cell) में कम से कम एक कारक योग्यता अवश्य होती है, कुछ में एक से अधिक भी हो सकती है । उनके अनुसार प्रत्येक कारक की व्याख्या इन तीन आयामी के सन्दर्भ में ही की जा सकती है ।

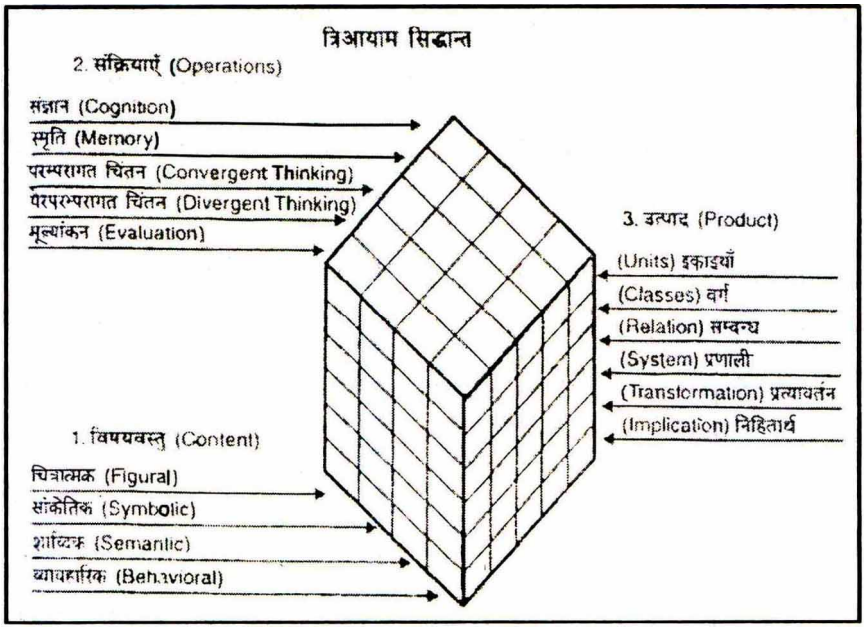

इन सिद्धान्तानुसार बुद्धि में 120 से भी अधिक मानसिक योग्यताएँ हो सकती है । इस सन्दर्भ में प्रथम बात तो यहीं है कि इन 120 मानसिक योग्यताओं को समझना और उनमें भेद करना कठिन है उससे अधिक योग्यताओं की बात तो दूर की है । दूसरी बात यह है कि इसके द्वारा बुद्धि के स्वरूप को समझना कठिन है ।

8. **लूड तथा क्रिस्टेलाइज्ड सिद्धान्त** - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक कैटिल ने किया है। कैटिल ने मानवीय बुद्धि को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया -

1. तरल बुद्धि (Fluid Intelligence,Gf) - तरल बुद्धि से कैटिल का तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण की योग्यता से है । उनके अनुसार यह बुद्धि प्रत्ययों के निर्माण करने और उन्हें

पुनर्गठित करने में सहायता करती है । यह उन अभाषिक कार्यों (Non - language Task) को करने में अधिक सहायक होती है । जिनके करने में पूर्व अनुभव और सामाजिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि का सम्बन्ध नहीं होता । इस बुद्धि के निर्धारण में वंशानुक्रम का अधिक महत्व होता है और यह बुद्धि बचपन में सर्वाधिक होती है और 20 वर्ष की आयु के बाद घटनी शुरू हो जाती है ।

क्रिस्टेलाइज्ड बुद्धि - कैटिल के अनुसार यह वह बुद्धि है जो व्यक्ति के सांस्कृतिक ज्ञान, शिक्षा तथा अन्य कुशलताओं पर निर्भर करती है । इस बुद्धि में निरन्तर विकार होता है और उसका यह विकास पर्यावरण (Environment) पर अधिक निर्भर करता है ।

परन्तु अधिकतर मनोवैज्ञानिक बुद्धि को इस प्रकार के दो भागों में विभाजित करने के पक्ष में नहीं हैं । इनका तर्क है कि बुद्धि अपने में एक पूर्ण इकाई हैं और उसका विकास वंशानुक्रम एव वातावरण दोनों पर निर्भर करता

9. **बुद्धि (A) तथा बुद्धि (B) का सिद्धान्त (Theory of Intelligence A and B)** - इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मनोवैज्ञानिक हेब (Hebb) ने किया है । उन्होंने बुद्धि को दो भागों में विभाजित किया है - बुद्धि (A) तथा बुद्धि (B) ।

बुद्धि (A) (Intelligence A) - हेब के अनुसार यह वह बुद्धि है जिसका निर्धारित वंशानुक्रम (Heredity) से होता है अर्थात् जन्म देने वाले व्यक्तियों के जीन्स से होता है । यह बुद्धि जन्मजात होती है । यह बुद्धि वह क्षमता है जो किसी व्यक्ति को किसी कार्य की रूपरेखा तैयार करने तथा उसे क्रियान्वित करने में सहायता करती है ।

बुद्धि (B) (Intelligence B) - हेब के अनुसार यह वह बुद्धि है जिसका निर्माण वातावरण में होता है और शैशव एवं बाल्यकाल में पूरा हो जाता है ।

हेब के इस सिद्धान्त के विषय में भी वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं । कुछ मनोवैज्ञानिक बुद्धि को जन्मजात शक्ति के रूप में लेते हैं और यह मानते हैं कि वातावरण (शिक्षा) की सहायता से इसमें बहुत कम विकास किया जा सकता है । इसके विपरीत कुछ मनोवैज्ञानिक बुद्धि को वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों की उपज मानते हैं, यह बात दूसरी है कि अधिकतर विद्वान इसके विकास में वंशानुक्रम का अधिक योग मानते हैं । पर बुद्धि को जन्मजात (बुद्धि - ए) और वातावरण की देन (बुद्धि-बी) दो रूपों में अलग-अलग मानना युक्ति संगत नहीं है ।

13.5 मूल्यांकन प्रश्न

1. बुद्धि की अवधारणा की व्याख्या करों ।
2. बुद्धि का अर्थ बताते हुए सीखने की योग्यता पर बल देने वाली परिभाषाओं को उल्लेख करों ।
3. बुद्धि की परिभाषा देते हुए बुद्धि की प्रकृति एवं विशेषताएँ समझाइये ।
4. बुद्धि क्या है उसके प्रकार को स्पष्ट कीजिये ।
5. बुद्धि का विकास किस तरह होता है । स्पष्ट करें ।
6. बुद्धि की संगोलिय परिभाषा को समझाते हुए बुद्धि के प्रकारों का वर्णन करें ।

7. बुद्धि के सिद्धान्तों की व्याख्या करें ।
8. बुद्धि मापन का अर्थ बताते हुए वर्गीकरण समझाइये ।
9. बुद्धि के एक कारक सिद्धान्त और त्रिआयम सिद्धान्तों को समझाइये ।
10. बुद्धि परीक्षा क्या है?
11. बुद्धि परीक्षण कितने प्रकार के होते है?
12. स्टेनफोर्ड बिने स्केल क्या है ?
13. क्रियात्मक परीक्षण का क्या महत्व है?
14. बुद्धि-लब्धि का सूत्र बताओं ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. बुद्धि-लब्धि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये ।
2. बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये ।
3. मानसिक आयु पर टिप्पणी लिखिये ।

टिप्पणी लिखिये ।

1. बहुकारक अथवा असत्तात्मक सिद्धान्त ।
2. समूह कारक सिद्धान्त ।
3. द्विकारक सिद्धान्त
4. त्रिकारक सिद्धान्त ।

13.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. प्रीती वर्मा, डॉ. वी.एन. श्रीवास्तव (2003) : आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, पन्द्रहवाँ संस्करण ।
2. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव (2003). आधुनिक समाज मनोविज्ञान, बारहवाँ संस्करण ।
3. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव एवं डॉ. प्रीति वर्मा (2003) : बाल मनोविज्ञान: बाल विकास, बारहवाँ संस्करण ।
4. डॉ. प्रीति वर्मा एवं डॉ. एन. श्रीवास्तव (2003): मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी, सोलहवाँ संस्करण ।
5. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव (2000) : आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, बारहवाँ संस्करण ।
6. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव (2003): मनोवैज्ञानिक निर्धारण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
7. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव (2002): सांख्यिकी एवं मापन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
8. डॉ. डी एन. श्रीवास्तव (2003): मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
9. डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव (2002) : व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक, मन्दिर, आगरा ।
10. डॉ . एस. के मंगल श्रीमती शुभ्रा मंगल विद्यार्थी विकास एवम् शिक्षण अधिगम प्रक्रिया।

11. कल्पना पाण्डेय एस. एल. श्री वास्तव शिक्षा मनोविज्ञान भारतीय एवम् पाश्चात्य दृष्टि।
12. लाल एण्ड जोशी शिक्षा मनोविज्ञान एवम् प्रारम्भिक सांख्यिकी ।
13. पी. डी पाठक शिक्षा मनोविज्ञान ।
14. शर्मा आर. एन. शैक्षिक मनोविज्ञान ।

इकाई 14

अभिप्रेरणा - संकल्पना तथा अधिगम पर प्रभाव
(Motivation - Concept and Effect of Different Motives on Learning)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अभिप्रेरणा की संकल्पना

14.3 अभिप्रेरणा की परिभाषाएँ

14.4 अभिप्रेरणा के प्रकार

14.4.1 आन्तरिक प्रेरणा

14.4.2 बाह्य प्रेरणा

14.5 अभिप्रेरणा के स्रोत

14.5.1 आवश्यकताएँ

14.5.2 मेस्लों का वर्गीकरण

14.5.3 थामसन का वर्गीकरण

14.5.4 गैरट का वर्गीकरण

14.5.5 चालक

14.5.6 उद्दीपक

14.5.7 प्रेरक

14.6 प्रेरित व्यवहार की विशेषताएँ

14.6.1 उत्सुकता

14.6.2 शक्ति संचालन

14.6.3 ध्यान केन्द्रित होना

14.6.4 रुचि का विकास

14.6.5 निरन्तरता

14.6.6 लक्ष्य प्राप्ति से तनाव में कमी

14.7 अधिगम का विभिन्न प्रेरकों पर प्रभाव

14.7.1 उद्देश्य या सीखने की इच्छा

14.7.2 प्रगति और परिणामों की जानकारी

14.7.3 प्रशंसा एवं भर्त्सना का प्रभाव

14.7.4 प्रतिस्पर्धा और सहयोग

14.7.5 पुरस्कार व दण्ड
14.7.6 आकांक्षा का स्तर
14.7.7 उपलब्धि अभिप्रेरणा
14.7.8 सफलता
14.7.9 दृश्य-श्रव्य सामग्री
14.7.10 आत्म प्रेरणा
14.7.11 उचित दृष्टिकोण का विकास
14.7.12 सीखने की उचित स्थिति तथा वातावरण
14.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न
14.9 सारांश
14.10 मूल्यांकन प्रश्न
14.11 संदर्भ साहित्य

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- अभिप्रेरणा की संकल्पना को समझेंगे ।
- अभिप्रेरणा की उपयुक्त परिभाषा का चयन कर सकेंगे ।
- अभिप्रेरणा के प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- अभिप्रेरणा के विभिन्न स्रोतों में अन्तर करने की कुशलता विकसित कर सकेंगे ।
- अभिप्रेरणा के स्रोतों- आवश्यकता,, बालक प्रेरक एवं उद्दीपन के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- अभिप्रेरणा में निहित विशेषताओं को समझ सकेंगे ।
- अध्यापकों के लिये प्रेरणा के महत्व को जान सकेंगे ।
- अधिगम पर विभिन्न प्रेरकों के प्रभाव को जान सकेंगे ।

14.1 प्रस्तावना

शिक्षा जगत की प्रमुख समस्या प्रेरणा से सम्बन्धित है । बालकों को सीखने के लिए कैसे तैयार करें? यह अध्यापकों के लिए एक जटिल समस्या है जिसका सरलता से उत्तर नहीं दिया जा सकता है । यही पर यह कथन चरितार्थ होता है कि आप घोड़े को पानी तक ले जा सकते हैं लेकिन उसे पानी नही पिला सकते । अध्यापक चाहे कितनी अच्छी विधि द्वारा छात्र के समक्ष ज्ञान का भण्डार प्रस्तुत करें किन्तु छात्र की सीखने की इच्छा न होने पर अध्यापक छात्र को सिखाने में सफल नहीं हो सकता है । चूंकि शिक्षण अधिगम का निर्देशन (Directing Learning) है, अतएव अध्यापक को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि किस प्रकार छात्रों को अधिगम में क्रियाशील रखा जाय । केवल छात्रों की योग्यता, रुचियों एवं विशेषताओं का ज्ञान होना ही पर्याप्त नहीं शिक्षण में जब तक लक्ष्य निर्धारण करके उत्तेजना को जागृत नहीं किया जायेगा तब तक आन्तरिक अवयव कोई प्रतिक्रिया नहीं करेंगे । इसलिये विद्यालयों में लक्ष्यों

का निर्धारण अत्यन्त आवश्यक है । अत: अध्यापकों को प्रेरणा के ज्ञान से परिचित होना चाहिये।

14.2 अभिप्रेरणा की संकल्पना

व्यक्ति के जीवन में अभिप्रेरणा का अत्यधिक महत्व है । बालक के समग्र विकास व सफलता प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है । बालक जो भी कार्य करता है वे उद्देश्यहीन नहीं होते । उन समस्त क्रियाकलापों में भय आकांक्षा आदि का अपरोक्ष रूप से योगदान होता है। बालकों द्वारा किये गये कार्यों में चाहे वे उचित हों या अनुचित हों, की पृष्ठभूमि में विभिन्न प्रकार के आन्तरिक कारण निहित होते हैं । उन कारणों को उद्दीपन कहा जाता है । इन उद्दीपनों यथा दण्ड, प्रशंसा, पुरस्कार आदि के द्वारा वांछनीय लक्ष्यों की दिशा में अग्रसित होने हेतु जो शक्ति बालकों को प्राप्त होती है उसे ही अभिप्रेरणा कहते हैं । प्रेरणा के अभाव में बालक में अवधान, रुचि तथा गति पैदा होना असम्भव है ।

अभिप्रेरणा को अंग्रेजी में Motivation कहते हैं । Motivation शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के मोटम (Motum) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है - To move, To motor To action अर्थात गति प्रदान करना । अभिप्रेरणा के उपरोक्त शाब्दिक अर्थों से बालक के व्यवहार को संचालित करने वाली शक्ति का बोध होता है । अत: यह कहा जा सकता है कि "अभिप्रेरणा वह आन्तरिक शक्ति है जो अनेक उद्दीपनों का परिणाम होती हैं । जिसके माध्यम से बालक निश्चित व्यवहार की दिशा में सक्रिय तथा नियंत्रित होता है । यह एक अदृश्य शक्ति है, जिसको देखा नहीं जा सकता । क्रैंच एवं क्रैंच फील्ड (Krech and Krutch Field P - 29) में लिखा है :- प्रेरणा का प्रश्न 'क्यों का प्रश्न है? ("The question of motivation is question if 'why'?) हम खाना क्यों खाते है, प्रेम क्यों करते है, धन क्यों कमाते है, परिश्रम क्यों करते है इस प्रकार सभी प्रश्नों का सम्बन्ध प्रेरकोश से है ।

14.3 अभिप्रेरणा की परिभाषाएँ

1. गुड:- प्रेरणा कार्य को आरम्भ करके, जारी रखने और नियंत्रित करने की प्रक्रिया है । ("Motivation is the process of arousing sustaining and regulating activity - Good, P- 354")
2. ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन: - प्रेरणा एक प्रक्रिया है जिसमें सीखने वाले की आन्तरिक शक्तियाँ और आवश्यकताएँ उसके वातावरण में विभिन्न लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती हैं ("Motivation is the process in in which the learner energies or needs are directed towards various goal objects in his environment"- Blair, Jones and Simpson)
3. गेट्स व अन्य:- प्रेरक प्राणी के अन्दर की वे शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दशाएँ हैं जो उसे विशिष्ट प्रकार की क्रिया करने हेतु अभिप्रेरित करती हैं ।

("Motives are conditions- Physiological and phyological within the organism that dispose it to act in certain ways"- Gates and Others)

4. बर्नाड:- जिस लक्ष्य के प्रति पहले कोई आकर्षण नहीं था उस लक्ष्य के प्रति कार्य की उत्तेजना ही अभिप्रेरणा है ।

   ("Motivation is the stimulation of action toward a particular objective where previously there was little no attraction toward that goal"- Bernard)

5. वुडवर्थ:- प्रेरक व्यक्ति की वह दशा है जो उसे निश्चित व्यवहार करने के लिए और निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये उत्तेजित करती है ।

   ("A Motive is a state of the individual which disposes him for certain behaviour and for seeking certain goals"- Woodworth)

6. स्कीनर:- अभिप्रेरणा सीखने का राजमार्ग है ।

   ("Motivation is super highway to learning"-Skinner)

14.4 अभिप्रेरणा के प्रकार

प्रकार अभिप्रेरणा दो प्रकार की होती है:-

14.4.1 आन्तरिक प्रेरणा

आन्तरिक प्रेरणा से तात्पर्य आन्तरिक शक्ति से है जो बालक में व्यवहार जागृत करती है । इस प्रेरणा में बालक की शक्ति प्रबल होती है आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित बालक किसी काम को इसलिये करता है क्योंकि उस कार्य को करने में उसे आनन्द या प्रसन्नता होती है । जब कोई बालक गणित की किसी समस्या को हल करने में आनन्द प्राप्त करता है या किसी कविता के पाठ द्वारा प्रसन्नता प्राप्त करता है तब वह आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित होता है । बालक स्वान्तः सुखाय: की भावना से गणित की समस्या हल करता है या कविता का अध्ययन करता है। सीखने में इस प्रकार की अभिप्रेरणा का वास्तविक महत्व होता है । क्योंकि इससे स्वाभाविक रुचि उत्पन्न होती है और अंत तक बनी रहती है ।

14.4.2 बाह्य प्रेरणा

बाह्य अभिप्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी इच्छा से न करके किसी दूसरे की इच्छा या बाह्य प्रभाव के कारण करता है । इस प्रकार की प्रेरणा में बालक बाह्य तत्त्वों सें प्रभावित होकर कार्य करता है । इससे बालक की इच्छा गौण होती है । अच्छे ग्रेड या मान के लिये काम करना रोजी कमाने के लिये कोई कला सीखना, प्रशंसा प्राप्ति के लिये काम करना, पुरस्कार एवं दण्ड आदि सभी इसी वर्ग की अभिप्रेरणा के अन्तर्गत आते हैं । बाह्य प्रेरणा की तुलना में आन्तरिक अभिप्रेरणा स्वाभाविक उत्साह और प्रेरणा का साधन है । इसलिये सीखने सिखाने की प्रकिया में इसके अच्छे परिणाम निकलते हैं । अत: जहाँ तक संभव हो आन्तरिक प्रेरणा का ही प्रयोग करना चाहिये परन्तु जहाँ आन्तरिक अभिप्रेरणा संभव न हो बाह्य

अभिप्रेरणा का प्रयोग किया जाना चाहिये । अत: सीखने की स्थिति तथा कार्य की प्रकृति के अनुसार अध्यापक को उचित प्रकार की अभिप्रेरणा का प्रयोग करने चाहिये ताकि विद्यार्थी सीखने की क्रियाओं में पर्याप्त रुचि ले सकेंगे ।

14.5 अभिप्रेरणा के स्रोत

प्रेरणा के निम्नांकित चार स्रोत होते हैं-

1. आवश्यकताएँ
2. चालक
3. उद्दीपक
4. प्रेरक

14.5.1 आवश्यकताएँ- अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्येक प्राणी की कुछ आधारभूत आवश्यकताएँ होती हैं जिनके प्रभाव में उसका अस्तित्व असम्भव है । जैसे जल, वायु, भोजन आदि । व्यक्ति की यदि आवश्यकता पूर्ण नहीं होती है तो उसके शरीर में तनाव व असन्तुलन पैदा हो जाता है जिसके फलस्वरुप उसे क्रियाशील होना अनिवार्य हो जाता है उदाहरणार्थ- जब व्यक्ति को भूख लगती है तो वह बेचैन हो जाता है ओर भोजन की तलाश के लिये क्रियाशील हो जाता है । जब उसे भोजन मिल जाता है तब उसकी क्रियाशीलता और शारीरिक तनाव खत्म हो जाता है । अत: बोरिंग लैशफिल्ड एवं वेल्ट ने ठीक कहा है- "आवश्यकता शरीर की कोई जरूरत या अभाव है जिसके कारण शारीरिक असंतुलन या तनाव उत्पन्न हो जाता है तनाव में ऐसा व्यवहार करने की शक्ति होती है जिससे आवश्यकता के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला असंतुलन समाप्त हो जाता है ।.

14.5.2 आवश्यकताओं का वर्गीकरण

मानव व्यवहार में भिन्नता के कारण आवश्यकताओं का वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने आवश्यकताओं का पता लगाकर उनका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है ।

(1) मेस्लों का वर्गीकरण

मेस्लों ने आवश्यकता का वर्गीकरण क्लोसमेयर की पुस्तक “Learning and human Abilities”, में स्पष्ट किया है । मेस्लों ने बताया है कि मानव में पाँच प्रकार की आवश्यकताएँ एक विशेष क्रम (Hierarchy) में होती है । शोध द्वारा पता लगाकर उस क्रम में छठी आवश्यकता को जोड़ दिया । चित्र द्वारा स्पष्ट है:-

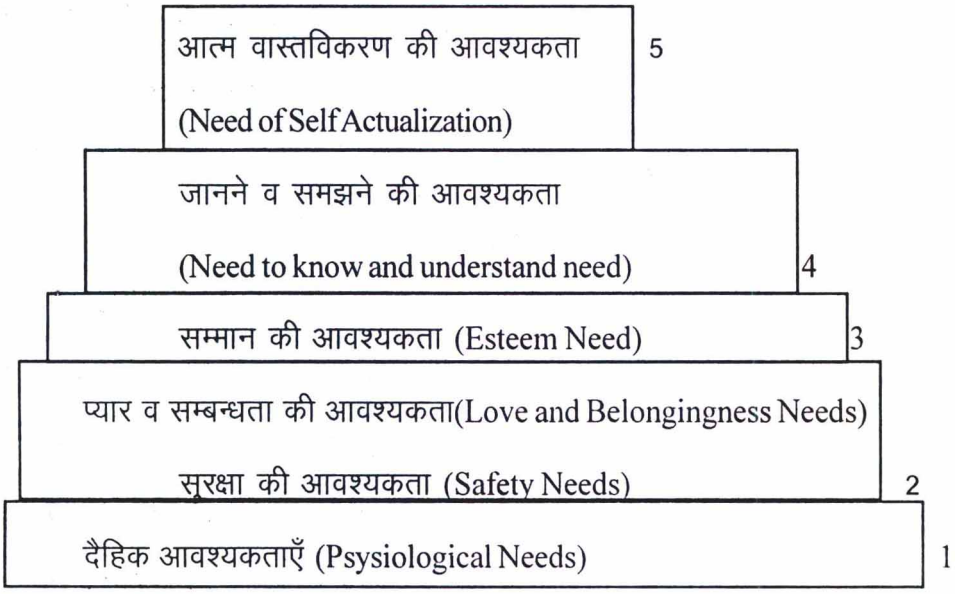

(Hierarchy of needs)

(2) दैहिक आवश्यकताएँ

सभी आवश्यकताओं में दैहिक आवश्यकताएँ सबसे प्रबल हैं । फिर भी शिक्षा के परिवेश में इसे बहुत कम महत्व दिया गया है इस आवश्यकता में भोजन, प्यास, यौन आदि सम्मिलित हैं ।

(3) सुरक्षा की आवश्यकता

प्रत्येक जीव अपनी सुरक्षा के लिए विकल तथा चिन्तित रहता है । इस प्रकार की आवश्यकता से वह अपनी सब प्रकार की सुरक्षात्मक व्यवहार करता है जब दैहिक आवश्यकताएँ सफलतापूर्वक सन्तुष्टि पाती है तब सुरक्षात्मक आवश्यकता व्यक्ति में प्रबल शक्ति के रूप में उभरती है । सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ अनेक हैं यथा नियम व कानून का पालन करना, भविष्य के लिए धन बटोरना, जीवन बीमा करवाना आदि । ऐसा करने से व्यक्ति अपनी भविष्य की सुरक्षा करता है । विशेष रूप से छोटे बच्चों में इस आवश्यकता का बहुत महत्त्व है । बच्चों का परिपालन सुरक्षित वातावरण में होना चाहिए । उन्हें अध्यापकों को भयानक व खतरनाक एवं दुःखदायी अनुभवों से बचाना चाहिए ।

(4) प्यार तथा सम्बन्धता की आवश्यकता

यह आवश्यकता सामाजिकता से सम्बन्धित है व्यक्ति समाज में अन्य व्यक्तियों से अपना निकटतम सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है । व्यक्ति का जन्मजात स्वभाव है समूह में रहना, एक दूसरे से प्यार पाना और प्यार देना अपनत्व की भावना भी इसी प्रकार की आवश्यकता है । किन्तु आज के समाज में इन आवश्यकताओं का धीरे-धीरे महत्त्व घटता जा रहा है । बड़े शहरों में एक ही भवन में रहने वाले अपने पड़ोसियों की जानकारी नहीं रखते । उनका जीवन यंभवत है। अत: शिक्षकों को अपने छात्रों को इस प्रकार की आवश्यकता के महत्त्व पर, बल देना चाहिये ।

(5) सम्मान की आवश्यकता

इस आवश्यकता में दो बातें सम्मिलित हैं पहली यह कि वह व्यक्ति अपने सम्मान की अनुभूति करता है तथा दूसरा यह कि वह स्वयं कितना सम्मानित होना चाहता है और दूसरे उसे कितना दे रहे हैं दोनों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित करता है । प्रत्येक व्यक्ति सम्मान चाहता है यह व्यक्ति की आवश्यकता है । अत: शिक्षकों को चाहिये कि वह बालक के व्यक्तित्व का स्वयं मूल्यांकन करे तथा दूसरों को सम्मान देने की आदत विकसित करे ।

(6) जानने व समझने की आवश्यकता

बालक में जन्मजात प्रवृत्ति होती है कि वह अपनो को जानने व समझने का इच्छुक होता है । वह यह जानना चाहता है कि उसमें कौन कौन से गुण निहित हैं । उन गुणों का विकास किस प्रकार करे । अत: शिक्षकों को चाहिये कि वह समय समय पर बालकों के व्यवहार को जाने व उसके अनुरूप उन्हे बल प्रदान करे ।

(7) आत्म वास्तविकरण की आवश्यकता

यह मानव की सर्वोत्कृष्ट आवश्यकता है । इस आवश्यकता का तात्पर्य व्यक्ति का अपना वैयक्तिक स्वभाव के सर्वांग की परिपुष्टि पाना है । उदाहरणार्थ - यदि व्यक्ति में कलाकार होने की जन्मजात शक्ति (Potentiality) विद्यमान है किंतु वह उसकी पूर्णता की उपलब्धि नहीं कर पाता है तो वह इस आवश्यकता की पूर्ति से वंचित रह जाता है इस संदर्भ में शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि बालक की अन्त:निहित शक्तियों को जानकर उसे उसकी पूर्ण उपलब्धि कराने का प्रयास करे।

14.5.3 थामसन का वर्गीकरण

(1) स्वाभाविक

(2) कृत्रिम

(1) स्वाभाविक:- ये प्रेरक व्यक्ति में स्वभाव से ही पाये जाते हैं जैसे- खेल, अनुकरण, सुझाव, प्रतिष्ठा, सुख प्राप्ति आदि ।

(2) कृत्रिम :- ये प्रेरक स्वाभाविक प्रेरकों के पूरक के रूप में कार्य करते हैं और व्यक्ति के कार्य या व्यवहार को नियंत्रित और प्रोत्साहित करते हैं । जैसे- दण्ड, प्रशंसा, पुरस्कार, सहयोग, व्यक्तिगत और सामूहिक कार्य की प्रेरणा आदि ।

14.5.4 गैरट का वर्गीकरण

(1) जैविक

(2) मनोवैज्ञानिक

(1) जैविक - ये प्रेरक आदर्शों, स्थितियों, सम्बन्धों आदि के कारण उत्पन्न होते हैं ।

(2) मनोवैज्ञानिक:- ये प्रेरक प्रबल मनोवैज्ञानिक दशाओं के कारण उत्पन्न होते हैं । जैसे- क्रोध भय, प्रेम, दु:ख, आनन्द आदि ।

14.5.5 चालक

प्राणी की आवश्यकताएँ उनसे सम्बन्धित चालक को जन्म देती है । चालक की व्याख्या करते हुये बोरिंग लैंगफिण्ड और वेल्ड ने कहा है कि चालक आन्तरिक शरीर क्रिया या अंग की दशा है जो विशेष प्रकार के व्यवहार के लिए उत्तेजना प्रदान करती है । उदाहरणार्थ- भोजन

प्राणी की आवश्यकता है यह आवश्यकता उसमें 'भूख चालक' (Hunger Drive) को जन्म देती है । इसी प्रकार पानी की आवश्यकता 'प्यास चालक' की उत्पत्ति का कारण होती है । 'चालक' प्राणी को एक निश्चित प्रकार की क्रिया या व्यवहार करने के लिये प्रेरित करता है ।

14.5.6 उद्दीपन / प्रणोदय

आवश्यकता चालक को जन्म देती है और जिस तत्त्व द्वारा बालक की संतुष्टि होती है, उसे उद्दीपन कहते हैं । इसमें वातावरण के तत्व सम्मिलित होते हैं जो चालक की सन्तुष्टि करते हैं । उदाहरणार्थ- भूख' चालक की तृप्ति भोजन के द्वारा होती है अतएव भोजन उद्दीपन कहलायेगा । इस प्रकार उद्दीपन 'प्राणी के व्यवहार को उत्तेजित या निर्देशित करता है ।

14.5.7 प्रेरक

प्रेरक अति व्यापक शब्द है । इसके अन्तर्गत उद्दीपन के अतिरिक्त चालक, तनाव आवश्यकता - सभी आ जाते हैं । यह वह शक्ति है जो प्राणी के व्यवहार को कार्य करने के लिये उत्तेजित करती है । लक्ष्य प्राप्ति की ओर शक्ति को गतिशील बनाने में प्रेरक का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है । प्रेरक के बारे में शेफर ने कहा है कि प्रेरक क्रिया की ऐसी प्रवृत्ति है जो चालक के द्वारा उत्पन्न होकर समायोजन द्वारा समाप्त होती है ।

14.8 प्रेरित व्यवहार की विशेषताएँ

प्रेरणा के द्वारा व्यवहार किस प्रकार गतिशील होता है । इस प्रकार व्यवहार की क्या विशेषताएँ होती हैं ? इस समस्या से अध्यापकों को परिचित होना चाहिए और अध्यापक बालकों के व्यवहार को देखकर ही पता लगा सकते हैं कि वे सीखने को तैयार हैं या नहीं । प्रेरित व्यवहार की निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं ।

14.6.1 उत्सुकता

जब बालक को कोई नई क्रिया या नई बात सिखानी होती है तो अध्यापक उन्हे प्रेरित करता है और वह विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग करता है । बालक को नवीन ज्ञान व क्रिया के प्रति उत्सुकता व इच्छा प्रकट होती है । उत्सुकता प्रदर्शन अध्यापक के लिये संकेतक है कि बालक नवीन ज्ञान सीखने लिये तैयार है ।

14.6.2 शक्ति संचालन

प्रेरणा द्वारा बालक में नवीन ज्ञान को पूरा करने के लिये अतिरिक्त शक्ति स्रोत फूट पड़ता है वह इस शक्ति के बल पर घण्टों कार्य करने में संलग्न रहता है - उसको कार्य की संलग्नता के कारण थकान का भी अनुभव नहीं होता । बालकों में कार्य के प्रति इतनी सजगता होती है कि कभी कभी वह ऐसे भी कार्य कर डालता है जिसकी उम्मीद नहीं रहती । अत: अध्यापकों इस शक्ति का संचालन ठीक प्रकार से करना चाहिये ।

14.6.3 ध्यान केन्द्रित होना

प्रेरणा के प्रभाव के कारण बालक का ध्यान नवीन ज्ञान व क्रिया के प्रति केन्द्रित हो जाता है । ध्यान होने पर बालक इस क्रिया को पूरा करने में किसी प्रकार की त्रुटियां भी नहीं करता ।

14.6.4 रूचि का विकास

प्रेरणा के द्वारा छात्रों की रुचि का विकास होता है । ध्यान होने पर बालक रुचि के कारण नवीन कार्य करने लिये तैयार दिखाई देते हैं ।

14.6.5 निरन्तरता

प्रेरणा के प्रभाव से बालक उद्देश्य प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं ।

14.6.6 लक्ष्य प्राप्ति से तनाव में कमी

लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होने पर कार्य में आने वाली बाधाएँ भी तनाव पैदा करती हैं । लेकिन लक्ष्य प्राप्ति में सफल होने पर तनाव से मुक्त हो जाता है - बालक संतोष का अनुभव करता है । इन सभी विशेषताओं का ज्ञान अध्यापक को अध्यापन में सहायता प्रदान करता है ।

14.7 अधिगम का विभिन्न प्रेरकों पर प्रभाव

14.7.1 उद्देश्य या सीखने की इच्छा

बालकों को सीखने के प्रति जिज्ञासु होना चाहिये । हम बालक को कोई भी ज्ञान जबरदस्ती से नहीं दे सकते वह तभी सीखेगा जब उसकी सीखने की इच्छा होगी । जीवन में बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जिन्हें हम सीखना नहीं चाहते लेकिन स्वत: हम सीख जाते हैं । जैसे - टेलीफोन नं, स्कूटर नं. आदि ।

14.7.2 प्रगति और परिणामों की जानकारी

प्रभावशाली सीखने में प्रगति का ज्ञान एक प्रेरक के रूप में योगदान देता है । यदि अध्यापक बालकों की प्रगति या दक्षता को कक्षा में बतलाता है तो उसे काम करने की उत्तेजना मिलती है प्रगति और परिणामों की जानकारी बालकों को मिलती रहनी चाहिये ताकि वह अच्छे से अच्छा कार्य सम्पन्न करने में दक्ष हो सके । अक्सर अध्यापक द्वारा किसी छात्र द्वारा दिये गये प्रश्न के सही उत्तर को ठीक है कहा जाता है तब इस कथन का परिणाम यह होता है कि वह उस छात्र के व्यवहार को प्रोत्साहित कर रहा है इस तरह प्रगति और परिणामों का ज्ञान प्रभावशाली प्रेरक के रूप में कार्य करता है ।

14.7.3 प्रशंसा एवं भर्त्सना का प्रभाव

प्रशंसा सीखने में उत्तेजक के रूप में कार्य करती है यदि बालक की सीखने के कार्य में हुई प्रगति की प्रशंसा उसके माता पिता, अध्यापक या साथियों के द्वारा की जाती है तो बालक के ऊपर इसका प्रभावशाली प्रभाव पडता है । Hurlock ने प्रशंसा तथा भर्त्सना के प्रभाव पर अनेक प्रयोग किये और निष्कर्ष निकाला कि प्रशंसा का प्रभाव बालक पर अधिक पड़ता है । कक्षा में छात्रों की प्रशंसा करने के कई तरीके हैं जैसे अध्यापक का स्वीकृति स्वरूप सिर हिलाना, मुस्कुराना तथा शाब्दिक प्रशंसा । लेकिन इसका प्रयोग उचित अवसर पर तथा उचित समय पर ही करें अन्यथा प्रभाव कम पड़ेगा । मनोवैज्ञानिक प्रयोग एवं निरीक्षण द्वारा इस बात का अध्ययन किया गया कि प्रशंसा,, आरोप अवहेलना आदि सामाजिक उत्तेजनाओं का बालक के सीखने पर क्या प्रभाव पडता है । हरलॉक ने 106 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की छात्राओं पर एक प्रयोग किया उसने प्रयोग के लिये समान योग्यता एवं समान आयु वाली बालिकाओं को

चार समूहों में विभाजित किया । इन्हें प्रतिदिन गणित के 30 प्रश्न 15 मिनिट में हल करने के लिए दिये जाते थे यह प्रयोग 5 दिन तक चला इन दलों को विभिन्न रूपों से प्रेरित किया ।

(अ) प्रशंसित दल - इस दल को निरन्तर प्रेरणा स्वरूप प्रशंसा एवं सफलताओं की पूर्ण सराहना दी गई ।

(ब) आरोपित दल - इस दल को समस्त कक्षा के सामने त्रुटियों के लिये डाँटा फटकारा गया।

(स) अवहेलित दल - यह दल कक्षा मे बैठकर दूसरों की डांट फटकार और प्रशंसा सुनता था।

(द) नियंत्रित दल - यह दल उपरोक्त तीनों दलों से अलग दूसरे कमरे में बैठा था । इस दल को अन्य दलों के सदस्यों का कोई ज्ञान नहीं था ।

प्रयोग का निष्कर्ष यह निकला कि वह समूह जिसे प्रशंसा व सराहना मिली उसने अधिक सीखा ।

14.7.4 प्रतिस्पर्धा और सहयोग

दोनों प्रेरक अधिगम के लिये उपयोगी हैं और इनके परिणाम भी प्रभावशाली रहते हैं यदि इनका उचित प्रयोग हो । उचित प्रयोग न होने पर छात्रों में ईर्ष्या, क्रोध तथा घृणा आदि अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं । प्रतिद्वन्दिता तीन प्रकार की होती है:-

(1) छात्रों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा

(2) समूह प्रतिस्पर्धा

(3) आत्म प्रतिस्पर्धा

इन तीनों प्रकार की प्रतिस्पर्धाओं में आत्म प्रतिस्पर्धा श्रेष्ठ सिद्ध हुई है । इसके अतिरिक्त उपरोक्त तीनो प्रकार की प्रतियोगिताएँ प्रेरक का उपयोग करते समय इसके संवेगात्मक तथा सामाजिक परिणामों पर अवश्य विचार कर लेना चाहिये तथा यह भी विचार कर ले कि प्रेरणा की तीव्रता के कारण विद्यार्थी का मनोबल तो नहीं गिर रहा । प्रतियोगिता प्रेरक से विद्यार्थियों का अहं की संतुष्टि होती है और वे आवश्यकता अनुसार अपने कार्य अथवा व्यवहार में सुधार कर लेते हैं । इसके अतिरिक्त इस प्रेरक से समूह भावना आत्मानुशासन तथा सहकारिता की भावना भी उत्पन्न होती है ।

सहयोग प्रेरक प्रतियोगिता की तुलना में और भी अच्छा सिद्ध हो सकता है क्योंकि ईर्ष्या, झगड़ा तथा दुश्मनी आदि की संभावना नहीं रहती ।

14.7.5 पुरस्कार व दण्ड

दण्ड एवं पुरस्कार, प्रशंसा व निन्दा का प्रतिरूप है । ये दोनों शक्तिशाली प्रेरक हैं दोनों का उद्देश्य बालक व्यवहार में सुधार करना होता है । लेकिन दोनों की विधियाँ पृथक हैं । पुरस्कार का उपयोग करने पर बालक को आनन्द की अनुभूति होती है जबकि अवांछित कार्य को रोकने के लिये दण्ड का उपयोग होता है तो इससे बालक को पीड़ा की अनुभूति होती है । पुरस्कार को प्रेरक के रूप में प्रयोग करने में लाभ व हानिया दोनों ही विद्यमान रहती हैं जो इस प्रकार हैं:-

लाभ:-

(1) पुरस्कार आनन्द प्रदान करते हैं ।

(2) कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करते हैं ।

(3) इनसे छात्रों का मनोबल उच्च होता है ।

हानि : -

(1) पुरस्कार बालक में क्रिया को सीखने की रूचि पैदा करने के स्थान पर केवल पुरस्कार पाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं ।

(2) बाह्य रूप होने के कारण पुरस्कार बालक को अधिगम के लिये आन्तरिक प्रेरणा देने में असमर्थ रहते हैं ।

(3) अनेक बार वस्तु रूप में पुरस्कार बालकों में गलत अभिवृद्धि का विकास कर देते हैं ।

(4) पुरस्कार केवल कुछ ही बालकों को प्राप्त होते हैं । ऐसी स्थिति में पुरस्कार नहीं पाने वाले बालक निरूत्साहित हो जाते हैं ।

दण्ड का अभिप्राय किसी को मानसिक अथवा शारीरिक पीड़ा देने से हे । लेकिन यदि दण्ड को कठोर कर दिया जाता है अथवा ज्यादा प्रयोग किया जाता है तो बालक पर इसका बुरा प्रभाव पडता है । इसका परिणाम यह होता है कि वह उस शिक्षक से ही नहीं बल्कि विषय से भी घृणा करने लगता है । इसी कारण आज दण्ड को प्रेरक के रूप में उपयोग को अच्छा नहीं माना जाता है । अत: दण्ड देने के प्रमुख लाभ अवरोधक तथा अनुशासन बनाये रखने के लिये है लेकिन उस समय बच्चे को यह अनुमान करा दिया जाये कि दण्ड उसे नहीं बल्कि उसके अवांछनीय कार्य के कारण दिया जा रहा है ।

14.7.6 आकांक्षा का स्तर

आकांक्षा का स्तर वह सीमा बताता है जिस सीमा तक व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में लक्ष्य निर्धारित करता है और उन तक पहुँचने का प्रयास करता है । इसके लिये वह कठिन परिश्रम करता है । किन्तु जीवन लक्ष्य एक होने पर भी आकांक्षा स्तर भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न भिन्न होता है । उदाहरणार्थ- बालकों का लक्ष्य अध्यापन व्यवसाय में प्रवेश करना है उनमें से एक बालक का आकांक्षा स्तर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक पद माना है जबकि दूसरा किसी माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक बनना पसन्द करता है इस प्रकार दोनों के जीवन लक्ष्य एक होने पर भी उनकी आकांक्षा स्तर में अन्तर है । यदि अध्यापक द्वारा प्रोत्साहन मिलता रहेगा तो छात्र / बालक अपने पूर्व निर्धारित आकांक्षा स्तर तक पहुँचने में परिश्रम करेंगे ।

14.7.7 उपलब्धि अभिप्रेरणा

उपलब्धि प्रेरणा का आधारभूत लक्ष्य उपलब्धि होता है । जो उपलब्धि के लिये कोई काम करते हैं उन्हें उपलब्धि प्रेरणा द्वारा प्रेरित किया जाता है । यदि कोई विद्यार्थी कक्षा का मोनीटर बनना चाहता है या फुटबॉल टीम का कैप्टन बनना चाहता है तो इसका अर्थ है कि यह शक्ति प्राप्त करना ही उसका अभिप्रेरक है । बालक अपने माता पिता की उनके प्रति आशाओं से प्रेरित होकर यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि वे उनकी आकांक्षाओ के अनुकूल उपलब्धि

प्राप्त करने के योग्य हैं । उपलब्धि अभिप्रेरक एक ऐसी छिपी हुई विशेषता है जो प्रत्यक्ष प्रयासों में तभी स्पष्ट होती है जब व्यक्ति अपने कार्य को व्यक्तिगत रूप से कुछ पाने का साधन समझता है । अत: अध्यापकों को बालकों की इस छिपी हुई विशेषता को उभार कर उन्हे लक्ष्य तक पहुँचाना होगा ।

14.7.4 सफलता

जब बालक किसी कार्य में सफलता प्राप्त कर लेता है तो उसे संतोष की अनुभूति होती है, उसमें उत्साह, का संचार होता है तथा मनोबल में वृद्धि होती है । इसके विपरीत यदि बालक बार बार किसी कार्य में असफल हो जाता है तो वह हतोत्साहित हो जाता है । अत: अध्यापक को ऐसा प्रयास करना चाहिये जिससे कि छात्र अपने कार्य में सफल हो सके ।

14.7.9 दृश्य- श्रव्य सामग्री

दृश्य-श्रव्य सामग्री के प्रयोग से पाठ को सरल व बोधगम्य बनाया जा सकता है । विद्यालय की सज्जा, चित्ताकर्षक उपकरण, पुस्तकालय आदि वस्तुएँ बालकों को ज्ञानार्जन की प्रेरणा देते हैं । विज्ञान पढने के लिये विज्ञान प्रयोग कक्ष, इतिहास पढने के लिये इतिहास कक्ष, भूगोल पढने के लिये भूगोल कक्ष विद्यार्थियों के लिये उत्तेजक ही नहीं अपितु अध्ययन के लिये आवश्यक है ।

14.7.10 आत्म प्रेरणा

कभी कभी बालक अपनी शक्तियों तथा क्षमताओं का ज्ञान होने से उन कार्यों को भी नहीं कर पाता जिनको करने की उसमें क्षमता होती है । ऐसी स्थिति में बालक निराश हो जाता है । यदि बालक को उसकी शक्तियों का ज्ञान कराया जाये तो वह स्वत: ही सीखने के लिये प्रेरित हो जायेंगे ।

14.7.11 उचित दृष्टिकोण का विकास

बालकों में सीखने की सकारात्मक भावना का विकास करना चाहिये । यदि उसमें सकारात्मक भावना है तो वह रुचि व ध्यानपूर्वक उस कार्य को करेगा । जिस बालक में हस्त कार्य (Hand Work) के सम्बन्ध में स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास हो चुका है, वह अपने हाथों से काम करने में रुचि लेगा परन्तु जिन बालकों में इस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित नहीं हुआ, वह काम से जी चुरायेगा । अत: उचित दृष्टिकोण व्यक्ति को मानसिक रूप से तैयार करता है ।

14.7.12 सीखने की उचित स्थिति तथा वातावरण

कक्षा वातावरण व स्थिति सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है । कक्षा कक्ष का वातावरण बालक को सीखने के लिये प्रेरित करता है कक्षा का वातावरण व वही की स्थिति बालकों के अनुकूल होनी चाहिये । कमरे साफ सुथरे होने चाहिये । तभी बालक अध्यापक की बात को ध्यान से व उत्साहपूर्वक सुनेगा । उचित स्कूल भवन, बैठक व्यवस्था, भौतिक सुविधायें, परस्पर सहयोग, स्कूल की हर क्रियाओं में भाग लेने की प्रवृत्ति तथा अध्यापकों का स्नेह ये सब बालक के व्यवहार को अभिप्रेरित करते हैं ।

14.8 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. अभिप्रेरणा की परिभाषा स्पष्ट कीजिये ।
2. अभिप्रेरणा के प्रकार बताइये ।
3. अभिप्रेरणा में आवश्यकता, चालक, प्रेरक व उद्दीपन की क्या भूमिका है ।
4. अभिप्रेरणा अधिगम को किस प्रकार प्रभावित करती है ।

14.9 सारांश

मनुष्य एक विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों करता है? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न ढंग से दिया है । मनोवैज्ञानिकों ने भी मानव व्यवहार का आधार ढूँढना चाहा है। मनोवैज्ञानिकों के इस सम्बन्ध में दो दल है । एक दल वंशानुक्रम से प्राप्त शक्तियों पर विश्वास करता है तो दूसरा वातावरण को ही स्वीकार करता है । पहला दल मूल प्रवृत्तियों का समर्थक है, दूसरा दल विभिन्न प्रेरकों का ।

प्रेरणाएँ प्राणी की स्वाभाविक मनोवृत्तियाँ हैं ये हमारे आचरण का नियंत्रण करती हैं । उद्देश्य प्रेरणा का आवश्यक अंग है । प्रेरणा एक कला है जो बालकों को उत्तेजित करके लक्ष्य तक पहुँचाती है । अधिगम के लिये प्रेरणा महत्त्वपूर्ण है इसीलिये स्कीनर ने इस शक्ति को सीखने का राजमार्ग कहा है । बिना प्रेरणा के सीखना संभव नहीं है ।

बालक के व्यवहार में आवश्यकता चालक, प्रेरक व उद्दीपन प्रेरकों का बहुत महत्त्व होता है । बालक इन चार स्रोतों की सहायता से लक्ष्य तक पहुँचता है । बालक के व्यवहार को ये दिशा निर्देश देती है तभी वह लक्ष्य की प्राप्ति करता है ।

प्रेरणा शिक्षा प्रक्रिया का मुख्य आधार है और सीखने का एक ऐसा शक्तिशाली साधन है जिसका प्रयोग करके शिक्षक बालकों को उनके साध्य तक पहुँचा सकता है । उनकी क्रियाओं को किसी भी दिशा में मोड़ सकता है और व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन कर सकता है इसलिये हमारे विद्यालय में सीखने के लिये वास्तविक और स्थायी प्रेरकों को प्रदान किये जाने के प्रयास की आवश्यकता है।

14.10 मूल्यांकन प्रश्न

1. अभिप्रेरणा से आप क्या समझते है? यह कितने प्रकार की होती है ।
2. अभिप्रेरणा सीखने का राजमार्ग है । स्पष्ट कीजिये ।
3. अधिगम को प्रेरणा किस प्रकार तथा किस मात्रा में प्रभावित करती है?
4. अभिप्रेरणा का शिक्षक के लिये क्या महत्त्व है?
5. अभिप्रेरणा सीखने की प्रक्रिया का हृदय है । विवेचना कीजिये?

14.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Educational Phychology — Gates and Others
2. Educational Phychology — J.P.Gulford
3. Educational Phychology — S.S. Chauhan

4. शिक्षा मनोविज्ञान — रामबाबू गुप्त
5. शिक्षा मनोविज्ञान — पी. डी. पाठक
6. शिक्षा मनोविज्ञान — रामसकल पाण्डे
7. शिक्षा मनोविज्ञान — सुबोध तिवारी
8. विद्यार्थी विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया — डॉ. एस. के. मंगल, डॉ. शुभ्रा मंगल
9. शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार — डॉ. गिरीश पचौरी
10. विकासात्मक मनोविज्ञान — डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा
11. Learning and Human Abilities & Klausemier

इकाई 15

विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बालक, श्रवण व दृष्टिदोषयुक्त बालक, प्रतिभाशाली व पिछड़े बालक तथा बाल अपराधी बालक

(Special Children & their needs, Hearing and Visual Impairment Children, Gifted and Backward Children and Delinquent Children)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक कौन

15.2.1 अर्थ, परिभाषा

15.2.2 विशेषताएँ

15.2.3 प्रकार

15.3 श्रवण दोषयुक्त बालक

15.3.1 श्रवण दोषयुक्त बालकों के प्रकार

15.3.2 श्रवण दोष के कारण

15.3.3 श्रवण दोष बालकों की समस्याएँ व निवारण हेतु सुझाव

15.3.4 श्रवण दोष बालक के प्रति परिवार व समाज का दायित्व

15.4 दृष्टि दोष युक्त बालक

15.4.1 अर्थ व प्रकार

15.4.2 दृष्टि दोष के कारण

15.4.3 दृष्टि दोष युक्त बालक के प्रति घर परिवार व समाज का दायित्व

15.5 प्रतिभाशाली बालक

15.5.1 अर्थ व प्रकार

15.5.2 प्रतिभाशाली बालक कौन

15.5.3 प्रतिभाशाली बालक के प्रति घर परिवार व समाज का दायित्व

15.6 पिछड़े बालक

15.6.1 अर्थ व प्रकार

15.6.2 पिछड़ेपन के कारण

15.6.3 पिछड़े बालक के प्रति घर परिवार व समाज का दायित्व
15.7 बाल अपराध
15.7.1 अर्थ व प्रकार
15.7.2 बाल अपराधी के लक्षण
15.7.3 बाल अपराधों के कारण
15.7.4 बाल अपराध को रोकने में घर परिवार व समाज का दायित्व
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 मूल्यांकन प्रश्न
15.11 संदर्भ ग्रंथ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद आप-

- विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों को जान सकेंगे ।
- विशिष्ट आवश्यकता वाले बालकों के प्रकारों को जान सकेंगे ।
- श्रवण दोष व दृष्टि दोष युक्त बालकों को जानकर उनका सहयोग कर सकेगें ।
- प्रतिभाशाली बालकों का अर्थ व उनकी विशेषताओं को समझ सकेंगे ।
- पिछड़े बालक कौन होते है? इन्हें समझ कर उनका सहयोग कर सकेंगे ।
- प्रतिभाशाली व पिछड़े बालकों में अन्तर कर सकेंगे ।
- बाल अपराध किसे कहते है? जान सकेंगे ।
- बाल अपराध के कारणों व उन्हे रोकने हेतु प्रयास कर सकेंगे ।

15.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति विशेष में दूसरे से विभिन्नता पाई जाती है । यह भिन्नता उनकी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक सांवेगिक विशेषताऐं होती है । जब कोई व्यक्ति साधारण व्यक्ति से बहुत अधिक भिन्नता रखता है और उसे उस भिन्नता के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है ऐसे बालक को विशिष्ट बालक (special children) के वर्ग में रखा जाता हैं । ऐसे बालक अपने आपको वातावरण के साथ समायोजित (adjust) करने में कठिनाई महसूस करते है । यदि इन बालकों पर ध्यान नहीं दिया जाता है तो वे अपराधी व कुंठित नागरिक बन सकते है । अत: घर, परिवार व समाज का विशेष दायित्व है कि हम उन बच्चों को पहचाने और उन्हे अच्छा नागरिक बनने व अच्छे जीवनयापन करने हेतु सहायता प्रदान करें ।

15.2 विशिष्ट आवश्यकता वाले बालक कौन

सामान्यतया बौद्धिक दृष्टि से तेज या मंद बालक को ही विशिष्ट बालक समझा जाता है लेकिन ऐसा नहीं है । शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, सामाजिक व नैतिक दृष्टि से सबसे अधिक संख्या उन बालक की होती है जो सामान्य य सामान्य के अति नजदीक होते है ।

जबकि हम उन सामान्य छात्रों के ऊपर और नीचे दोनों और इधर-उधर बढ़ते है तो यह संख्या निरन्तर कम होती जायेगी और अन्त में बहुत ही कम रह जायेगी ।

इसका अर्थ यह हुआ कि सामान्य बालकों की संख्या सबसे अधिक और बहुत अच्छे व बहुत खराब बालकों की संख्या कम होती है ।

सामान्य बुद्धिलब्धि (90 से 109) वाले बालकों की संख्या अधिक लगभग (46%) होती है जबकि उन बालकों की संख्या बहुत कम होती है जिनकी बुद्धिलब्धि 150 से ऊपर या 50 से कम होती है। इसी प्रकार शारीरिक दृष्टि से लगभग 95% बच्चे सामान्य होते है और उन बच्चों की संख्या कम लगभग 1% होती है जो शारीरिक दृष्टि से सामान्य से बहुत अच्छे होते है या जिनके किसी अंग का अभाव होता है ।

15.2.1 अर्थ व परिभाषा

जब कोई बालक अपने ही वर्ग के सामान्य बालकों के लक्षणों से बिल्कुल अलग लक्षणों वाला होता है तो हम उसे विशिष्ट बालक कहते है । ऐसे बालकों की विशेष आवश्यकताएँ होती है ।

मनोवैज्ञानिकों ने विशिष्ट शब्द का अर्थ अलग अलग रूप से दिया है । क्रो एवं क्रो (crow and crow) ने विशिष्ट शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि विशिष्ट शब्द किसी एक ऐसे गुण या उस गुण के धारण करने वाले व्यक्ति के लिये उस समय प्रयोग में लाया जाता है जब वह व्यक्ति उस विशेष गुण को धारण करते हुये अन्य सामान्य बालकों से इतना अधिक असामान्य प्रतीत हो कि वह उस गुण विशेष के कारण अपने साथियों से विशिष्ट ध्यान की मांग करें ।

अमेरिका नेशनल सोसाइटी फार स्टेडी ऑफ ऐजुकेशन के अनुसार (American National Society for study of a Educations) के अनुसार विशिष्ट बालक वे है जो कि सामान्य बालकों से शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक व सामाजिक विशेषताओं में इतनी अधिक दूरी पर है कि अपनी उच्चतम योग्यता तक विकसित होने के लिये उन्हे विशेष शैक्षिक सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है।

क्रिक के अनुसार 'विशिष्ट बालक वह है जो सामान्य तथा औसत बालक से शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विशेषताओं में इतना अधिक अलग है कि वह विद्यालय व्यवस्थाओं में सुधार या विशेष सेवाऐं चाहता है जिससे वह अपनी अधिकतम क्षमता का विकास कर सकें ।

Any Exceptional child is one who deviates from the normal child in mental, physical and social characteristics to such extent that he requires a modification of school Practices or special services to develop his maximum capacity - Krick

15.2.2 विशिष्ट बालकों की विशेषताएँ

1. विशिष्ट बालक सामान्य बालकों से भिन्न होते है-

2. विशिष्ट बालकों में यह भिन्नता धनात्मक (Positive) तथा ऋणात्मक (Negative) दोनों दिशाओं में हो सकती है अर्थात यह बुद्धि की दृष्टि से बहुत अधिक धनी तथा कमजोर हो सकते है ।
3. विशिष्ट बालकों को अपने आपको वातावरण के साथ समायोजित (adjust) करने में काफी कठिनाई होती है ।
4. विशिष्ट बालकों के विकास, आवश्यकताओं तथा उचित समायोजन के लिये विशेष देखरेख व निर्देशन की आवश्यकता होती है ।

15.2.3 विशिष्ट बालकों के प्रकार

शारीरिक मानसिक, सांवेगिक सामाजिक व नैतिक दृष्टि से देखा जाये तो इस प्रकार के बालक कई प्रकार के हो सकते है लेकिन हम यहाँ चार प्रकार के विशिष्ट बालकों को दर्शा रहे है वे है-

1. प्रतिभाशाली बालक
2. पिछड़े बालक
3. मन्द बुद्धि बालक
4. समस्यात्मक बालक

विश्लेषण की दृष्टि से ऐसे बालकों को दो वर्गों के बांटा जा सकता है ।

1. शिक्षण योग्य
2. प्रशिक्षण योग्य

किसी भी कार्य को सीखने का सम्बन्ध बुद्धि से होता है जो बुद्धिमान होते है वे किसी भी बात को बहुत जल्दी समझ लेते है और जो बुद्धि में कमजोर होते है वे किसी बात को आसानी से समझ नहीं पाते या बड़ी कठिनाई से समझ पाते है और जल्दी भूल जाते है । इस प्रकार जो बालक बौद्धिक दृष्टि से कमजोर होते है उन्हे शिक्षित नहीं किया जा सकता लेकिन अनुकरण व अभ्यास के द्वारा कुछ काम कराये जा सकते है । विकलांग बालक शिक्षण योग्य होते है क्यों कि वे बौद्धिक दृष्टि से ठीक, बिल्कुल हीन नहीं होते है ।

15.3 श्रवण दोष युक्त बालक

श्रवण दोषयुक्त बालक को या तो सुनाई नहीं देता या ऐसे बालक सुनने व ध्वनियों को पहचानने में सहजता महसूस नहीं करते, श्रवणदोष युक्त बालक कहलाते है ।

15.3.1 ऐसे बालक दो प्रकार के होते है ।

1. बहरा बालक
2. ऊँचा सुनने वाला बालक

बहरे बालक को कुछ भी सुनाई नहीं देता । यदि यह बहरापन जन्म से होता है तो वे गूँगे भी होते है । वे अपनी बात को इशारों से ही थोड़ा बहुत समझ पाते है । ऊँचा सुनने वाले बालकों में पूरी तरह से बहरापन नहीं होता । इनके श्रवणअंगों में दोष पाये जाने के कारण वे सामान्य वार्तालाप को ठीक प्रकार सुन नहीं पाते । इन्हें समझने के लिये काफी तेज स्वर में बोलना पड़ता है ।

श्रवणदोष को audiometer उपकरण द्वारा मापा जाता है । बहरे व सामान्य के बीच काफी डिग्री का अन्तर होता है जिसे डेसीबल इकाई (decible unit) द्वारा दर्शाया जाता है

15.3.2 श्रवण दोष के कारण

(i) गम्भीर बीमारी या कुपोषण का शिकार होने पर

(ii) माँ के गर्भ में बालक को उचित वातावरण न मिलने, माँ को चोट, सदमा लगने से, बालक के मस्तिष्क पर प्रभाव से ।

(iii) माता पिता के गुणसूत्रों (Chromosomes) तथा जीन्स (Genes) का दोषयुक्त होना व इनका स्थानान्तरण बालक के भ्रूण अवस्था में आने से श्रवण दोष का शिकार होना।

(iv) भयंकर दुर्घटनाएँ व शरीर व मस्तिष्क पर गहरा आघात ।

(v) पर्यावरण में तेजी से बढ़ता हुआ प्रदूषण ।

(vi) सामान्य व कान संबंधी बीमारियाँ, संक्रमण, तेज दवाओं का असर आदि ऐसे कारण है जो श्रवण दोष व बालक की सुनने की शक्ति को प्रभावित करते है ।

15.3.3 हमारा दायित्व

(i) सर्वप्रथम हम यह पता लगायें कि बालक पूर्ण रूप से बहरा है या ऊँचा सुनाई देने वाला (Hard of hearing) है ।

(ii) पूर्ण रूप से बहरे बालकों के लिये (for deaf children) माता पिता को चाहिये कि वे अपने बालक को आ बधिर विद्यालय (Deaf and Dumb School) में भेजे ।

– घर परिवार व समाज ऐसे बालकों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें व सहयोग प्रदान करें ।

– विद्यालय के साथ घर, परिवारजन भी बालक को प्रशिक्षित करने में सहयोग प्रदान करें ताकि बालक होठों के संचालन, हावभाव, मुख जीभ, तालू आदि पेशीय गति का अनुभव कर विचारों को ग्रहण कर सकें ।

– ऐसे बालकों में कलात्मक तथा सौदर्यात्मक गुणों की प्रचुरता होती है यदि इन शक्तियों के विकास में हम इन्हें उचित अवसर प्रदान करें तो ये बालक कुशल कारीगर, चित्रकार, शिल्पकार, मूर्तिकार डिजाइनर बन सकते है ।

ऊँचा सुनने वाले बालकों के लिये

पूर्णरूप से बहरे बालकों की तुलना में कम या ऊँचा' सुनने वाले बालकों की शिक्षा व्यवस्था करना आसान होता है इन्हें कम प्रयास से आसानी से जीवन की परिस्थितियों के साथ समायोजित किया जा सकता है जैसे-

– माता-पिता को चाहिये कि वे विशेषज्ञ डाक्टर की सलाह ले व बालक को श्रवण सहायक यंत्र उपलब्ध करायें ।

– घर, परिवार व समाज का दायित्व है कि वे इन बालकों की देखरेख भली प्रकार करें व इन्हें अपनी कमजोरी का बोध न करायें ।

– श्रवण यंत्र के प्रयोग का अभ्यास भली प्रकार दे ।

– दृश्य साधनों का प्रयोग अधिक किया जाये ।

- ऐसे बालकों की स्वयं की ध्वनि में उतार चढाव होते रहते है कभी ये बहुत जोर से बोलते है तो कभी धीरे । इसलिये इन बालकों के बोलने संबंधी त्रुटियों व उच्चारण सुधार हेतु पर्याप्त प्रयास किये जाये ।

दृष्टिदोष युक्त बालक

ऐसा दोष जिसके कारण या तो कुछ भी दिखायी नहीं देता या जिसमें स्पष्ट रूप से दिखायी नहीं देता । दृष्टिदोष कहलाता है । इस दोष के शिकार बालक दृष्टि विकलांग (visual Handicapped child) कहलाते है ।

इस प्रकार के बालक कई तरह के हो सकते है-

पूरी तरह से अंधे (Totally Blind)

अपूर्ण अंधे (Partially Blind)

दृष्टि दोष के कारण

- दृष्टिदोष के लिये प्रमुख रूप से अनुवाशिंकी तथा वातावरण जिम्मेदार होते है ।
- प्रसव के समय होने वाली असावधानियाँ ।
- बालक के शैशवावस्था व बाल्यावस्था में दिये जाने वाले अपर्याप्त भोजन
- बालक में महत्वपूर्ण पोषक तत्वों, विटामिनों की कमी ।
- रोग के कारण पोषक तत्वों की कमी होने पर ।
- बहुत कम रोशनी या अधिक रोशनी में पढ़ना, गहरे रंग की रोशनी या हिलती-डुलती रोशनी में पढ़ना या अन्य कार्य करना, कम्प्यूटर पर अधिक कार्य करना । टी.वी. को अधिक नजदीक से देखना ।
- माता पिता से अपनी संतति में स्थानान्तरण होना ।
- गर्भकाल में माँ का दुर्घटना ग्रसित होना । कुपोषित होना आदि ऐसे कारण है जो बालकों की दृष्टि को प्रभावित करते है ।

दृष्टिदोष युक्त बालक के प्रति परिवार, समाज व विद्यालय का दायित्व

1. माता पिता को चाहिये कि वे डाक्टर से नेत्र परीक्षण करवाये व उचित लेन्स व चश्मे का प्रयोग करवाकर बालक को सुविधा प्रदान करें ।
2. परिवारजन ध्यान रखे कि बालक चश्मे का प्रयोग नियमित कर रहा है या नहीं । उपयोग हेतु अभ्यास कराये ।
3. विटामिन 'ए' युक्त आहार बालक को खिलाये ।
4. हरकुट (Hurkat) के अनुसार अन्धे लोग संगीत तथा शिक्षक के रूप में काफी सफल रहते है उन्हे इस प्रकार का प्रशिक्षण देना हमारा दायित्व बनता है । कुछ अन्धे लोग आज कई प्रकार के कार्यो को सफलता पूर्वक कर रहे है जैसे खेतीबाड़ी, रसायन सम्बंधी कार्य, नर्सरी, समाजोपयोगी उत्पादन से जुडे कार्य जैसे दरियाँ बनाना, बेंत के सामान तैयार करना, झाड़ू टोकरियाँ, मिट्टी के बर्तन बनाना आदि-आदि । उन्हे यह सब सिखाने के अवसर प्रदान करने चाहिए ।

5. अंधे बच्चों पर व्यक्तिगत ध्यान, मूर्त विधियों से शिक्षण, स्वक्रिया का अभ्यास, ब्रेल विधि से पढ़ने लिखने व टाइप करने का प्रशिक्षण देने की सुविधा दी जाये ।
6. इन बालकों को सामाजिक कुशलताओं को सीखने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिये व व्यावसायिक पुर्नस्थापन करना भी आवश्यक है ।
7. वातावरण पर नियंत्रण करना सिखाना व छोटेपन से ही नये अनुभव प्राप्त करना व चोट के डर को दूर करने में सहायता देनी चाहिये ।
8. अंधे बालकों हेतु विशिष्ट शिक्षण सामग्री व उपकरणों की व्यवस्था करें जैसे -
   (i) ब्रेल सामग्री
   (ii) श्रवण सहायक सामग्री
   (iii) गणित सहायक सामग्री
   (iv) कढ़े व उभरे हुये मानचित्र
9. कम देखने वाले बालकों के प्रति माता-पिता, परिवार के प्रत्येक सदस्य व शिक्षकों का सचेत रहना आवश्यक है । बालक यदि पढ़ते समय अपनी आखों को बार-बार इधर-उधर झुकाता है, आखों को रगड़ता है या पुस्तक को सही दूरी से नहीं पकड़ता है तो हमें समझ जाना चाहिये कि बालक में दृष्टिदोष है और उसके उपचार हेतु समय पर चेत चखाना चाहिये ।
10. कम दिखने वाले बालकों के लिये बड़े छापे वाली पुस्तकें व शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराये ।
11. ऐसे बालकों को कक्षा में आगे बिठायें ताकि श्यामपट्ट को आसानी से देख सके ।
12. ऐसे बालकों को समझाने व सम्प्रेषण हेतु लिखित की अपेक्षा मौखिक तरीके का अधिक इस्तेमाल किया जाये ।

स्वमूल्यांकन के प्रश्न

1. विशिष्ट बालकों की विशेषताएँ लिखिये ।
2. विशिष्ट बालकों के प्रकार लिखिये ।
3. श्रवण दोष के क्या-क्या कारण है?
4. दृष्टिदोष के क्या-क्या कारण है?

प्रतिभाशाली बालक

प्रत्येक विद्यालय में प्रतिभाशाली बालक होते है, इन बालकों में उच्च बुद्धि व अभिक्षमताएँ पायी जाती है । प्रतिभाशाली बालकों की संख्या विद्यालयी जनसंख्या का लगभग एक प्रतिशत होता है । अधिकांशतः: इन बालकों पर धर, परिवार व विद्यालय में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता । यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है क्योंकि इन्ही प्रतिभाशाली बालकों में से आगे चलकर मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व की अपेक्षा की जाती है । प्रतिभाशाली बालकों की पहचान आरम्भिक अवस्था में ही हो जानी चाहिए । ताकि हम उसकी प्रतिभा को

जान कर उसे निखार सके । ऐसा भी देखा गया है कि यदि प्रतिभाशाली बालकों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया या उन्हे सुविधायें से वंचित रखा गया तो वे एक समस्यात्मक बालक (Problematic child) भी बन सकते है ।

अर्थ व परिभाषा

प्रतिभाशाली बालक वे होते है जो सामान्य शिक्षा अवधि में कई वर्ष कम में ही अपनी शिक्षा को समाप्त कर लेते है । बुद्धिलब्धि की दृष्टि से उच्च होते है । सामान्यत: 120 i.q से ऊपर वाले बालकों को प्रतिभाशाली बालक माना जाता है । वे अपने कार्य व व्यवसाय में श्रेष्ठ व उच्च स्थान प्राप्त करते है उनमें सृजनशीलता Creativity की मात्रा अधिक होती है ।

लसिरो ने प्रतिभाशाली बालक को निम्न शब्दों में परिभाषित किया है । प्रतिभाशाली बालक वे है जिनकी क्षमता तथा बोद्धिक शक्तियाँ, उत्पादकता एवं मूल्यांकनात्मक चिन्तन इतने उच्च स्तर के होते है कि तर्कसंगत रूप में माना जा सकता है कि यदि इन्हें पर्याप्त शैक्षिक अनुभव प्रदान किये जाये तो वे संस्कृति के भावी समस्या समाधानकर्ता, खोजकर्ता, प्रवर्तक एवं मूल्यांकनकर्त्ता बन सकते है ।

The Gifted are those children whose potential intellectual power are at such high level in both productive and evaluating thinking that it can be reasonably assumed that they could be future problem solver, innovators and evalvators of the culture if adequate educational experience are provided to them.

विट्टी के अनुसार प्रतिभाशाली उन बालकों को कहेगें जो संगीत, कला, सामाजिक नेतृत्व तथा अन्य प्रकार की अभिव्यक्तियों पर बराबर असाधारण निष्पादन प्रदर्शित करते है ।

In the words of Witty's definition "Those whose performance in a worthwhile human endeavour us constantly remarkable as well those who are academically superior.

अत: स्पष्ट है कि बौद्धिक दृष्टि से जो बालक किसी नवीन बात को शीघ्र ही सीखने की क्षमता रखते है उन्हे प्रखर बुद्धि या प्रतिभाशाली (Gifted) बालक कहा जाता है ।

प्रतिभाशाली बालक की विशेषताऐं

- वह शीघ्रता व सरलता से सीखने की क्षमता रखता है ।
- अधिक शब्दों का प्रयोग शुद्धता व सरलता से करता है
- अपने स्तर से उच्च स्तर की पुस्तकों को पढ़ता व समझता है ।
- छोटी आयु से ही जिज्ञासु होते है क्यों हुआ, कैसे हुआ । ऐसे प्रश्न बचपन से ही पूछने लगते है।
- नई बात व नये कार्यो को करने में उत्सुक होते हैं ।
- अपेक्षाकृत कठिन कार्य करना पसंद करते है ।
- अपने से बड़े बच्चों के साथ रहना पसंद करते है ।
- रूचियों की प्रचुरता व विविधता होती हैं ।

- समय को बर्बाद करना अधिक पसंद नहीं करते ।
- प्रश्नों के उत्तर सोच समझ कर देते है ।
- विनोदप्रिय अधिक होते है ।
- किसी भी बात को सीखने में ध्यानकेन्द्रण अधिक समय तक कर सकते है ।
- तर्कशक्ति अधिक होती है, शब्द कोष, विश्वकोष पढ़ने में रूचि रखते है ।
- चिन्तनशील होते है,
- तर्कशक्ति प्रखर होती है, बिना रटे समझने में विश्वास रखते है ।
- किसी के कथन पर आसानी से सहमत नहीं होते ।
- विज्ञान व गणित के विषयों में अधिक रूचि रखते है ।
- कार्यकारण सम्बन्धों का पता लगाने में रूचि रखते है ।

प्रतिभाशाली बालक के प्रति घर परिवार व विद्यालय का दायित्व

1. प्रतिभाशाली बालकों की जिज्ञासाओं को सही व तर्क संगत ढंग से शान्त करें, उन्हे भ्रमित न करें।
2. परिवार व माता-पिता का दायित्व बनता है कि उन पर जबरदस्ती अपनी मान्यताओं व अपेक्षाओं को न थोपें ।
3. माता पिता व विद्यालय ऐसे बालकों की प्रतिभाओं व क्षमताओं को भलीभांति पहचाने और उसी के अनुरूप उनकी शिक्षण व्यवस्था करें ।
4. माता पिता सही विद्यालय व सही शिक्षकों का चयन करें ।
5. विद्यालय के शिक्षक ऐसे बालकों की प्रतिभाओं को निखारने हेतु
   (i) त्वरित शिक्षण करें ।
   (ii) उनकी सामाजिक व सांवेगिक स्थिति को ध्यान में रखे ।
   (iii) समय समय पर मूल्यांकन करें, उनकी प्रगति से उन्हे अवगत करायें ।
   (iv) शिक्षण करते समय वैज्ञानिक विधियों व बाल केन्द्रित विधियों का प्रयोग करें ।
   (v) प्रत्येक इकाई को गहनता व विस्तृतता से पढ़ाये ।
   (vi) सक्रिय बनाने हेतु विचारोंत्तेजक सत्र का प्रयोग करें ।
   (vii) तर्क चितंन व अनुसंधान पर आधारित विषय वस्तु का समावेश करें ।
6. प्रतिभाशाली बालक के विकास में सतत् सहायता देनी चाहिये । यह सहायता विशेषकर पूर्व किशोरावस्था या किशोरावस्था के आरम्भ से ही देनी चाहिये क्यों कि इस अवस्था से बालक अपने भविष्य के बारे में योजना बनाने के लिये, गम्भीरता से सोचना शुरू कर देते है । प्रतिभाशाली बालक अपने सलाहकार व निर्देशक के प्रति काफी संवेदनशील होते है जिन्हें वह अयोग्य समझते है या पसंद नहीं करते है उनके प्रति कटु आलोचक बन जाते है और जिन्हें वे पसंद करते है उनको अपना आदर्श मान लेते है इसलिये प्रतिभाशाली बालक के प्रति घर, परिवार, समाज व विद्यालय का दायित्व बहुत महत्वपूर्ण होता है क्यों कि यदि इन बालकों पर पर्याप्त ध्यान न दिया तो ये समस्यात्मक बालक बन सकते है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. प्रतिभाशाली बालक से आप क्या समझते है?
2. प्रतिभाशाली बालक की परिभाषा लिखिये ।
3. प्रतिभाशाली बालकों के प्रति धर परिवार व विद्यालय के क्या दायित्व है ।

15.6 पिछड़े बालक

पिछड़े बालकों से तात्पर्य ऐसे बालक जो बार-बार समझाने पर भी नहीं समझते तथा सामान्य बालकों की तरह प्रगति नहीं कर पाते है । पढ़ने, लिखने में पीछे रह जाते है व एक कक्षा में कई बार फेल हो जाते है ।

बालकों का पिछड़ापन दो प्रकार का होता है ।

(1) मानसिक पिछड़ापन

(2) शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर पिछड़ापन

अर्थ व परिभाषा

शोनेल के मतानुसार पिछड़ा बालक वह है जो अपनी आयु के अन्य बालकों की तुलना में अत्यधिक शैक्षणिक कमी का परिचय देता है ।

Backward Child is one who, when compared with other pupil of his chronological age shows marked educational deficiency.

(Shanell)

बर्ट (Burt) के अनुसार 'पिछड़ा बालक वह है जो अपने विद्यालयी जीवन के मध्यकाल (लगभग $10^1/_2$ की आयु) में अपनी कक्षा का कार्य नहीं कर सकता जो कि उसकी आयु के लिये सामान्य कार्य है ।

A backward Child is one who is the middle of his school (that is ten and half years) is unable to the work of the class that which is normal for his age."

(Burt)

बर्ट के अनुसार ऐसा बालक जिसका शैक्षिक उपलब्धि 85 से कम होता है पिछड़ा बालक कहलाता है । बालकों का शैक्षिक अनुपात (E.Q.) निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

पिछड़े बालकों की पहचान अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे बुद्धि परीक्षण (Intelligence test), निष्पत्ति परीक्षण (Achievement test), व्यक्तिगत परीक्षण (Personality test), निदानात्मक परीक्षण (Diagnostic test) व्यक्तिगत अध्ययन (Case study) से की जा सकती है ।

पिछड़ने के कारण

बालक के पिछड़ेपन के अनेक कारण हो सकते है कभी माता पिता का बालक पर ध्यान न देना, कभी शिक्षक तो कभी छात्र स्वयं उत्तरदायी होता है ।

शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े जाने के कारणों को हम दो भागों के बाँट सकते है ।

1. आन्तरिक कारण
2. बाह्य कारण

आन्तरिक कारणों का संबंध स्वयं बालक से होता है व बाह्य कारणों का संबंध उसके वातावरण से।

आन्तरिक कारण भी दो प्रकार के हो सकते है ।

1. शारीरिक
2. मनोवैज्ञानिक

इसी प्रकार बाह्य तीन प्रकार के हो सकते है ।

1. घरेलू कारण
2. विद्यालयी कारण
3. सामाजिक कारण

इन सब का संक्षिप्त विवरण निम्न है ।

1. शारीरिक कारण

शारीरिक कमियाँ जैसे विकलांगता, शारीरिक दोष, दृष्टि दोष (Visual Impairment), श्रवण दोष (Hearing Impairment) आदि के कारण छात्र उतना नहीं सीख पाते जितना वे सामान्य रूप में सीख जाते है ।

2. मनोवैज्ञानिक कारण

1. बौद्धिक हीनता
2. सांवेगिक अस्थिरता
3. रूचि का अभाव
4. नकारात्मक दृष्टिकोण

3. घरेलू कारण

1. घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होना ।
2. सौतेली माँ का दुर्व्यवहार ।
3. घर के कामों की अधिकता ।
4. परिवार का बड़ा होना ।
5. खाने पीने का अभाव, कुपोषण ।
6. पढ़ने के लिए पर्याप्त समय न मिलना ।

कई ऐसे कारण है जिनसे बालक पढ़ने में पिछड़ जाते है ।

विद्यालयी कारण

1. विद्यालय में अव्यवस्था व बालक का समायोजन
2. अनुशासनहीनता

3. अच्छे शिक्षक का अभाव ।
4. शिक्षक छात्र व अन्य संबंधों का अच्छा न होना ।
5. विद्यालय का वातावरण शांत व शैक्षिक न होना ।

सामाजिक कारण

1. सामाजिक अर्न्तसंबंधों का अभाव होना ।
2. छात्र की संगत ठीक न होना ।
3. सामुदायिक वातावरण दूषित होना (Communal environment)

पिछड़े बालकों के प्रति धर, समाज व विद्यालय के दायित्व

1. बालक के शैक्षिक पिछड़ापन के उपचार हेतु सबसे अधिक दायित्व शिक्षक फिर माता पिता, अभिभावक गण व स्वयं का होता है । माता पिता, अभिभावकों व स्वयं के द्वारा जो प्रयत्न किये जाये वे भी शिक्षक द्वारा सुझाये हुये होने चाहिये ।
2. ऐसे बालकों को इस प्रकार अभिप्रेरित किया जाये कि उनकी उपलब्धि उनकी क्षमतानुसार हो ।
3. घर, परिवार, समाज व विद्यालय मे कभी भी कोई ऐसी बात न की जाये जो बालक के पढ़ने पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है ।
4. शिक्षक अभिभावक सम्मेलन द्वारा माता पिता को बालक की प्रगति बालक से संबंधित समस्याओं का निदान किया जाये ।
5. माता पिता को शिक्षा के प्रति जागरूक होना व अपने बालक को शिक्षा देने हेतु हर संभव प्रयास किया जाने चाहिये ।
6. घर, परिवार व विद्यालय में ऐसे बालकों को हतोत्साहित करने वाली या प्रतिभाशाली छात्रों में अंहभाव पैदा करने वाली कोई भी बात नहीं कहनी चाहिये ।
7. ऐसे बालकों पर अनावश्यक बोझ न डाला जाये ।
8. कम देखने व कम सुनने वाले बालकों को डाक्टर से परामर्श लेकर उपचार करवाया जाये व कक्षा में ऐसे स्थान पर बिठाया जाए कि वे शिक्षक की बात सुन सके व श्यामपट्ट पर लिखा देख सके ।
9. इन बच्चों के साथ सहानुभूति व सतर्कता के साथ पेश आयें ।
10. माता पिता अपने इन बालकों पर विशेष ध्यान दे । उनकी संगति, उनकी शैक्षिक प्रगति, पढ़ने हेतु पर्याप्त समय देने पर ध्यान रखे ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. शोनेल द्वारा दी गई पिछड़े बालक की परिभाषा लिखिये ।
2. शैक्षिक उपलब्धि की गणना करने का सूत्र क्या है?
3. पिछड़ेपन के क्या क्या कारण है?

15.7 बाल अपराध

प्रत्येक राष्ट्र, समाज व वर्ग के अपने नियम, परम्पराएँ, रीति रिवाज होते है । इन नियमों व परम्पराओं को तोड़ने वाले को दण्ड दिया जाता है क्यों कि नियमों को तोड़ना, अपराध है और अपराधी को दण्ड मिलना चाहिए । ये नियम बच्चे और बड़े दोनों ही तोड़ बैठते है । छोटे बच्चे जब नियम तोड़ते है तो उन्हे दण्ड नहीं के बराबर मिलता है क्यों कि अबोध बालक को नियमों का ज्ञान नहीं होता वह नियम को अज्ञानवश तोड़ता है । उससे कुछ बड़ा नियम तोड़ता है तो कुछ दण्ड मिलता है । परिपक्व यदि नियम को तोड़ता है तो उसे पूरा दण्ड मिलता है क्यों कि वह जानबूझ कर ऐसा करता है इसलिये उसे सबसे अधिक दण्डित किया जाता है।

वास्तव में जानबूझकर धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक या सार्वजनिक नियमों को तोड़ना, अपराध है । और जब इन नियमों को बालक तोड़ते है तो उसे बाल अपराध (Junenile delingquency) कहा जाता है ।

बाल अपराध का अर्थ व परिभाषा

बालापराध बालकों द्वारा अज्ञानवश नियमों को तोडना होता है । बालापराध के सुधार की सम्भावना होती है ।

हेली के अनुसार- 'जो बालक व्यवहार के सामाजिक मानकों से हटकर आचरण करता है, बालापराधी कहलाता है ।

Helly - "A Child who deviates from social norms of behavior is called delinquent."

सिरिल वर्ट के अनुसार- 'वह बालक वैधानिक रूप से उस समय अपराधी कहलाता है जब उसके समाज विरोधी कार्य इतने गम्भीर हो जाते है कि सरकार उन पर नियंत्रण करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करती है या कार्यवाही करने की आवश्यकता महसूस करती है ।

Cyril Burt - "A Child is technically delinquent when his anti-social tendencies appear so grave that he becomes or ought to become the subject of official action."

बालापराधी व्यवहार के अन्तर्गत न्यूमेयर के अनुसार 'ऐसे समाज विरोधी व्यवहार आते है जो व्यक्तिगत तथा सामाजिक विघटन उत्पन्न करते है ।

Delinquency implies from of anti-social behaviours involving personal and social disorganization.

- Newmeyer

इस प्रकार सामाजिक मान्यताओं व परम्पराओं के विरूद्ध किये जाने वाला व्यवहार जो बालक छोटी उम्र में करता है अल्प वयस्क या किशोर अपराधी भी कहा जाता है । ये किशोर अपराधी मारपीट करना, जुआ खेलना, शराब पीना, हत्या करना, जेब काटना, यौन संबंधी कार्य करना, बलात्कार करना, देश की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना, देशद्रोही होना, मादक पदार्थों का सेवन व तस्करी करना आदि अपराधों में लिप्त होते है । वर्तमान समाज के सामने यह बड़ी

गम्भीर समस्या हैं । समय रहते यदि निदान व उपचार न किया तो बड़े गम्भीर परिणाम भुगतने पड़ सकते है अत: 18 वर्ष से कम आयु वाले बालकों को अपराधी बालक कहा जाता है।

बाल अपराधी बालक के लक्षण

1. स्वभाव से बैचेन रहते है ।
2. व्यक्ति में अस्थिरता व दूरदर्शिता का अभाव
3. समस्या का हल नहीं कर पाते
4. कार्य नियोजन की कमी होती है ।
5. ऐसे बालक अवसाद ग्रसित होते है ।

बाल अपराध के कारण

1. घरेलू परिस्थितियाँ

(i) घर की आर्थिक स्थिति का ठीक न होना
(ii) माता पिता का र्दुव्यवहार ।
(iii) सौतेली माँ का होना ।
(iv) माता पिता के पारस्परिक झगड़े, तलाक
(v) माता पिता द्वारा अनावश्यक नियंत्रण या पूर्ण छूट देना ।
(vi) हर इच्छा को पूरा करना, अत्यधिक संरक्षण देना ।

2. विद्यालय का प्रतिकूल वातावरण

(i) विद्यालय में उपयुक्त साधनों का अभाव ।
(ii) बालकों का अनावश्यक नियंत्रण व दबाव
(iii) बालकों की रूचि व इच्छाओं का दमन
(iv) शिक्षकों का कठोर व्यवहार व आदर्श शिक्षकों का विद्यालय में अभाव

3. कुसंग

(i) बालक की संगत गलत होना ।
(ii) माता पिता द्वारा बालक की क्रियाओं पर ध्यान न देना ।
(iii) बालक का अत्यधिक समय घर से विद्यालय से बाहर रहना

4. दूषित वातावरण

(i) बालकों का सिनेमा व टीवी. व गलत साहित्य का प्रभाव ।
(ii) नैतिक शिक्षा का अभाव
(iii) बेकारी
(iv) भौतिक विभेदिता
(v) पर्याप्त निर्देशन का अभाव
(vi) आवश्यकताओं की पूर्ति न होना ।

5. संवेगात्मक स्थितियाँ

(i) परिवार व समाज के व्यवहार से दुखी होना ।

(ii) आत्महीनता की भावना पैदा होना

(iii) आत्मविश्वास डगमगाना

(iv) शारीरिक कमियाँ व दुर्बलताए होना

(v) विपरीत परिस्थितियों का होना ।

(vi) स्नायु दुर्बलता होना

15.7.4 बाल अपराध को रोकने के धर परिवार व विद्यालय का दायित्व

किसी भी समस्या का सर्वोत्तम समाधान है कि उसके कारणों को मिटा दिया जाये । बाल अपराध के कुछ कारण तो ऐसे है जिन पर नियंत्रण करना बड़ा कठिन है इन कारणों को मिटाना इतना सरल नहीं है जितना हम सोचते है लेकिन बाल अपराध को कम करने व दूर करने हेतु हम दो स्तर पर प्रयास कर सकते है -

(i) घर पर

(ii) विद्यालय में

(i) घर का वातावरण :- बालक अनुकरण द्वारा सीखते है । माता पिता व परिवार के अन्य लोगों को अपराधी प्रवृत्ति का नहीं होना चाहिये ।

(ii) बच्चों के प्रति माता पिता का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए ताकि बालक निःसंकोच अपनी बात को कह सके व कुण्ठाये न पनपे

(iii) बच्चों की उचित आवश्यकता की पूर्ति होते रहने से वो संतुष्ट रहते है इधर उधर भटकने व अपराधी वृत्ति को नहीं पनपने देते है वह माता पिता जो बालकों की उचित मांगो को पूरा नहीं कर सकते वे अपने बच्चों की इस स्थिति से अवगत कराये।

(iv) माता पिता व परिवार के अन्य सदस्य अपने बच्चों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करें ।

(v) बालक पर न तो अत्यधिक नियंत्रण रखे न ही पूर्ण आजादी दे ।

(vi) बच्चों की दैनिकचर्या पर ध्यान दे । बालक किसके साथ रहता है कैसे समय व्यतीत करता है। आदि बातों का माता पिता विशेष ध्यान रखे ।

(vii) गलत कार्य करने पर बच्चों को दण्ड देने के बजाय प्यार से समझाये ।

(viii) अच्छे कार्यो की प्रशंसा करें व उन्हे धर के कार्यो का दायित्व भी सौंपे ।

विद्यालय व समाज का दायित्व :-

(i) बच्चों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करें ।

(ii) अच्छे व्यवहार का आदर्श प्रस्तुत करें ।

(iii) गलत कार्य के लिये बालक को दण्ड की अपेक्षा प्रेमपूर्वक समझाये ।

(iv) विद्यालय गतिविधियों में उन्हे व्यक्तिगत सामूहिक उत्तरदायित्व दें ।

(v) विद्यालय में कुशल शिक्षक हो जो हर दृष्टि से आदर्श हो ।

(vi) विद्यालय का वातावरण स्वस्थ्य व शान्त व सुविधाओं से परिपूर्ण हो ।

(vii) विद्यालय में मनोरंजन व खेलों की उचित व्यवस्था हो ।

(viii) पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा का प्रबंध हो ।

(ix) पढ़ने हेतु अच्छा साहित्य दिया जाए ।

(x) बालकों की समस्याओं को समय से पहले ही सुलझा दिया जाये ताकि वह उग्र रूप धारण न करें।

(xi) किशोरावस्था मे यौन शिक्षा से अवगत कराया जाये ।

(xii) बालकों को पर्याप्त निर्देशन व परामर्श प्रदान किये जाये ।

15.8 सारांश

विशिष्ट बालक वे होते है जो शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, सामाजिक दृष्टि से सामान्य गुणों से इस सीमा तक विचलित होते है कि उन्हे अपनी अधिकतम क्षमता के अनुसार स्वंय विकसित करने के लिये विशिष्ट निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है ।

विशिष्ट बालकों की बुद्धिलब्धि 150 से ऊपर या 50 से कम होती है । विशिष्ट बालकों के समूह को हम चार श्रेणियों में बाँट सकते है ।

1. प्रतिभाशाली
2. पिछडे
3. मंद बुद्धि
4. समस्यात्मक

विश्लेषण की दृष्टि से ऐसे बालकों को दो वर्गो में बांटा जा सकता है ।

1. शिक्षण योग्य
2. प्रशिक्षण योग्य

– बालकों में श्रवण दोष या तो जन्मजात होता है या बीमारी, संक्रमण, तेज दवाओं का असर आदि से।

– श्रवण दोष को श्रवण यंत्र द्वारा मापा जा सकता है । जिसकी इकाई डेसीबल होती है ।

– पूर्ण रूप से बहरे बालकों के लिये माता पिता, परिवार व समाज व विद्यालय का महत्वपूर्ण दायित्व होता है ।

– दृष्टि दोष के लिये अनुवांशिकी तथा वातावरण जिम्मेदार होते है ।

– दृष्टिदोष के कारण अपर्याप्त भोजन, अपर्याप्त रोशनी, पोषक तत्वों का बालक के शरीर में कमी, रोग आँखों की उचित देखभाल न करना, दुर्घटना आदि ।

– अंधे बच्चों पर व्यक्तिगत ध्यान, मूर्त विधियों से शिक्षण स्वक्रिया का अभ्यास ब्रेल (Brail) विधि से पढ़ने लिखने व टाइप करने का प्रशिक्षण देने की सुविधा प्रदान करनी चाहिये ।

– प्रतिभाशाली बालक वे होगे जो सामान्य शिक्षा अवधि से कई वर्ष कम में ही अपनी शिक्षा को पूरा कर लेते है ।

– प्रतिभाशाली बालक जिज्ञासा, तर्कशील, चिन्तनशील होते है ।

– प्रतिभाशाली बालकों की सहायता पूर्व किशोरावस्था से ही आरम्भ कर देना चाहिये क्योंकि ऐसे बालक इस अवस्था से ही अपने भविष्य के बारे में योजना बनाना आरम्भ

कर देते है वे गम्भीर व संवेदनशील होते है । यदि समय पर इन बालकों को निर्देशित न किया गया तो वे समस्यात्मक बालक बन सकते है समाज व राष्ट्र ऐसे प्रतिभासम्पन्न बालकों के नेतृत्व से वंचित रह सकता है।

- पिछडा बालक वह होता है जो अपने विद्यालयी जीवन के मध्यकाल में अपनी कक्षा का कार्य नहीं कर सकता जो उसकी आयु के लिये सामान्य बात है ।
- पिछड़े बालकों की पहचान बुद्धि परीक्षण (Intelligence test) निष्पत्ति परीक्षण (Achievement test) व्यक्तित्व परीक्षण (personality test) निदानात्मक परीक्षण, व्यक्ति अध्ययन आदि द्वारा किया जा सकता है ।
- पिछड़ेपन के मनोवैज्ञानिक कारण बौद्धिक हीनता सांवेगिक अस्थिता, रूचि का अभाव व नकारात्मक दृष्टिकोण है ।
- पिछड़े बालकों को इस प्रकार अभिप्रेरित करना चाहिये कि उनकी उपलब्धि उनकी क्षमतानुसार हो।
- पिछडे बालकों के साथ सहानुभूति व सर्तकता के साथ व्यवहार करना चाहिये ।
- बालापराध बालकों द्वारा अज्ञानतावश नियमों को तोड़ना होता है ।
- बालापराधी बालक बैचेन अस्थिर व अवसादग्रस्त होते है ।
- बालापराध में सुधार की सम्भावना होती है ।
- बालापराध के लिये घरेलू परिस्थितियाँ, विद्यालय का प्रतिकूल वातावरण, कुसंगत समाज का दूषित वातावरण व संवेगात्मक स्थितियाँ जिम्मेदार होती है ।
- घर व विद्यालय के वातावरण को अच्छा बनाकर काफी हद तक बालापराध को कम किया जा सकता है ।

15.9 शब्दावली

विचारोत्तेजक	समूह में मस्तिष्क में विचारों का आना, समस्या का समाधान प्रस्तुत करना ।
श्रवणयंत्र	सुनने की शक्ति को मापने वाला यंत्र ।
ब्रेल	अंधे बालकों को पढ़ाने हेतु लिपि ।
डेसीबल	इकाई जिसे सुनने की शक्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता है ।
सृजनात्मकता	चिन्तन प्रक्रिया जो समाज व स्वयं के लिये उपयोगी हो ।

15.10 मूल्यांकन प्रश्न

1. विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण कीजिये । सामान्य बालकों से वे किस प्रकार भिन्न है ।
2. श्रवण दोषयुक्त बालकों के लिये आप क्या व्यवस्था करेंगे?
3. दृष्टि दोषयुक्त बालकों के लिये आप क्या व्यवस्था करेंगे?
4. पिछड़ेपन के शारीरिक व मनोवैज्ञानिक कारण क्या है?
5. आप विशिष्ट बालकों की पहचान कैसे करेंगें?

6. बहरे बालकों के प्रति हमारे क्या उत्तरदायित्व है?
7. अंधे बालकों के प्रति हमारे क्या-क्या उत्तरदायित्व है?
8. प्रतिभाशाली बालकों की विशेषताएँ लिखिये ।
9. पिछडे बालक से आप क्या समझते है?
10. प्रतिभाशाली बच्चे देश की प्रगति में सहायक होते है? समझाइये ।
11. अपराधी बालक कौन है? उसकी आदेत्य एवं चरित्र के सुधार हेतु आप क्या करेंगे?

15.11 संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा आर.ए. (2000) अधिगम एवं विकास के मनोवैज्ञानिक आधार, आर.एल.बुक डिपों, मेरठ
2. N.S. Bais (2007) Psycho-Social Basis of Learning and Teaching.
3. Chauhan S.S. (2001) Advance Educational Psychology, Vikas Publishing House (P) Ltd.
4. Pandey K.P. (1988) Advance Educational Psychology, Konark Publishers (P) Ltd, New Delhi

इकाई 16

बालकों का निर्देशन एवं परामर्श

(Guidance and counseling for Children)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 निर्देशन

16.2.1 निर्देशन का अर्थ एवं परिभाषाऐं

16.2.2 निर्देशन की प्रकृति

16.2.3 निर्देशन का क्षेत्र

16.2.4 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व

16.2.5 निर्देशन के प्रकार

16.3 परामर्श

16.3.1 परामर्श का अर्थ एवं परिभाषाऐं

16.3.2 परामर्श की प्रकृति

16.3.3 परामर्श के क्षेत्र

16.3.4 परामर्श की आवश्यकता

16.4 बालकों का निर्देशन एवं परामर्श

16.4.1 बाल-निर्देशन का अर्थ

16.4.2 बाल निर्देशन की आवश्यकता

16.4.3 भारत में बाल निर्देशन की समस्याऐं

16.4.4 भारत में बाल-निर्देशन का भविष्य

16.4.5 शिक्षा के विभिन्न अवस्थाओं में निर्देशन

16.5 विशिष्ट बालकों का निर्देशन एवं परामर्श

16.5.1 विशिष्ट बालकों का अर्थ

16.5.2 शारीरिक रूप से विकलांग बालक

16.5.3 शारीरिक दुर्बलताओं से ग्रसित बालक

16.5.4 मानसिक रूप से असामान्य बालक

16.5.5 प्रतिभा सम्पन्न बालक

16.5.6 मन्द बुद्धि बालक

16.5.7 समस्यात्मक बालक

16.5.8 बाल अपराधी
16.5.9 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समूह
16.6 निर्देशन एवं परामर्श की नवीन प्रवृतियाँ
16.7 निर्देशन एवं परामर्श केन्द्र
16.7.1 निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों की आवश्यकता
16.7.2 निर्देशन व परामर्श केन्द्रों के उद्देश्य
16.7.3 निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों के कार्य
16.8 राजस्थान में निर्देशन एवं परामर्श सेवाऐं
16.9 निष्कर्ष
16.10 मूल्यांकन प्रश्न
16.11 संदर्भ ग्रंथ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई की सम्प्राप्ति पर -

- निर्देशन के संप्रत्यय को समझ सकेगें ।
- निर्देशन की आवश्यकता व महत्व को समझेंगे ।
- निर्देशन की प्रकृति को समझ सकेगें ।
- निर्देशन किन क्षेत्रों में आवश्यक है, जान सकेगें ।
- परामर्श का अर्थ समझ सकेगें ।
- परामर्श की प्रकृति की जानकारी मिल सकेगी ।
- परामर्श की आवश्यकता को समझेंगे ।
- बाल-निर्देशन का अर्थ समझ सकेगें ।
- बाल- निर्देशन की आवश्यकता को जान सकेगें ।
- बालकों की विभिन्न आवश्यकताओं में निर्देशन के लक्ष्यों को जानकारी मिल सकेगी ।
- बाल निर्देशन की समस्याओं को समझ सकेगें ।
- विशिष्ट बालकों में निर्देशन एवं परामर्श कैसे दिया जाता है, समझ सकेगें ।
- निर्देशन एवं परामर्श की नवीन प्रवृतियाँ को स्पष्ट समझ सकेंगे ।
- निर्देशन व परामर्श केन्द्रों की आवश्यकताओं को जान सकेंगे ।

16.1 प्रस्तावना

निर्देशन उतना ही पुराना है जितना मानव का इतिहास । पुरातन काल में निर्देशन असंगठित तथा अनौपचारिक रूप से जीवन के सभी स्तरों पर होता आया है । प्राचीन काल में गुरू शिष्य परम्परा के रूप में, परिवार में घर के बुजुर्गों, समाज के मुखियाओं, धर्म गुरुओं द्वारा समय-समय पर विभिन्न तरीकों से व्यक्तियों को निर्देशन मिलता रहा है । समाज में गुण और कर्मों पर आधारित व्याप्त वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य व्यावसायिक निर्देशन ही था ।

किसी प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति द्वारा संगठित व्यक्तिगत सहायता के रूप में निर्देशन का उद्भव बीसवीं शताब्दी में फ्रेक पारसन्स के द्वारा बोस्टन, अमेरिका में हुआ । पारसन्स ने बोस्टन में वोकेशनल ब्यूरो की स्थापना की एवं व्यावसायिक निर्देशन पर लेखन कार्य किया । उनका विचार था कि व्यवसाय के बुद्धिमतापूर्ण चुनाव के लिये व्यक्ति को अपनी क्षमताओं एवं सीमाओं का यर्थाथ ज्ञान होना चाहिए एवं विभिन्न प्रकार के कार्यों में सफलता के लिये आवश्यक बातों एवं कार्यो की परिस्थितियों की जानकारी चाहिए ।

16.2 निर्देशन

निर्देशन का जीवन में स्वतंत्र कोई महत्व नहीं है । यह मात्र एक प्रक्रम है जो सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति का वांछित विकास करता है । यह एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है । इसमें व्यक्ति को एक प्रकार की सहायता पहुंचाई जाती है जिससे उसकी समझ बढ़े तथा क्षमताओं, रूचियों और अन्य योग्यताओं का अधिकतम उपयोग उसके विकास में हो सके और समय के अनुसार अपने वातावरण में आने वाली विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन कर बुद्धिमतापूर्ण निर्णय ले सके ।

16.2.1 निर्देशन का अर्थ एवं परिभाषाऐं

निर्देशन को विभिन्न समाज वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न रूप में परिभाषित किया है । निर्देशन के अर्थ एवं प्रकृति को स्पष्ट करने के पूर्व विभिन्न परिभाषाओं का अवलोकन आवश्यक है-

जोन्स के अनुसार- "निर्देशन इंगित करना, सूचित करना तथा पथ प्रदर्शन करना है ।"

यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ ऐजुकेशन के अनुसार- "निर्देशन किसी व्यक्ति की प्राकृतिक शक्तियों की खोज करने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की विभिन्न विधियों से अवगत कराने वाली प्रक्रिया है ताकि व्यक्ति अपने जीवन को अपने और समाज के अधिकतम हित के लिये बना सके ।"

नैप के अनुसार- "किसी विद्यार्थी के बारे में सीखना या जानना, उसे समझने में सहायता देना, उसमें तथा उसके वातावरण में परिवर्तन लाना जो उसकी वृद्धि और विकास में सहायक हो, निर्देशन है ।"

जे.एम. ब्रिवर के अनुसार- "निर्देशन एक ऐसा प्रक्रम है जो व्यक्ति में अपनी समस्याओं के प्रति स्वयं निर्देशन की क्षमता का विकास करता है ।"

उपयुक्त सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि निर्देशन एक संगठित सेवा है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को स्वयं एवं अपने वातावरण को समझने में सहायता करता है, जिससे व्यक्ति अपनी समस्याओं का स्वयं हल कर सके एवं उद्देश्यपूर्वक स्वयं के चहुमुखी विकास व समाज के हित के लिये कार्य कर सके ।

16.2.2 निर्देशन की प्रकृति

निर्देशन की विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण से निम्नलिखित प्रकृति स्पष्ट होती है-

1. निर्देशन निरन्तर चलने वाली और गतिशील प्रक्रिया है ।
2. निर्देशन सभी के लिए सेवा है ।

3. यह अनुदेशक से भिन्न है ।
4. निर्देशन भावी जीवन की तैयारी में सहायक हैं ।
5. आत्म-निर्देशन की योग्यता का विकास करता है ।
6. यह शिक्षा की एक अन्तर्निहित प्रक्रिया है ।
7. निर्देशन मात्र सहायता देना ही नहीं है यद्यपि इससे भी बहुत कुछ अधिक है ।
8. निर्देशन का क्षेत्र बहुत व्यापक है ।
9. निर्देशन व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है ।
10. निर्देशन व्यक्ति को जीवन में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों रूपों में अपना योगदान देता है।

16.2.3 निर्देशन का क्षेत्र

निर्देशन मानव जीवन में मानव के लिये आयोजित होने वाली एक प्रक्रिया है । अत: जहाँ भी मानव शक्ति का कार्य होगा, वहाँ समायोजन भी आवश्यक होगा, समस्या भी होगी, उसका निदान भी आवश्यक होगा । अत: मानव जीवन का कोई क्षेत्र अछुता नही है, जहाँ निर्देशन की आवश्यकता नहीं हो, उसी को ध्यान में रखते हुए निर्देशन के कुछ कार्य क्षेत्रों को सूचीबद्ध किया जा सकता है-

1. प्रबन्धन, 2. शहरी वातावरण, 3. ग्रामीण वातावरण, 4. बालक का विकास, 5. विद्यालयी वातावरण, 6. परिवार, 7. चिकित्सा, 8. अनुसंधान, 9. उपभोक्ता सेवा, 10. चरित्र, 11. खेल, 12. मनोरंजन, 13. उद्योग, 14. व्यवसायों की प्रकृति, 15. व्यवसाय चयन, 16. विषय चयन, 17. विषय अध्ययन अध्यापन, 18. तकनीकी क्षेत्र, 19. राजनीति, 20. प्रकृति और सामाजिक समायोजन, 21. धार्मिक क्षेत्र, 22. आर्थिक क्षेत्र, 23. सामाजिक सहायता, 24. महिलाओं की बदलती स्थिति, 25. संवेगात्मक विकास आदि क्षेत्र है, जहाँ निर्देशन की अति आवश्यकता होती है।

16.2.4 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व

व्यक्ति अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में अधिकतम विकास व संतोषजनक समायोजन के लिए निर्देशन की आवश्यकता अनुभव करता है । आधुनिक जीवन में बदलती हुई पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक व औद्योगिक परिस्थितियों के कारण निर्देशन की आवश्यकता व्यक्ति प्रतिदिन अनुभव करता है । निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित दृष्टिकोणों से देख सकते है-

(क) **व्यक्तिगत दृष्टि से**- इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं को रख सकते है ।

1. संतुलित एवं शारीरिक विकास
2. संवेगात्मक विकास,
3. व्यक्तिगत भिन्नताओं के अनुसार विकास,
4. समस्या समाधान,
5. जीवन समायोजन,

6. मनोगत्यात्मक विकास

(ख) **सामाजिक दृष्टि से**- सामाजिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं में देखा जा सकता है-

1. परिवार की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण,
2. यांत्रिक सभ्यता के विकास के कारण,
3. जनसंख्या वृद्धि
4. अवकाश समय का सदुपयोग
5. मूल्यों में परिवर्तन
6. स्त्रियों की बदलती स्थिति
7. धार्मिक एवं नैतिक परिवर्तन

(ग) **शैक्षिक दृष्टि से**- व्यक्ति के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन और परिमार्जन है । शिक्षा को विद्यार्थी के लिये सुरूचिपूर्ण बनाने में निर्देशन की आवश्यकता होती है । इसे इस प्रकार दर्शाया गया है ।

1. पाठ्यक्रम का चयन
2. शैक्षिक उपलब्धि स्तर बनाये रखने के लिये,
3. अनुशासनहीनता दूर करने में
4. अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने में,
5. व्यवसाय चयन में
6. व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार शिक्षा प्रदान करने में,

(घ) **राष्ट्रीय दृष्टि से**- किसी भी राष्ट्र की निरन्तर प्रगति के लिये, लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाये रखने के लिये निर्देशन आवश्यक हो जाता है । राष्ट्रीय दृष्टि से निर्देशन की आवश्यकता को निम्नलिखित बिंदुओं में देखा जा सकता है-

1. उत्तम नागरिकता,
2. मानवीस स्त्रोतो का समुचित उपयोग,
3. राष्ट्रीय सुरक्षा,
4. राष्ट्रीय सेवा,
5. अन्तर्राष्ट्रीय विकास

(ङ) **अन्य दृष्टि से**- उपरोक्त वर्णित विचारधाराओं के अतिरिक्त अन्य दृष्टिकोणों जैसे नगर एवं शहर, पर्यावरण इत्यादि के आधार पर भी निर्देशन की आवश्यकता को समझा जा सकता है।

1. नगरीकरण की समस्या
2. श्रमिकों की समस्याओं के हल के लिये,
3. स्वास्थ्य के आधार पर
4. पर्यावरण की दृष्टि से

अत: स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त सभी बातों के लिए निर्देशन की अति आवश्यकता है ।

16.2.5 निर्देशन के प्रकार

वर्गीकरण या निर्देशन के प्रकार को जानने से पूर्व समझना आवश्यक है कि निर्देशन एक अन्तर्सम्बद्ध बहु मुखी प्रक्रिया है । उसके विभिन्न क्षेत्र या प्रकार उसके अंग है और उन्हें व्यक्ति की समस्या को हल करने के लिए इसे सम्पूर्ण रूप से समझना होगा । तथापि व्यक्ति की समस्याओं के समुचित आकलन के लिये निर्देशन का वर्गीकरण करना उचित होता है ।

प्रोक्टर का वर्गीकरण-

विलियम मार्टिन प्रोक्टर ने एजूकेशनल एवं वोकेशनल गाइडेन्स की पुस्तक में 1930 में निर्देशन के निम्नलिखित प्रकार बताये है-

1. शैक्षिक निर्देशन,
2. व्यवसायिक निर्देशन
3. सामाजिक एवं नागरिक कार्यो में निर्देशन,
4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्याओं से संबंधित निर्देशन,
5. अवकाश के उतम उपयोग के लिये
6. चरित्र निर्माण से संबंधित कार्यो में निर्देशन,

ब्रिवर का वर्गीकरण निम्न है-

1. शैक्षिक निर्देशन,
2. व्यावसायिक निर्देशन,
3. धार्मिक निर्देशन,
4. घरेलू समस्याओं के लिये निर्देशन,
5. नागरिकता के लिये निर्देशन,
6. अवकाश एवं मनोरंजन के लिये निर्देशन,
7. व्यक्तिगत उन्नति संबंधी निर्देशन,
8. उचित कार्य करने के लिये निर्देशन,
9. सहयोग एवं विचार संबंधी निर्देशन,
10. सांस्कृतिक कार्यो से संबंधित निर्देशन,

पैटरसन द्वारा किया गया वर्गीकरण-

पैटरसन ने निर्देशन के पाँच प्रकार बताये है-

1. शैक्षिक निर्देशन,
2. व्यवसायिक निर्देशन
3. व्यक्तिगत निर्देशन,
4. स्वास्थ्य संबंधी निर्देशन
5. आर्थिक निर्देशन,

कूफ एवं कीफोवर द्वारा किया गया वर्गीकरण- इन्होंने निर्देशन के पांच प्रकार बताये है-

1. शैक्षिक निर्देशन,
2. व्यवसायिक निर्देशन
3. मनोरंजन सम्बन्धी निर्देशन
4. स्वास्थ्य संबंधी निर्देशन
5. नागरिक, सामाजिक एवं नैतिक निर्देशन ।

निर्देशन के सभी वर्गीकरणों से स्पष्ट है कि निर्देशन के मुख्य प्रकार शैक्षिक, व्यावसायिक एवं व्यक्तिगत है । व्यक्तिगत निर्देशन के अंतर्गत समस्त पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, संवेगात्मक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को रखा जा सकता है । अत: आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने निर्देशन के निम्नलिखित तीन प्रमुख प्रकार बतायें है-

(अ) शैक्षिक निर्देशन

(ब) व्यावसायिक निर्देशन

(स) व्यक्तिगत निर्देशन ।

(अ) शैक्षिक निर्देशन

शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी को विद्यालय/महाविद्यालय के वातावरण में समायोजित होने, पाठ्यक्रमों के चयन व उनकी भावी संभावनाओं को जानने में सहायता करने की प्रक्रिया है । इसके अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित है, जो विद्यार्थी की शैक्षिक प्रगति में सहायक हो एवं शिक्षा के लिये अनुकूल परिस्थिति पैदा करती है । मूलत: शिक्षा किसी भी व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन व परिमार्जन है । अत: इस हेतु सारगर्भित व्यक्तित्व निर्माण में शैक्षिक निर्देशन आवश्यक है ।

(ब) व्यावसायिक निर्देशन

व्यावसायिक निर्देशन के अन्तर्गत व्यक्ति की क्षमताओं, योग्यताओं, रूचियों इत्यादि का मूल्यांकन किया जाता है तथा व्यक्ति को उस मूल्यांकन के आधार पर व्यावसायिक योजना तैयार करने, व्यवसाय में प्रवेश करने, व्यवसाय में समायोजित होने एवं निरन्तर प्रगति करने के लिये सहायता प्रदान की जाती है । व्यावसायिक निर्देशन अन्य शब्दों में व्यक्ति को उसके अनुरूप प्रगति करने की प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति अपनी शक्तियों का प्रभावशाली तरीके से उपयोग कर समाज को अपना उचित योगदान दे सके । व्यवसाय अथवा नौकरी जीवन की महती आवश्यकता है । इसी से धनोपार्जन होता है । अगर यह न हो तो व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास प्रभावित हो जाता है ।

(स) व्यक्तिगत निर्देशन

इसके अन्तर्गत पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, संवेगात्मक, अवकाश एवं मनोरंजन, स्वास्थ्य संबंधी, चरित्र सम्बन्धी व उन समस्त समस्याओं को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें शैक्षिक और व्यावसायिक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है । व्यक्ति समाज में रहता है । शैक्षिक और व्यावसायिक क्षेत्र में समुचित समायोजन के बावजूद भी उसका विभिन्न कारणों से पारिवारिक व सामाजिक असंतोष हो सकता है । व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से व्यक्ति की

उन समस्याओं की पहचान व्यक्ति के संदर्भ में कर, उसे उन समस्याओं का हल खोजने में सहायता की जाती है । व्यक्ति किसी भी मानव संस्कृति की वह अहम इकाई है जिससे पारिवारिक, समाज और राष्ट्र का विकास होता है । व्यक्तिगत निर्देशन आज के भूमण्डलीकरण प्रतिरूपर्धात्मक युग की महती आवश्यकता है । जहाँ चिन्ता, अवसाद, हताशा और क्रोध सब और व्याप्त है । ऐसे में तिनके का सहारा भी व्यक्ति को दिशा बोध देने में आमूलचूल परिवर्तन कर देता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. निर्देशन से आप क्या समझते है?
2. निर्देशन के प्रमुख क्षेत्र कौन-कौन से है?
3. निर्देशन के प्रमुख प्रकार कौन-कौन से है?

16.3 परामर्श

परामर्श व्यक्तिगत एवं वैयक्तिक रूप में शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत रूप से तत्सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में सहायता करता है । इसमें सभी बातों का अध्ययन, विश्लेषण, समस्याओं का समाधान, विशेषज्ञों, विद्यालयों, सामुदायिक साधनों और साक्षात्कारों की सहायता से खोजा जाता है एवं परामर्श प्राप्त करने वाले को आत्मनिर्णय की क्षमता से अवगत कराया जाता है ।

16.3.1 परामर्श का अर्थ एवं परिभाषाऐं

परामर्श एक प्राचीन शब्द है और इसे परिभाषित करने के प्रयास प्रारम्भ में ही किये गये-

वेबसट्र शब्दकोश के अनुसार- "परामर्श का शाब्दिक अर्थ है- पूछताछ, पारस्परिक तर्क-वितर्क या विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान । परामर्श का शाब्दिक अर्थ संपूर्ण ज्ञान होता है ।

स्मिथ के अनुसार- परामर्श एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें परामर्शदाता प्रार्थी को किसी चयन से संबंधित तथ्यों का विश्लेषण करने, योजना बनाने या समायोजन करने में सहायता करता है ।

स्ट्रेंग के अनुसार- "परामर्श प्रक्रिया एक संयुक्त प्रयास है, विद्यार्थी का उतर दायित्व स्वयं को समझाने की चेष्टा करना तथा उस मार्ग का पता लगाना है, जिस पर उसे जाना है तथा जैसे ही समस्या उत्पन्न हो, उसके समाधान के लिए आत्म विश्वास का विकास होता है । परामर्शदाता का उत्तरदायित्व इस प्रक्रिया में जब कभी छात्र को आवश्यकता हो, सहायता प्रदान करता है ।"

16.3.2 परामर्श की प्रकृति

परामर्श की विभिन्न परिभाषाओं का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो हम परामर्श की प्रगति के अन्तर्गत निम्नलिखित बिंदुओं का उल्लेख कर सकते है-

1. परामर्श अधिगम केन्द्रित प्रक्रिया है ।

2. परामर्श, किसी के साथ समस्या के बारे मे बात करना है ।
3. परामर्श समस्त निर्देशन कार्यक्रम का सक्रिय भाग है ।
4. परामर्श व्यक्ति को चयन करने और उस पर अमल करने में सहायता करता है ।
5. परामर्श की प्रक्रिया में बहस द्वारा समस्या को स्पष्ट किया जाता है ।
6. उत्तम परामर्श, प्रार्थी द्वारा लिये निर्णय के रूप में होता है ।
7. परामर्श, पूर्ण रूप से स्वयं - निर्देशन पर आधारित है ।
8. परामर्श एक व्यावसायिक सेवा है ।
9. परामर्श व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होती है ।
10. परामर्श व्यक्ति के साथ और आमने सामने का सम्बन्ध है । यह सम्बन्ध परामर्शदाता और प्रार्थी के बीच होता है ।

16.3.3 परामर्श के क्षेत्र

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य कहीं न कहीं विभिन्न प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है, उन समस्याओं की प्रकृति अलग-अलग है । अत: हम उनकी प्रकृति के अनुरूप परामर्श को उस क्षेत्र विशेष का परामर्श कह सकते है-

1. नियोजन सम्बन्धित परामर्श
2. व्यक्तिगत परामर्श,
3. वैवाहिक परामर्श,
4. शैक्षिक परामर्श,
5. व्यावसायिक परामर्श
6. नैदानिक परामर्श,
7. मनोचिकित्सात्मक परामर्श

16.3.4 परामर्श की आवश्यकता

शिक्षा की दृष्टि से देखे तो विद्यार्थी के सामने कई ऐसी परिस्थितियाँ आती है । जब उसे तनाव होता है और परामर्श का अनुभव करता है । ऐसी निम्नलिखित परिस्थितियाँ हो सकती है-

1. जब विद्यार्थी न केवल विश्वसनीय सूचनाऐं ही चाहे, बल्कि वह उन सूचनाओं की रूचिकर व्यवस्था भी चाहता है, जिससे उसकी व्यक्तिगत कठिनाइयों का हल निकल सके ।
2. जब विद्यार्थी को बुद्धिमान सुनने वाले या श्रोता की आवश्यकता होती है, जिसका अनुभव उससे अधिक हो, जिसको वह अपनी कठिनाइयों का बयान कर सके और जिससे वह अपनी कार्य योजना के बारे में कुछ सुझाव प्राप्त कर सके ।
3. जब परामर्शदाता की जो पहुँच उन सुविधाओं तक हो, जो विद्यार्थी की समस्याओं को सुलझाने में सहायक होती है, लेकिन विद्यार्थी की पहुँच वहां तक न हो ।

4. जब विद्यार्थी को कोई समस्या हो लेकिन वह इस समस्या से अनभिज्ञ हो और उसके उत्तम विकास के लिये उस समस्या के प्रति उसे सचेत करना हो ।
5. जब विद्यार्थी समस्या की उपस्थिति और उसकी प्रकृति से परिचित होता है, परन्तु अस्थाई तनाव और विकर्षण के कारण वह समस्या का सामना करने के अयोग्य होता है ।

16.4 बालकों का निर्देशन एवं परामर्श

बालक को जन्म से लेकर प्रौढ़ावस्था तक अनेक कठिनाईयाँ आती है, जिसमें से अधिकांश को वह स्वयं सुलझाता है । कुछ को सुलझाने में उसे दूसरे व्यक्तियों की सहायता चाहिए, बालकों को यदि यह सहायता मिल जाती है, तो उनकी समस्याओं का समाधान हो जाता है तथा उनका जीवन सफल ओर सुखमय हो जाता है । बालकों को प्राप्त होने वाली यह सहायता निर्देशन कही जा सकती है । बालकों का जीवन लचीला होता है । बालकों को पर्याप्त साधनों और निर्देशन के द्वारा खुशबूदार सुन्दर फूल के समान बनाया जा सकता है । उन्हें निर्देशन के द्वारा वयस्क व्यक्तियों की अपेक्षा शीघ्र उपयुक्त दिशा प्रदान की जा सकती है । निर्देशन को आदेश नहीं समझना चाहिए, अपितु निर्देशन को सहायता प्रदान करने वाली प्रक्रिया समझनी चाहिए । निर्देशन के द्वारा बालकों के शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास को प्रगतिपूर्ण बनाया जा सकता है । निर्देशन के द्वारा बालक को विभिन्न आदर्श व्यवहार प्रतिमानों को भी सीखने में सहायता मिलती है ।

16.4.1 बाल-निर्देशन का अर्थ

ए.जे.जोन्स के अनुसार- "निर्देशन वह व्यक्तिगत सहायता है, जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को इसलिए देता है कि वह अपने जीवन के लक्ष्य निश्चित कर सके, समायोजन स्थापित कर सके और अपने लक्ष्य से संबंधित समस्याओं को सुलझा सके ।"

सी.ई. स्किनर के अनुसार- "निर्देशन नवयुवकों को सहायता देने की सह-प्रक्रिया है, जिसके द्वारा वह स्वयं के साथ, दूसरों के साथ और परिस्थितियों के साथ सहायता करना सीखते है ।"

एच.जे. आइजनेक और उनके साथियों के अनुसार "बाल-निर्देशन वह विधि है, जिसका सम्बन्ध बालकों की व्यवहार सम्बन्धी, निष्पादन सम्बन्धी और मनोदैहिक कठिनाईयों के निदान और उपचार से है, इस विधि में अभिभावक परामर्श भी सम्मिलित है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "बाल निर्देशन व्यक्तिगत सहायता की वह विधि है, जिसके द्वारा बालकों की व्यवहार सम्बन्धी, अधिगम सम्बंधी, मनौदैहिक कठिनाइयों का निदान और उपचार किया जाता है । बाल निर्देशन से बालक को जीवन लक्ष्य निश्चित करने, समायोजन स्थापित करने एवं लक्ष्यों से सम्बन्धित समस्याओं को सुलझाने में सहायता मिलती है जिससे उसका व्यक्तिगत जीवन सुखी हो जाता है।"

16.4.2 बाल निर्देशन की आवश्यकता

आधुनिक युग में बाल-निर्देशन की आवश्यकता बढ़ गई है । इसका मुख्य कारण है कि परिवार से बालक को जो संरक्षण, सुरक्षा, स्नेह और निर्देशन प्राप्त होता था । अब वह धीरे-धीरे कम हो रहा है । इस कमी का कारण परिवार का विघटन और परिवार के सदस्यों का व्यस्त रहना है । बाल- निर्देशन की आवश्यकता इसलिए भी बढ़ गई है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण समाज का ढांचा बदल रहा है । जीवन की गति अपेक्षाकृत अधिक तीव्र हो गई है । बड़े-बड़े संयुक्त परिवार टूटकर अब छोटे हो गये है और अभी तक इन छोटे परिवारों को टूटने का क्रम जारी है । जिसमें लोग नौकरी करते है तथा अपने बच्चों को उचित समय नही दे पाते हे। अत: बाल-निर्देशन की इन परिवारों के बच्चों के लिए बहुत आवश्यकता है ।

शिक्षा के क्षेत्र में वातावरण और परिस्थितियाँ आदि सब कुछ बदल गया है, परन्तु अपने देश में शिक्षा का रूप ही सैकड़ों साल-पुराना है । शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन के संदर्भ में अनेक प्रयोग किए जा रहे है । पाठ्यक्रमों के स्तर को बढाया जा रहा है । अत: इस दिशा में भी निर्देशन की आवश्यकता है ।

बालकों की पारिवारिक समस्याओं, व्यक्तिगत समस्याओं, शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं, व्यवसाय और समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं में बाल-निर्देशन की आवश्यकता है । बाल-निर्देशन को शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए । गत्यात्मक विकास, भाषा विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, चारित्रिक विकास और रूचियों आदि के विकास में बाल निर्देशन का महत्वपूर्ण योगदान है ।

16.4.3 भारत में बाल निर्देशन की समस्याऐं

भारत में निर्देशन की निम्न सुविधाएँ शैशवास्था में ही है । बाल-निर्देशन के विकास के मन्द गति से चलने में निम्न कारण है -

1. अशिक्षित माता पिता के लिए निर्देशन के महत्व को नही जानते है । देश में अशिक्षा के साथ रूढिवादिता भी है, जिसके कारण माता-पिता अपने बच्चों के लिये कोई काम नहीं करना चाहते है।
2. भारतवर्ष की अधिकांश जनता अपने परिवार के लिए मुश्किल से भोजन के सामान्य साधन जुटा पाती है । देश के अधिकांश लोगों को आज भी प्रामाणिक भोजन उपलब्ध नहीं है । यहाँ गरीबी-भूखमरी है । इस प्रकार के लोगों की दृष्टि से किसी प्रकार का निर्देशन उपयोगी नहीं है ।
3. देश की बढती जनसंख्या ने बेकारी की समस्या को और अधिक गंभीर बना दिया है । यह एक कटु सत्य है कि जिस देश में रोजगार नहीं होते है वहाँ निर्देशन प्राय: मृत सा ही रहता है ।
4. देश में विद्यालयों की दयनीय स्थिति है । देश के 40 प्रतिशत स्कूल और कलेजों में मुश्किल से न्यूनतम सुविधाऐं उपलब्ध है, कहीं तो यह सुविधाएँ केवल कागज पर ही है, ऐसी अवस्था में विद्यालयों से निर्देशन सम्बन्धी जो सुविधाऐं मिलनी चाहिए, वह इन स्कूलों की दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण संभव नहीं है ।

5. विद्यालयों में निर्देशन से सम्बन्धित पाठ्यक्रम का अभाव है ।
6. शिक्षकों को अधिक कार्यभार भी निर्देशन में समस्या पैदा करता है ।
7. निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान का अभाव पाया जाता है ।
8. सूचनाओं के संकलन करने के व्यवस्थित संगठन का अभाव पाया जाता है ।

16.4.4 भारत में बाल-निर्देशन का भविष्य

भारत एक विकासशील परन्तु गरीब देश है । जहाँ पाश्चात्य देशों को देखते हुए बाल-निर्देशन की सदैव से आवश्यकता है । पाश्चात्य देशों में इस दिशा में हुए अध्ययनों ने इस आवश्यकता को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है । अपने देश में शैक्षिक निर्देशन की सेवाओं का विस्तार किया जाना चाहिए । कम से कम प्रत्येक विद्यालय और महाविद्यालय में छात्रों की संख्या के अनुसार मनौवैज्ञानिक की नियुक्ति करनी चाहिए । आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक विद्यालय में बाल निर्देशन केन्द्र खोले जाये । इन केन्द्रों पर मिलकर कार्य किया जाना चाहिए जिसमें एक मनोवैज्ञानिक, दूसरा मनोचिकित्सक और तीसरा सामाजिक कार्यकर्ता हो। इनका कार्य बालकों को समायोजन के विभिन्न क्षेत्रों में आने वाली कठिनाइयों, व्यक्तिगत कठिनाइयों आदि का समाधान करना चाहिए तथा शैक्षिक निर्देशन की सेवाऐं उपलब्ध करानी चाहिए ।

प्रत्येक बड़े कस्बों और शहरों में जनसंख्या के अनुसार भी बाल निर्देशन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए । जब तक केन्द्रों की एक बड़े स्तर पर स्थापना नहीं होगी तब तक बालकों के उपयुक्त मानसिक स्वास्थ्य के विकसित होने की सम्भावना की अपनी चरमसीमा को नहीं पहुंच पायेगी ।

16.4.5 शिक्षा के विभिन्न अवस्थाओं में निर्देशन

निर्देशन जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है । बालक जन्म लेते ही माता-पिता के संरक्षण में आता है । घर में सदस्यों के साथ व्यवहार करने, घर के बाहर विद्यालय तथा समुदाय में सम्पर्क बनाते समय, विद्यालय में एक स्तर से दूसरे स्तर तक जाने में, व्यवसाय के चुनाव, जीवन साथी के चुनाव, जीवन-संघर्ष तथा दुविधाओं में रास्ता बनाने के लिए, अपनी शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक समस्याओं को सुलझाने के लिए उसे जीवन में प्रत्येक स्तर पर निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है ।

(क) प्राथमिक विद्यालय में निर्देशन-

बच्चों के विकास की प्रक्रियाएं घर पर प्रारम्भ होती है तथा विद्यालय द्वारा उन्हें आगे बढ़ाया जाता है । बालक जब विद्यालय में प्रवेश करता है, तो उसका निजी स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है । इस अवस्था में अधिकांश बालक कक्षा में अध्यापक के साथ मिलकर अप्रत्यक्ष रूप से निर्देशन प्राप्त करता है । जब बालक घर से विद्यालय आता है तो उसे समूह में मिलकर कार्य करना सिखाते है, वातावरण के साथ ताल-मेल करना तथा अपने साथियों एवं अध्यापकों से सहयोग करना सिखेगा । कुछ समस्या बालकों के समायोजन के लिए विशेष मनोवैज्ञानिकों तथा विषय-विशेषज्ञों की सहायता ली जा सकती है ।

(ख) माध्यमिक स्तर पर निर्देशन-

माध्यमिक विद्यालय प्रारम्भिक तथा उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालयों के मध्य सम्पर्क का कार्य करते है । क्रो तथा क्रो के अनुसार माध्यमिक विद्यालय में निम्नलिखित कार्य किये जाने चाहिए-

1. विद्यार्थियों के अनुरूप शैक्षणिक वातावरण का निर्माण किया जाना जरूरी है । जिससे उन्हें उच्च शिक्षा में अपनी योग्यता के अनुसार विषय का चुनाव करने में सहायता दी जा सके ।
2. विद्यार्थियों के रूचियों और योग्यताओं को देखते हुए उन्हें सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य बनाना है ।
3. व्यावसायिक और शैक्षिक निर्देशन के लिए अवसर प्रदान कराना ।
4. यह ध्यान रखना कि विद्यार्थी प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् विद्यालय न छोड़ दे ।
5. शैक्षिक और व्यावसायिक खोज के लिए सुविधाऐं उपलब्ध करवाना ।

विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं प्रविधियों को ध्यान में रखते हुए इन विद्यालयों में छात्रों को निम्न प्रकार निर्देशन दिया जाएगा-

1. छात्रों के सामने अनेक पाठ्येत्तर क्रियाओं के माध्यम से अनेक ऐसे अवसर सामने लाए जाते है जिसमें वे बिना किसी सहायता के अपने व्यवहार को अभिव्यक्त कर सके । बालक का व्यवहार किसी भी क्षण अनियमित हो सकता है ऐसे में उसे अपनी अपरिमित शक्तियों का उपयोग नियंत्रित ढंग से कर अनुशासन सिखाया जाता है ।
2. प्रारम्भ में विद्यार्थी को कोई अनुभव नहीं होता इसलिए वह विद्यालय में समायोजन नहीं कर पाता ।

   जिसके लिए शाला प्रमुख व अध्यापकों के द्वारा विद्यार्थी में आत्मविश्वास जागृत करना चाहिए तथा उसका अन्य वरिष्ठ छात्रों से परिचय करवाना चाहिए । अपने विद्यालय में प्रवेश के नियमों, परम्पराओं तथा विशिष्टताओं के समन्वय में विस्तृत जानकारी देनी चाहिए जिससे वह विद्यालय में समायोजन कर सके ।
3. इस स्तर पर विद्यार्थी को अपने व्यवसाय का चुनाव तथा कक्षा के विषयों में सामंजस्य स्थापित करना होता है इसलिए उसे उसकी योग्यताओं, क्षमताओं, अभिरूचियों और अभिवृतियों का पारस्परिक सम्बन्ध होना चाहिए ।

(ग) उच्च शिक्षा के स्तर पर निर्देशन-

विद्यार्थी जो उच्च शिक्षा में प्रवेश चाहते है उन्हें निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता होती है । इस स्तर पर वे इतने सक्षम होते है कि अपनी शैक्षिक समस्याओं का समाधान कर सकते है फिर भी उच्च अध्ययन में अध्ययन के क्षेत्रों, अवसरों, उपलब्ध पुस्तकों और विषय आदि बातों का ज्ञान प्रदान करने में कैरियर मास्टर सहायक होता है ।

16.5 विशिष्ट बालकों का निर्देशन एवं परामर्श

प्रतिभाशाली बालक जो उच्च बुद्धि के कारण विशेष ध्यान चाहते है इसलिए वे सामान्य बालकों से इतने भिन्न हो जाते है कि उनको विशेष प्रकार के परीक्षण, शिक्षा और समायोजन की आवश्यकता होती है । ऐसे बालकों को घर, स्कूल में उचित ध्यान रखा जाए तो ये बालक

प्रतिभाशाली सिद्ध होते है । यदि उन्हें सही निर्देशन और परामर्श नहीं दिया जाता तो उनकी प्रतिभा उन्हें अवांछित व्यवहार की ओर ले जा सकती है ।

16.5.1 विशिष्ट बालकों का अर्थ

व्यक्तिगत विभिन्नताओं के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक बालक की दक्षताएँ, क्षमताएँ मानसिक व शारीरिक स्तर आदि पृथक-पृथक होती है । कोई तीव्र बुद्धि होता है तो कोई मन्द बुद्धि, कोई लम्बा होता है तो कोई बौना और कोई अर्न्तमुखी होता है तो कोई बर्हिमुखी । व्यक्तिगत विभिन्नताओं के कारण कुछ बालक सामान्य व्यवहार नहीं कर पाते है । ये सामान्य तथा औसत बालकों से पृथक सहज ही पहिचाने जा सकते है । ये बालक ही विशिष्ट बालक कहलाते है, जिनके लिए विशिष्ट शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है ।

जे.टी. हण्ट के अनुसार- "विशिष्ट बालक, वे है जो शारीरिक संवेगात्मक या सामाजिक विशेषताओं में सामान्य बालकों से इतने पृथक है कि उनकी क्षमताओं के अधिकतम विकासार्थ विशिष्ट शिक्षा सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है ।"

16.5.2 शारीरिक रूप से विकलांग बालक

निर्देशन प्रदान करने के दृष्टिकोण से निम्नांकित शारीरिक विकलांग बालकों का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है-

(क) दृष्टि-दोष से ग्रसित बालक,

(ख) श्रवण दोष से ग्रसित बालक,

(ग) वाणी दोष से ग्रसित बालक,

(घ) ग्रामक दोष से ग्रसित बालक,

(क) दृष्टि दोष से ग्रसित बालक

दृष्टि दोष कई प्रकार का हो सकता है जैसे-कम दिखाई देना, निकट की वस्तु स्पष्ट दिखाई न दें, दूर की वस्तुऐं स्पष्ट दिखाई न देना, अन्धापन, तीव्र प्रकाश में धुँधला दिखाई देना, थोड़े से अन्धकार में ही बिल्कुल दिखाई न देना तथा सभी वस्तुऐं एक ही रंग की दिखाई देना ।

दृष्टिगत दोषों से ग्रसित बालकों को निर्देशन सेवाओं से लाभान्वित करने की दृष्टि से निर्देशन कार्यकर्ता को सर्वप्रथम दृष्टिगत दोषों से ग्रसित बालकों पता लगाना पड़ेगा, तदोपरान्त उनका निर्देशन करना पड़ेगा । निर्देशक निम्नांकित लक्षणों से दृष्टिगत दोषों का पता लगा सकता है-

1. बालक आंखें बार-बार रगड़ता हो, पलकों के बाल नोचता हो, भौंहें मलता हो ।
2. आंखें लाल या गंदी रहती हो ।
3. आंखें कीचड या पानी देती हो ।
4. छोटी वस्तुऐं बड़े ध्यान से देखता हो ।
5. पुस्तक को आखों के निकट लाकर पड़ता हो ।
6. एक वस्तु के दो प्रतिबिम्ब दिखाई देते हो ।

7. साधारण प्रकाश से चकाचौंध हो जाता हो ।
8. रंगों की पहचान पर ही सिरदर्द हो जाता है ।
9. थोड़ा पढ़ने पर ही सिरदर्द हो जाता है ।
10. धुंधला दिखाई देना, जल्दी-जल्दी पलक झपकाना, चेहरों को बार-बार हाथों से रगड़ना आदि ।

उपयुक्त लक्षणों के आधार पर निर्देशन कार्यकर्ता को दृष्टिगत दोषों से युक्त बालकों का पता लगाना चाहिए । तदोपरान्त दृष्टिगत दोषों की मात्रा को ज्ञात करने की आवश्यकता पड़ती है । दृष्टिगत दोष या तो साधारण होते है या गम्भीर हो सकते है । इन दोनों ही प्रकार के लिए पृथक-पृथक निर्देशन कार्यक्रमों की व्यवस्था करनी पड़ेगी ।

गम्भीर दृष्टिदोषों से ग्रसित बालकों को निर्देशन प्रदान करने हेतु विद्यालय के सामान्य संचालक में ही नियमित रूप से दृष्टि संरक्षण कक्षाओं की व्यवस्था की जाय । इन कक्षाओं में नेत्र चिकित्सक समय-समय पर आकर दृष्टि दोषों की जाँच करता रहेगा ।

साधारण दृष्टि दोषों से ग्रसित बालकों को साधारण कक्षाओं में ही दृष्टि सुधार हेतु निर्देशन प्रदान किया जा सकता है । नियमित चिकित्सा के साथ ही साथ इनको विद्यालय की साधारण गतिविधियों में भाग लेने के अवसर प्रदान करने चाहिए ।

(ख) श्रवण दोषों से ग्रसित बालक

श्रव्य दोषों से ग्रसित बालकों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है- निपट बहरे तथा ऊँचा सुनने वाले । निपट बहरे वे होते है जो कुछ भी नहीं सुन पाते है । निपट बहरे भी पुन: दो प्रकार के होते है- एक तो वे जो जन्म से ही बहरे होते है तथा दूसरे वे जो बाद में किसी कर्ण रोग अथवा कर्णाधात के कारण श्रवण शक्ति जो बैठते है ।

(ग) वाणी दोष से ग्रसित बालक

बालक के उच्चारण से सम्बन्धित दोष वाणी दोष कहलाते है । उच्चारण सम्बन्धी दोष इतने अधिक होते है कि यह कहना बड़ा कठिन सा प्रतीत होता है कि कौनसा दोष वाणी में हम हकलाना, तुतलाना, फटा तालू विदेशी, स्वराधात, अटपटी वाणी तथा अनियंत्रित वाणी आदि को सम्मिलित करते है । इनमें कुछ दोष इन्द्रीयजनित होते है, कुछ कार्यगत तथा कुछ संवेगात्मक कारणों से होते है ।

वाणी दोषों से ग्रसित बालकों का निर्देशन करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता पड़ती है । जब इन्हें यह ज्ञात हो जाता है कि वे वाणी में असामान्य है तो वे संवेगात्मक आघात के शिकार होते है । सामान्य बालकों से पृथक रहते है और यदि साथी उसकी नकल करते है या व्यंग्य करते है तो वह और भी अधिक एकाकी हो जाता है और वाणी दोष को और भी कम कर देता है । अध्यापक को इन बालकों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की आवश्यकता होती है ।

(घ) गामक दोषों से ग्रसित बालक

गामक दोषों से ग्रसित बालक वे है जिनका कोई शारीरिक अंग किन्हीं कारणों से असामान्य है । शारीरिक अंगों की असामान्यता जन्मजात हो सकती है अथवा किसी रोग या दुर्घटना का परिणाम हो सकती है ।

अध्यापक का कर्तव्य है कि इन बालकों में आत्मग्लानि तथा आत्महीनता ही भावना का विकास न होने दे और उनमें एक स्वस्थ 'स्व' का विकास करे ।

16.5.3 शारीरिक दुर्बलताओं से ग्रसित बालक

कुछ बालक शारीरिक रूप में इतने दुर्बल होते है कि वे सामान्य खेल भी नहीं खेल सकते । इस प्रकार के बच्चों को भी उसी प्रकार निर्देशन देने की आवश्यकता पड़ती है । जिस प्रकार अध्यापक शारीरिक पगुंता वाले छात्रों को देता है ।

बालकों में शारीरिक दुर्बलताऐं अनेक कारणों से आ सकती है । कुपोषण, लम्बी बीमारी, क्षय, हृदय रोग या शारीरिक संरचना आदि के कारण शारीरिक दुर्बलताएँ आ जाती है । अध्यापक ऐसे बालकों को संतुलित व्यक्तित्व के विकास हेतु ऐसे अवसर प्रदान कर सकता है । जिससे बालक पाठ्यक्रम तथा सह-पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओं में अपनी शारीरिक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यथासम्भव भाग ले सके ।

16.5.4 मानसिक रूप से असामान्य बालक

मानसिक रूप से असामान्य बालक वे है जो सामान्य बौद्धिक तथा मानसिक कार्यो से पर्याप्त मात्रा में दूर रहते है । विले ने ऐसे बालक के सम्बन्ध में लिखा है कि ये बालक सीखने की क्षमता में सामान्य बालकों से काफी पृथक होते है । मानसिक रूप से असामान्य बालक मानसिक कार्यो को सामान्य बालकों की तुलना में या तो बहुत ही शीघ्रता तथा कुशलता के साथ कर सकते है । सामान्य बालकों से ज्यादा अच्छी कुशलता से मानसिक कार्य करने वाले बालक प्रतिभावान कहलाते है तथा सामान्य बालकों की अपेक्षा कम काम करने वाले छात्र मन्द बुद्धि बालक कहलाते है ।

16.5.5 प्रतिभा सम्पन्न बालक (Gifted Children)

प्रतिभा सम्पन्न बालक समाज और राष्ट्र की सम्पति होते है । ये भविष्य में समाज एवं राष्ट्र के कल्याणकारी सदस्य के रूप में सामने आते है । अत: अध्यापक तथा निर्देशन कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे इन बालकों की प्रतिभाओं के पूर्ण एवं समुचित विकास हेतु आवश्यक निर्देशन प्रस्तुत करें ।

प्रतिभा सम्पन्न बालकों में सामान्यतया निम्नांकित लक्षण दिखाई देते है-

1. विद्यालय विषयों के मापन हेतु प्रयुक्त निष्पति परीक्षणों में अच्छे अंक प्राप्त करते है।
2. बालकों में तीव्र निरीक्षण शक्ति, अच्छी स्मरण शक्ति, तत्काल उतर क्षमता, ज्ञान की स्पष्टता एवं मौलिकता, विचारों को तार्किक विधि से प्रस्तुत करने की शक्ति तथा विशाल एवं मौलिक शब्दावली पाई जाती है ।
3. प्रतिभा सम्पन्न बालक व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा शारीरिक स्वच्छता का पूरा- पूरा ध्यान रखते है।
4. प्रतिभा-सम्पन्न बालक सामाजिक होते है, उनका सामाजिक विकास संतुलित होता है, सामाजिक कार्यो में प्रसन्नता से सहयोग प्रदान करते है ।
5. वे विद्यालय में नियमित रूप से अध्ययन के लिये उपस्थित रहते है ।

कार्यकर्त्ताओं तथा अध्यापकों को प्रतिभा-सम्पन्न बालकों को निर्देशन प्रदान करने में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता होती है । इनके लिये उन्हें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना पड़ता है ।

1. प्रतिभा सम्पन्न बालकों की समुचित पहचान की जाए तथा उनकी अनेक तथा विविध क्षमताओं की माप की जाए ।
2. उन क्रियाओं को प्रारम्भ किया जाए तो प्रतिभा सम्पन्नों की योग्यताओं, क्षमताओं, तथा रूचियों के अनुकूल हो तथा उनका विकास करने में सहायक हो ।
3. कक्षा-कक्ष के सामान्य स्तर से ऊँचा उठाने हेतु सदैव प्रोत्साहित किया जाए ।
4. नेतृत्व के गुणों के विकास, स्वाध्याय, चारित्रिक दृढता, आत्मनिर्भरता तथा स्वतंत्र चिन्तन शक्ति का निरन्तर विकास किया जाना चाहिए ।
5. उन्हें उच्चस्तरीय शिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की जाए ।

16.5.6 मन्द बुद्धि बालक

बौद्धिक स्तर का ज्ञान करने के लिये सामान्यतया बुद्धि परीक्षण का सहारा लिया जाता है और बुद्धि लब्धि के आधार पर बालकों का श्रेणी विभाजन किया जाता है । जिन बालकों की बुद्धि लब्धि सामान्यतया 75 से कम होती है उन्हें मंद बुद्धि बालक कहा जाता है ।

बालकों को क्षमताऐं तथा अभिरूचियों ही वास्तव में बालकों की शिक्षा का आधार होनी चाहिए । इस सिद्धान्त के आधार पर मन्द बुद्धि बालकों की निम्न मानसिक क्षमताओं को उन्हें शिक्षा प्रदान करते समय सदैव ध्यान में रखना चाहिए । परामर्शदाता को इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उनके लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम की योजना निर्मित करनी चाहिए । इस कार्य हेतु परामर्शदाता को विद्यालय के सभी शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता है । परामर्शदाता को विद्यालय के सभी शिक्षकों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता है । परामर्शदाता को मन्दबुद्धि बालकों के लिए निदानात्मक कक्षाओं की व्यवस्था करना भी अत्यन्त आवश्यक है ।

मन्द बुद्धि बालकों के शिक्षण हेतु छात्र केन्द्रित शिक्षण पद्धतियाँ सदैव उपयोगी तथा अच्छी रहती है । परामर्शदाता को सभी मंद बुद्धि बालकों की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है ।

मंद बुद्धि बालकों को उपयुक्त व्यावसायिक निर्देशन तथा नियुक्ति सेवाऐं सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है । जिसके दो प्रमुख कारण है- प्रथम शिक्षा का अंतिम उद्देश्य शिक्षोपरान्त नौकरी करना है तथा द्वितीय इनके लिये नौकरियों के अवसर अत्यन्त सीमित होते है । अत: रिक्त स्थानों का पता लगाने के लिये इन्हें अन्य व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता होती है । इसके अलावा व्यावसायिक समायोजन के लिए भी इन्हें आवश्यक सहायता तथा निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है ।

16.5.7 समस्यात्मक बालक

यदि बालकों का व्यवहार समाज अथवा सामाजिक संस्थाओं की रीति-रिवाजों, परम्पराओं, मान्यताओं तथा नियमों के उल्लेखनीय रूप में विरूद्ध होता है तो वह समस्यात्मक व्यवहार करता है ।

बालक के समस्यात्मक व्यवहार के कारण निम्न प्रकार से है-

1. असुरक्षा की भावना,
2. पारिवारिक परिस्थितियाँ
3. विद्यालय परिवेश,
4. आर्थिक स्थिति,
5. सामाजिक स्थिति,

समस्यात्मक व्यवहार अनेक प्रकार के होते है और उनके निराकरण हेतु विशिष्ट प्रयास की आवश्यकता होती है । फिर भी कुछ सामान्य बातें है जो परामर्शदाता को सभी क्षेत्रों में ध्यान रखनी चाहिए जैसे-

1. अभिवृत्ति तथा व्यक्तित्व का मापन- परामर्श दाता को बालक की अभिवृति तथा व्यक्तित्व का मापन करना चाहिए । इससे परामर्शदाता को बालक के व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है ।
2. व्यवहार का मूल्यांकन - परामर्शदाता को समस्यात्मक व्यवहार का मूल्यांकन करना चाहिए । मूल्यांकन के अन्तर्गत परामर्शदाता को समस्या के प्रकार, उसकी गम्भीरता तथा कारणों को ज्ञात करना चाहिए ।
3. घर के साथ सम्पर्क करना- परामर्शदाता को बालक के घर तथा परिवार का अध्ययन कर माता-पिता आदि के मानसिक स्वास्थ्य, आर्थिक व सामाजिक स्थिति आदि बातों का ज्ञान करना चाहिए।
4. रोकथाम, निदानात्मक तथा उपचारात्मक सेवाओं की व्यवस्था- छात्र निर्देशन कार्यक्रम के अन्तर्गत समस्यात्मक व्यवहार के रोकथाम की व्यवस्था करनी चाहिए । परामर्शदाता को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे बालक तनाव व चिंता से ग्रसित ही न हो । प्रयासों के उपरान्त भी बालक तनाव पीड़ित हो जाए तो उनका निदान करना चाहिए और उपचारात्मक कार्य करने की आवश्यकता पड़ती है ।
5. शिक्षक वर्ग के साथ विचार विमर्श - परामर्शदाता को बालकों से सम्बन्धित शिक्षकों के साथ बालक के व्यवहार के सम्बन्ध में विचार विमर्श करना चाहिए । इससे परामर्शदाता को बालक के व्यवहार के सम्बन्ध में अनेक तथ्य ज्ञात हो सकते है और संभव है कि उसके निराकरण हेतु उपाय भी प्राप्त हो जाए ।
6. विशेषज्ञों के साथ सम्पर्क- समस्यात्मक व्यवहार को सही ढंग से साधारण शिक्षक अथवा परामर्शदाता सही रूप से समझ ले, यह आवश्यक नहीं, अत: परामर्शदाता को क्षेत्र से सम्बन्धित विशेषज्ञों के साथ सम्पर्क स्थापित कर बालकों के व्यवहार को समझने की चेष्टा करना आवश्यक है ।
7. अनुसंधान कार्य- सुविधा होने पर परामर्श दाता क्षेत्र से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य भी कर सकता है । शिक्षक वर्ग के अध्ययन परामर्श तथा सुझाव अवैज्ञानिक तथा अपूर्ण हो सकते है । वैज्ञानिक तथा पूर्ण तथ्य ज्ञात करने के लिए अनुसंधान कार्य बड़े उपयोगी होते है । अत: परामर्शदाता ऐसे कार्य भी कर सकते हैं

8. व्यक्ति अध्ययन- इस पद्धति के द्वारा किसी बालक विशेष के सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा बालक के सम्बन्ध में सभी आवश्यक तथा एकत्र कर लिये जाते है । जिनके आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते है और उसके बाद उपचारात्मक कार्य किये जाते है ।

16.5.8 बाल अपराधी

जब समाज विरोधी कार्य किसी निश्चित आयु वर्ग के बालकों द्वारा किया जाता है तो उसे बाल अपराध कहते है ।

सिरिल बर्ट के अनुसार- "वह बालक वैधानिक रूप से उस समय बाल अपराधी कहलाता है, जब उसके समाज विरोधी कार्य इतने गंभीर हो जाते है कि सरकार उन पर नियंत्रण करने हेतु आवश्यक कार्यवाही करती है अथवा कार्यवाही करने की आवश्यकता का अनुभव करती है ।" अत: यह कहा जा सकता है कि बाल-अपराध, निश्चित मूल्यों तथा मान्यताओं के विरूद्ध व्यवहार है जिसे बालक अल्पायु में ही प्रदर्शित करते है ।

बाल अपराध के कारणों के विभिन्न पक्ष होते है । मनो-विश्लेषकों ने बाल-अपराध को संवेगात्मक द्वन्द्वो का परिमाण बताया है । बालक इन द्वन्द्वो से मुक्ति पाने हेतु कोई न कोई बाल अपराध कर देता है । बाल अपराध को प्रोत्साहित करने वाले कारकों में शरीर रचना तथा शरीर विज्ञान सम्बन्धी कारक, वंशानुक्रम सम्बन्धी कारक, मनोवैज्ञानिक एवं वातावरण सम्बन्धी कारक, वातावरण कारकों में परिवार, समाज, समुदाय, एवं विद्यालय के वातावरण को सम्मिलित किया जाता है ।

बाल अपराध हेतु उत्तरदायी कारणों की विभिन्नता के कारण इन बालकों हेतु विशिष्ट निर्देशन की आवश्यकता होती है । भविष्य में बालक कदाचारी या बाल अपराधी न बन सकें इसकी रोकथाम हेतु उन्हें समय-समय पर विशेष निर्देशन प्रदान करते रहना चाहिए इसके लिए उपबोधक एवं निर्देशन प्रदाता को बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान पूर्णरूप से होना आवश्यक है ।

परामर्शदाता को इन बालकों के अभिभावकों को भी परामर्श एवं निर्देशन प्रदान करना चाहिए । जिससे अभिभावक एवं बालक के मध्य समुचित एवं मधुर सम्बन्ध स्थापित हो सके । इसके अतिरिक्त बाल अपराध को समाप्त करने हेतु विभिन्न समाजसेवी संस्थाओं की भी आवश्यकता है।

16.5.9 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समूह -

सामान्यत जनजाति वह समूह है जो पूर्व सभ्यताकाल के जीवन प्रतिमानों से सम्बद्ध है। जनजाति के सदस्य सभ्यता से अधिक दूर एवं अशिक्षित होते है । इन्हें प्राचीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन कहा जाता है । जनजाति समाजों मे विभिन्न पर्वतों, पठारों एवं जंगलों इत्यादि निर्जन क्षेत्रों तथा विशिष्ट सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन के विकास के कारण अन्य सभ्य समाजों की तुलना में विभिन्नताऐं पायी जाती है । मजूमदार के अनुसार- "जनजाति परिवारों या परिवारों के समूहों का संकलन है, जिसका सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य सामान्य भौगोलिक क्षेत्र में रहते है, सामान्य भाषा बोलते है तथा विवाह व्यवसाय अथवा अन्य उद्योगों

से सम्बन्धित कुछ नियमों का पालन करते है और जिन्होंने आत्मीयता तथा कर्तव्यबोध की सुनिश्चित व्यवस्था का विकास कर लिया है ।"

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की विशिष्ट समस्यायें है यथा इनमें हीन भावना होती है, इनमें अनेक गन्दी आदतें होती है, सभ्य समाज के व्यक्तियों द्वारा इनका विभिन्न प्रकार से शोषण किया जाता है । इनके सामाजिक संगठन में असंतुलन है । इसके अतिरिक्त इन वर्गो के बालकों को रूढिवादिता की भावना, सामाजिक कुरीतियों का प्रत्येक स्थिति में निर्वाह करना तथा प्राचीन काल से ही दासता एवं तिरस्कृत जीवन व्यतीत करने के कारण, इन वर्गो के व्यक्तियों का आत्मविश्वास, उत्साह तथा आत्मगौरव लुप्त हो चुका है, वह कर्म द्वारा सफलता अर्जित करने के स्थान पर भाग्य पर ही अधिक विश्वास करते है ।

विभिन्न विकट समस्याओं को देखते हुए इन वर्गो हेतु विशिष्ट निर्देशन की व्यवस्था की जानी आवश्यक है, तभी इन वर्गो के व्यक्ति स्वयं को राष्ट्रीय जीवनधारा से सम्बद्ध कर सकेगें तथा विकास के विभिन्न क्षेत्रों में समभागी हो सकेंगे । निर्देशन के द्वारा इनके सामाजिक संगठन में असंतुलन को समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए । अत: निर्देशन प्रदाता को इन वर्गो में सामाजिक विभाजन के कारण पैदा हुई कटुता एवं हीनता की भावना का भी समाधान हो जाए और इनमें आत्मविश्वास एवं स्वावलम्बी बनने की भावना का भी विकास हो सके ।

16.6 निर्देशन एवं परामर्श की नवीन प्रवृतियाँ

निर्देशन तथा परामर्श के क्षेत्र में वैज्ञानिक तथा सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा है। फलतः इनकी परम्परागत धारणा तथा स्वरूपों में परिलक्षित होते हैं । इन्हीं परिवर्तनों को नवीन प्रवृतियों की संज्ञा प्रदान की गयी है । निर्देशन तथा परामर्श की नवीन प्रवृतियां मूलत: उन सामाजिक शक्तियों की प्रतिफल है जिन्होंने विद्यालय निर्देशन कार्यक्रम के स्वरूप को सामयिक प्रदान की है । मानव व्यवहार के विषय में हो रहे नवीन शोधो से निर्देशन के क्षेत्र में नयी धारणाओं की प्रतिस्थापना हुई है । जिसका व्यापक प्रभाव निर्देशन के परम्परागत सिद्धान्तों एवं आधारों पर पड़ा है । निर्देशन में सांवेगिक के स्थान पर मनोवैज्ञानिक विकास को अधिक प्रमुखता देने की प्रवृति विगत दशकों में बढ़ी है । निर्देशन प्रचलन को प्राथमिक स्तर से अनिवार्य बनाये जाने पर भी यथेष्ट बल दिया जा रहा है ।

परामर्श के लिए शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी नवीन योजनाओं का समावेश, कार्यक्रमों में भी नवीन योजनाओं का समावेश, समकालीन प्रवृतियों के अन्तर्गत देखने को मिलता है । निर्देशन मूल्याकंन की प्रक्रिया के क्षेत्र में सर्वाधिक ध्यान नवीन प्रवृतियों के अन्तर्गत दिया जा रहा है । इस संदर्भ में कार्यक्रम लक्ष्यों के स्पष्टीकरण, कार्यकर्ता सर्वेक्षण सुविधाओं के विस्तार, आलेखों की पूर्णता, प्रदत परीक्षण, सहयोग के विषय में निष्पक्ष निर्णय आदि के विषय में नयी योजनाऐं प्रस्तुत की गई है । साथ ही तकनीकी उपकरणों एव साधनों के व्यापक उपयोग से, परामर्शदाता की परम्परागत भूमिका भी प्रभावित हुई है ।

16.7 निर्देशन एवं परामर्श केन्द्र

विद्यालयों में विद्यार्थी की कठिनाइयों और उनकी शैक्षिक विकास में बाधक आन्तरिक व बाह्य समस्याओं के निराकरण के लिए निर्देशन सेवाओं का होना आवश्यक है । रोजर्स और वैलेन के अनुसार परामर्शदाता को हर स्थिति में व्यक्ति में रूचि लेनी चाहिए न केवल प्रारम्भिक समस्या में । छात्र परामर्श का सम्बन्ध छात्रों की समस्याओं से होता है इसमें शिक्षा को व्यक्तिगत सम्पर्क के माध्यम से व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रयुक्त किया जाता है ।

16.7.1 निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों की आवश्यकता

इन केन्द्रों की आवश्यकता एवं महत्व का उल्लेख किया गया है-

1. तकनीक विषय के छात्रों ने राष्ट्रीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । उद्योग सम्बन्धी कार्यप्रणाली के लिए प्रशिक्षण देकर ज्ञान एवं कौशल का विकास किया जाता हैं जिससे तकनीकी विशेषज्ञों में गुणवत्ता पाई जाती है ।
2. किशोरावस्था आयु वर्ग के बालकों के व्यवहारों एवं गुणों का विकास विशिष्ट प्रकार का होता है और उनकी समस्याऐं भी विविध प्रकार की होती है । उनकी समस्याओं के समाधान में इन केन्द्रों का विशेष महत्व है ।
3. विद्यालयों के छात्रों की समस्याओं का समाधान, इस केन्द्रों के बिना संभव नहीं होता है । यथोचित निर्देशन के लिए इन केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए ।
4. निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं को विद्यालयी जीवन से अलग नहीं किया जा सकता है । छात्रों के विकास और समस्याओं के समाधान की दृष्टि से निर्देशन एवं परामर्श सेवाओं का सहयोग एवं सहायता आवश्यक है ।

16.7.2 निर्देशन व परामर्श केन्द्रों के उद्देश्य

निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों की स्थापना के उद्देश्य निम्नलिखित हे-

1. शैक्षिक निर्देशन देना ।
2. व्यावसायिक निर्देशन देना ।
3. व्यक्तिगत एवं सामाजिक निर्देशन एवं परामर्श देना ।

16.7.3 निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों के कार्य

उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये इन केन्द्रों को इन निम्नलिखित कार्य करने होते हैं-

1. भौतिक सुविधाओं का विकास करना ।
2. निर्देशन एवं परामर्श की क्रियाओं की व्यवस्था करना ।
3. केन्द्र का अन्य संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करना ।
4. केन्द्र के कार्यक्रमों के संचालन एवं प्रभाव का आकलन करना ।

16.8 राजस्थान में निर्देशन एव परामर्श सेवाएं

राज्य में एक राज्य शैक्षिक तथा व्यावसायिक ब्योरों की स्थापना सन् 1958 में की गई । इसका मुख्यालय बीकानेर है । यह निर्देशन कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण देता है, तथा राजस्थान गाइडेंस न्यूज़ लेटर प्रकाशित करता है । विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं का प्रबंधन करता है और निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान कार्यो को प्रोत्साहन देता है ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में निर्देशन को केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में स्वीकार किया गया और राज्यों में निर्देशन सेवाओं के विकास के लिए 12 ब्यूरो स्थापित किये गये । राज्य में ब्यूरो के अतिरिक्त निर्देशन सेवाओं की देखभाल करने में निम्नलिखित संस्थाओं का सहयोग भी प्राप्त होता रहता हैं

1. नियोजन कार्यालय ।
2. विश्वविद्यालय ।
3. शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय तथा
4. कुछ राज्यों में मनोविज्ञान ब्योरों भी इस कार्य के लिए स्थापित कर रखे है ।

16.9 सारांश

निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में विकसित प्रवृतियों का अध्ययन करने से यह सहज ही विदित हो जाता है कि निर्देशन सेवाओं में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे है । हमारे देश में इन सेवाओं का प्रयोग व्यापक स्तर पर करने की अत्यन्त आवश्यकता है । देश के अधिकांश विद्यार्थी एवं नवयुवक अभी इनका समुचित लाभ उठा पाने का अवसर प्राप्त नहीं कर पा रहे है । जब तक निर्देशन और परामर्श नहीं दिया जाता, तब तक विद्यार्थियों की समस्याओं का पूर्ण हल नहीं किया जा सकता है । अत: यदि विद्यार्थी को सम्पूर्ण एवं पूर्ण रूप से विकसित बनाना है तो निर्देशन एवं परामर्श का स्तर भी सुधारना होगा तभी सही अर्थों में हम भावी राष्ट्र का निर्माण कर सकते है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. विशिष्ट बालकों के निर्देशन एवं परामर्श के महत्व को बताइए?
2. राजस्थान में निर्देशन व परामर्श की सेवाओं को बताइए?
3. विद्यालयों में किस प्रकार निर्देशन दिया जाना चाहिए?

16.10 मूल्यांकन प्रश्न

1. निर्देशन से आप क्या समझते है? इसकी परिभाषा देते हुए निर्देशन एवं परामर्श का अन्तर स्पष्ट कीजिए?
2. निर्देशन से आप क्या समझते है? निर्देशन के प्रकार वर्णन कीजिए ।

3. भारत में निर्देशन की आवश्यकता की व्याख्या कीजिए । हमारे स्कूलों में किस प्रकार का निर्देशन दिया जाना चाहिए और क्यों?
4. परामर्श से आप क्या समझते है? परामर्श की परिभाषा देते हुए इसकी मुख्य बातों पर प्रकाश डालिए ।
5. परामर्श के विविध उद्देश्य कौन कौन से है?
6. विशिष्ट बालकों का अर्थ समझाते हुए उनके लिए निर्देशन एवं परामर्श के महत्व को बताइये?
7. भारत में निर्देशन एवं परामर्श की नवीन प्रवृतियों को बताइये?
8. टिप्पणी कीजिए?
   A. निर्देशन एवं परामर्श केन्द्र
   B. निर्देशन एवं परामर्श केन्द्रों के नाम
   C. राजस्थान में निर्देशन एवं परामर्श सेवाएं

16.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Agarwal, J.C. (1989) Educational and Vocational Guidance and Counselling, New Delhi
2. Agrawal, R. (2007) Elementary Guidance and Counselling, Shipra Publication, New Delhi
3. James, H.C. (1971) Group Guidance and Counselling in Schools, Appetton century craft, New York.
4. Mayers Gerge, E. (1941) Principal and Techniques of Vocational Guidance. Macgrawwhill Co.. New York
5. Sharma, R.A. (2007) Fundamentals of Guidance and Counselling, R. Lall Book Depot, Meerut

इकाई 17

समायोजन

(Adjustment)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा

17.3 समायोजन के लक्षण

17.4 समायोजित व्यक्ति की विशेषताएँ

17.4.1 संतुलित व्यक्ति

17.4.2 तनाव में कमी

17.4.3 आवश्यकता व पर्यावरण में सामंजस्य

17.5 समायोजन के प्रकार

17.5.1 रचनात्मक समायोजन

17.5.2 स्थानापन्न समायोजन

17.5.3 मानसिक मनोरचनाएँ

17.6 समायोजन के सोपान

17.6.1 समस्या का अंकन

17.6.2 निर्णय-निर्माण

17.6.3 क्रियान्वयन

17.7 समायोजन की मात्रा

17.7.1 समायोजन प्रतिक्रियाएँ

17.7.2 आंशिक समायोजन प्रतिक्रियाएँ

17.7.3 असमायोजन प्रतिक्रियाएँ

17.7.4 कुसमायोजन प्रतिक्रियाएँ

17.8 समायोजन तंत्र

17.8.1 आक्रामता

17.8.2 क्षतिपूर्ति

17.8.3 उदात्तीकरण

17.8.4 प्रक्षेण

17.8.5 युक्तिकरण

17.8.6 दमन

17.8.7 दिव्या-स्वप्न
17.8.8 प्रतिक्रिया निर्माण
17.8.9 विस्थापना
17.8.10 तादात्यीकरण
17.9 विद्यालय में समायोजन की आवश्यकता
17.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न
17.11 सारांश
17.12 मूल्यांकन प्रश्न
17.13 संदर्भ ग्रंथ

17.0 उद्देश्य

इस यूनिट को पढ़ने के बाद मुख्यत: निम्नलिखित बिन्दुओं पर आपकी समझ विकसित हो सकेगी-

- आप समायोजन की प्रक्रिया को समझ सकेगें ।
- समायोजन के अर्थ को जान सकेगें ।
- विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की परिभाषा को जानेंगे ।
- समायोजित व्यक्ति के लक्षणों को समझ सकेगें ।
- समायोजन की कौन-कौन सी विशेषताएँ होती हैं इसकी व्याख्या कर सकेंगे ।
- समायोजन के विभिन्न सोपान के महत्व को समझेंगे ।
- विद्यालय में समायोजन की आवश्यकता के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे ।
- समायोजन की युक्तियों को समझ सकेंगे ।
- समायोजन में युक्तियों के महत्व को जान सकेंगे ।
- आवश्यकता व पर्यावरण में सामंजस्य का परिणाम ही समायोजन होता है समझ सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य में समायोजन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है । मानव अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपनी परिस्थितियों एवं वातावरण के साथ समायोजन करता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह समायोजन की प्रक्रिया में सफलता प्राप्त कर पाता है अथवा नहीं । व्यक्ति का व्यक्तित्व बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक विकसित होता है । विकास की इस अवस्था में सफलता एवं असफलता दोनों ही मिलती रहती है । सफलता और असफलता के बीच व्यक्ति विकास एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये निरन्तर आगे बढ़ता है, इससे व्यक्ति ठीक प्रकार से समन्वय करके अनुकूलन स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो वह समायोजन ठीक प्रकार से कर पाता है, लेकिन कुछ व्यक्ति यह समायोजन एवं अनुकूलन नहीं कर पाते हैं और समायोजन में असफलता होती है । व्यक्ति हमेशा अपनी किसी न किसी प्रकार की आवश्यकताओं से घिरा रहता है । सामाजिक एवं मानसिक प्राणी होने के नाते वह अपनी अनेक प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु

वह भौतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के साथ सम्पर्क स्थापित करता है, और तब तक वह संघर्षरत रहता है जब तक वह इन्हें प्राप्त नहीं कर लेता । व्यक्ति के इन प्रयासों को प्रेरक (Motives) तथा चालक (Drives) कहा जाता है । जब व्यक्ति प्रयास करता हैं तो उसे मार्ग में कई बाधाएँ आती हैं । बाधाओं को पार कर लेने पर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और वह तनाव या बेचैनी की स्थिति से मुक्त हो जाता है । कभी-कभी व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति भग्नाशा (Frustration) से पीड़ित हो जाता है । एक लम्बी अवधि तक इस अवस्था में रहने के कारण व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, वह कुसमायोजन का शिकार हो जाता है । एक छात्र परीक्षा में अपनी कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना चाहता है वह इसका लक्ष्य है, पर दूसरे छात्रों की प्रतियोगिता और अपनी कम योग्यता के कारण वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफलता का अनुभव करता है अत: वह निराशा, तनाव ग्रस्त एवं मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाता है । ऐसी स्थिति में वह मौलिक लक्ष्य को त्याग कर वार्षिक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाता है । अब यदि वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, तो वह अपनी परिस्थिति या वातावरण से समायोजन (Adjustment) कर लेता है । लक्ष्य प्राप्ति के लिये परिस्थितियों को अनुकूल बनाना या परिस्थितियों के अनुकूल हो जाना ही समायोजन कहलाता है । यह समायोजन व्यक्ति अपनी क्षमता, योग्यता के अनुसार करता है ।

व्यक्ति की जब स्वाभाविक इच्छा की पूर्ति नहीं होती है, तो शनै: शनै: वह इस अप्रिय स्थिति से समझौता कर लेता है इसी समझाते को मनोविज्ञान की भाषा में 'समायोजन' (Adjustment) कहते हैं ।

17.2 समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा

समायोजन की विचारधारा (Concept) को और अधिक समझने के लिये कुछ परिभाषाएँ मनोवैज्ञानिकों ने दी है जिनसे समायोजन का अर्थ स्पष्ट हो जायेगा -

1. **बोरिंग, लैंगफिल्ड एवं वेल्ड** - "समायोजन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्राणी को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखता है ।"

   (Adjustment is the process by which a living organism maintain a balance between its needs and circumstances that influence the satisfaction of these needs".

   Bring, Lang Field and weld

2. **गेट्स एवं अन्य** - "समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और वातावरण के बीच संतुलित सम्बन्ध रखने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है ।"

   "Adjustment is a continual process by which a person various his behavior to produce a more harmonious relationship between himself and his environment".

Gates and Others

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि समायोजन निरन्तर चलने वाले प्रक्रिया है, साथ ही व्यक्ति परिस्थिति तथा पर्यावरण के मध्य अपने को समायोजित करने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है । अर्थात् समायोजन एक संतुलित अवस्था है ।

17.3 समायोजन के लक्षण

समायोजन करने वाले व्यक्ति में निम्नांकित लक्षण पाये जाते है -

1. परिस्थिति का ज्ञान, नियंत्रण तथा अनुकूल आचरण
2. संतुलन
3. पर्यावरण तथा परिस्थिति से लाभ उठाना
4. समाज के अन्य व्यक्तियों का ध्यान
5. संतुष्टि एवं सुख
6. सामाजिकता आदर्श चरित्र, संवेगात्मक रूप से उपस्थित संतुलित तथा दायित्वपूर्ण
7. साहसी एवं समस्या समाधान युक्त

गेट्स ने कहा - समायोजित व्यक्ति वह है जिसकी आवश्यकतायें एवं तृप्ति सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संगठित हो ।

17.4 समायोजित व्यक्ति की विशेषताएँ

जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा उन आवश्यकताओं की परिस्थितियों के बीच सन्तुलन स्थापित कर लेते हैं । उनके व्यक्तित्व का एकीकृत विकास होता है । व्यक्ति इन दोनों तत्त्वों के मध्य संतुलन स्थापित कर पाया है अथवा नहीं इसकी जाँच नीचे लिखे बिन्दुओं के आधार पर की जा सकती है -

17.4.1 संतुलित व्यक्तित्व

जो व्यक्ति अपने जीवन में आवश्यकताओं तथा वातावरण में मधुर सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं उनके व्यक्तित्व का विकास सन्तुलित रूप से होता है । व्यक्तित्व विकास के कई आयाम (Dimensions) होते हैं । व्यक्तित्व विकास मे सभी आयामों का एक साथ प्रभाव पड़ता है तभी वह संतुलित विकास कर समाज में समायोजित होता है ।

17.4.2 तनाव में कमी

मानसिक रोग तनाव की अधिकता का परिणाम है । तनाव के कारण व्यक्ति व्यवहारों में असामान्यताएँ आती हैं । अत: इन्हें कम करना चाहिये । वैसे तो इस जटिल समाज में कोई भी व्यक्ति तनाव से अछूता नहीं रह सकता है, किंतु इसे कम किया जा सकता है । समायोजित व्यक्ति विभिन्न उपायों से तनाव को कम करते हैं ।

17.4.3 आवश्यकता व पर्यावरण में सामंजस्य

समायोजित व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा पर्यावरण में सामंजस्य बनाये रखता है । वह पर्यावरण के अनुसार ही अपनी आवश्यकताओं का हल तलाश करता है और उसी के अनुसार आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है, वह दो प्रकार से परिस्थिति में समन्वित सम्बन्ध बनाये

रखने का प्रयास करता है - पहली स्थिति में व्यक्ति के ऊपर आश्रित समायोजन होगा और दूसरी स्थिति में वातावरण पर आश्रित व्यक्ति होगा, तभी वह अपनी आवश्यकताओं में तद्नुरूप परिवर्तन करता रहता है ताकि उसे अधिक बाधाओं व अधिक तनाव का सामना न करना पड़े ।

17.5 समायोजन के प्रकार

समायोजन मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है -

17.5.1 रचनात्मक समायोजन

रचनात्मक कार्यों द्वारा जब कोई व्यक्ति क्षेत्र विशेष में समायोजन स्थापित करता है तो वह रचनात्मक समायोजन कहलाता है । उदाहरणार्थ व्यक्ति का समायोजन धार्मिक क्षेत्र मे गड़बड़ा जाता है तो वह समाज में उपकारार्थ कुछ रचनात्मक कार्य करके अपना समायोजन कर लेता है ।

17.5.2 स्थापन्न समायोजन

एक क्षेत्र में समायोजन स्थापित न कर पाने की स्थिति में व्यक्ति अपनी असफलता को दूसरों पर प्रत्यारोपित कर समायोजन कर लेते हैं । जैसे लोमड़ी को अंगूर उछलकूद के बाद भी नहीं मिलते तो वह अंगूर पर दोषारोपण (अंगूर खट्टे) करके समायोजन करती है । उसी प्रकार आलसी छात्र परीक्षा में असफल होने पर अध्यापकों को दोष देगा पेपर बनाने वाले को उत्तर पुस्तिकाओं की जांच पर दोषारोपण करके बहुत मात्रा में समायोजन करेगा ।

17.5.3 मानसिक मनोरचनाएँ

व्यक्ति की कुछ ऐसी मानसिक मनोरचनायँ होती हैं जिनके द्वारा समायोजन का कार्य प्राय: सभी सामान्य एवं असामान्य व्यक्ति करते हैं । ये मन को समझने की विधियाँ कहलाती हैं । व्यक्ति जब अपना समायोजन इन्हीं के द्वारा करे तो हम उसे असामान्य व्यक्ति कहते हैं।

17.6 समायोजन के सोपान

17.6.1 समस्या का अंकन

व्यक्ति के समक्ष जब कोई आवश्यकता उत्पन्न होती है तो उससे सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, वह उन समस्याओं को एक विशिष्ट वर्ग में रखकर उसके समाधान के लिये क्षेत्र का चयन गंभीरता से करता ।

17.6.2 निर्णय शक्ति

समस्या के समाधान हेतु आवश्यक समाधानों की सूची तैयार की जाती है और प्रत्येक समाधान का आवश्यकता के अनुरूप मूल्यांकन किया जाता है ।

17.6.3 क्रियान्वयन

समुचित समाधान के सम्बन्ध में निर्णय लेकर उस समाधान को प्राप्त करने के बाद व्यक्ति प्रतिक्रियाएँ प्रारम्भ कर देता है । उसे जो भी कठिनाइयाँ आती हैं उसके अनुसार वह अपनी क्रियाओं में आवश्यक संशोधन भी करता रहता है ।

17.7 समायोजन की मात्रा

व्यक्ति विभिन्न आवश्यकताओं तथा उनसे सम्बन्धित पर्यावरण के साथ अलग-अलग स्तर पर समायोजन कर पाता है । कुछ व्यक्ति प्राय: सभी आवश्यकताओं के साथ सफलतापूर्वक समायोजन कर पाते हैं, जबकि दूसरी तरफ सफलतापूर्वक समायोजन नहीं कर पाते। समायोजन की सीमा तथा स्तर अनुसार समायोजन के चार स्तर होते हैं ।

17.7.1 समायोजन प्रतिक्रियाएँ

ये प्रतिक्रियाएँ वे होती हैं जो व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा पर्यावरण के साथ पूर्ण एवं सफल समायोजन को प्रदर्शित करता है । इससे वह अपने वांछित उद्देश्य को प्राप्त कर कुंठाओं से बच जाता है ।

17.7.2 आंशिक समायोजन प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा वातावरण के साथ असफल होकर कल्पना लोक में समायोजन करता है तो वह आंशिक समायोजन कहलाता है । दिवास्वप्न आंशिक समायोजन की प्रतिक्रिया है ।

17.7.3 असमायोजन प्रतिक्रियाएँ

स्पष्ट है कि इस उद्देश्य की संप्राप्ति पर विद्यार्थी अर्जित ज्ञान का प्रत्यास्मरण तथा पुनर्पहिचान करता है । इससे संकरण रखने की योग्यता पर विशेष बल मिलता है अत: उद्देश्य प्रत्येक यदि लम्बे समय तक ऐसी क्रियाएँ तथा व्यवहार करता रहे जिसके कारण उसकी आवश्यकताओं व वातावरण के बीच मधुर सामंजस्य स्थापित न हो सके तो वह स्थिति असमायोजन की कहलाती है ।

17.7.4 कुसमायोजन प्रतिक्रियाएँ

जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा वातावरण के साथ त्रुटिपूर्ण या विरोधाभासी सामंजस्य करे तो उसे कुसमायोजन प्रतिक्रियाएँ कहते हैं । ये असामान्य व्यवहारों को जन्म देती है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 समायोजन क्या है । स्पष्ट कीजिए ।

2 समायोजन के प्रमुख लक्षण क्या है?

3 समायोजित व्यक्ति की विशेषताऐ बताइये ।

4 समायोजन के प्रकार क्या क्या है?

5 समायोजन के प्रमुख सोपान कौन-कौन से है?

17.8 समायोजन यंत्र

यदि हम समायोजन प्रक्रिया पर नजर डालें तो पता चलता है कि व्यक्ति अपने उद्देश्यों को परिवर्तित करके बाधाओं को दूर करके समायोजन करता है । परन्तु जीवन में कभी-कभी समायोजित होने के लिये उसे द्वन्द्व, कुंठा व संघर्ष से बचने या अपनी रक्षा करने के लिये प्रयास करना पड़ता है । इसे रक्षात्मक तंत्र भी कहते हैं । "समायोजन तंत्र से तात्पर्य ऐसी विधि

जिसमें अवरोधों को दूर करने उद्देश्यों तक पहुँचने, प्रेरकों को सन्तुष्ट करने, कुंठा व भग्नाशा को दूर एवं सन्तुलन स्थापित करने से है । "व्यक्ति समायोजन तंत्र का प्रयोग अपने आत्मसम्मान की रक्षा हेतु करता है । दुश्चिंता तनाव व कुंठा से रक्षा करने के साथ-साथ इससे सन्तुष्टि मिलती है।

निम्नलिखित यंत्रों का विवरण इस प्रकार है -

17.8.1 आक्रामकता

आक्रामकता एक प्रकार का समायोजन यंत्र हैं जिसमें भग्नाशा व कुण्ठा उत्पन्न करने वाली स्थिति क्षति पहुँचाने का प्रयास किया जाता है कभी-कभी व्यक्ति किसी बाह्य वस्तु के प्रति क्रोध का प्रदर्शन करता है । किसी को पीटना, अपशब्द कहना, आलोचना करना आदि आक्रामकता है, व्यक्ति कभी-कभी अपने बड़ों से आक्रामकता का प्रदर्शन नहीं कर पाता तो वह ऐसी स्थिति में अपनी आक्रामकता का प्रदर्शन किसी अन्य वस्तु या जानवरों पर करता है । पत्नी पर क्रोधित होने की स्थिति में खाने की थाली दूर कर सरका देता है । भूखा रहना भी आक्रामकता है ।

17.8.2 क्षतिपूर्ति

कोलमैन (1974) के अनुसार इस यंत्र के द्वारा अवांछनीय लक्षण को व्यक्ति वांछनीय लक्षण के बढ़े हुये रूप के द्वारा बदल लेता है । इस यंत्र के द्वारा व्यक्ति अपनी हीनता और अनुपयुक्तता के लक्षणों से अपनी सुरक्षा करता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी कमियों को दूर करने का प्रयास करता है । एक व्यक्ति एक क्षेत्र की कमी को दूसरे क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करके सफलता प्राप्त करना चाहता है । इस प्रकार व्यक्ति अपनी हीन भावना से बच पाते हैं । जो व्यक्ति अपने शैक्षिक क्षेत्र में उच्च स्तरीय अंक नहीं प्राप्त कर पाते, वे सह-शैक्षिक गतिविधियों में श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते हैं । एक व्यक्ति गणित विषय मे कमजोर है निरन्तर अभ्यास व कोचिंग के द्वारा अपनी दुर्बलताओं को दूर कर लेता है । अर्थात् जो व्यक्ति एक क्षेत्र विषय में कमजोर है तो वह दूसरे क्षेत्र में अपनी प्रतिभा को दिखलाकर उस क्षति को दूर करता है ।

17.8.3 उदात्रीकरण

वी.ई. फिशर ने इसको इस प्रकार समझाया है कि कार्य शक्ति की प्रवृत्तियों या प्रेरकों का नैतिक, सांस्कृतिक विषयों की ओर पुन: निर्देशन की क्रिया ही उदात्रीकरण है, इसके द्वारा व्यक्ति अपनी अनैतिक प्रेरणाओं की संतुष्टि समाज स्वीकृत उद्देश्यों के अनुसार करता है । **कालमैन (1974)** के अनुसार इसके द्वारा कुण्ठित लैंगिक शक्ति (Frustrated Sexual Energy) वह साधन है जिससे यह शक्ति आंशिक रूप से Substitutive क्रियाओं में परिवर्तित हो जाती है यह एक प्रकार का Redirection है । इस यंत्र से सम्बन्धित व्यवहार समाज की दृष्टि से मान्य ही नहीं होता बल्कि इस प्रकार के व्यवहार का समाज में एक निश्चित मूल्य भी होता है । उदाहरण के लिये प्रेम की बाजी हारकर न जाने कितने लोग साहित्य सेवा में जुट जाते हैं और बड़े महान साहित्यकार कवि या संगीतकार बन जाते हैं । श्री तुलसीदास, बैजू बावरा आदि इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं ।

इस यंत्र में दमित इच्छाएँ वांछनीय रास्तों की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं जिसमें व्यक्ति की विभिन्न ग्रन्थियों व निराशाओं का शोधन हो जाता हैं । व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य के लिये यह महत्वपूर्ण रक्षा युक्ति है । उदात्रीकरण की व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। अध्ययनशील, शोध की योग्यता, जिज्ञासा, साहित्यिक व ललित कलाओं में रुचि जैसे गुणों का विकास होना, उदात्रीकरण के फलस्वरूप होता है । इस युक्ति में इड, अहं व परमअहं तीनों एक साथ मिलकर कार्य करते हैं।

17.8.4 प्रक्षेपण

अपनी भावनाओ और लक्षणों को दूसरों में देखना या दूसरों पर आरोपित करना ही प्रक्षेपण है, यह वह यंत्र है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी कठिनाइयों का दोषारोपण दूसरों पर करता है - इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं - (1) टेनिस के खेल मे हारने वाला खिलाड़ी कहे कि गेंद अच्छी नहीं थी, (2) फेल होने पर विद्यार्थी कहे कि परीक्षा पत्र खराब था, (3) भ्रष्टाचारी व्यक्ति अक्सर कहते सुने जाते हैं कि भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, आदर्शों धार्मिक मर्यादाओं और नैतिक मर्यादाओं का निरादर हो रहा है । अर्थात् जो व्यक्ति जैसा होता है वह अपनी भावनाओं को दूसरों पर आरोपित करता है।

17.8.5 औचित्य स्थापना या युक्तिकरण

इस युक्ति में व्यक्ति अपनी असफलताओं व निराशाओं को तार्किक आधार पर अभिव्यक्ति देकर अपने अहं की तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा करता है, जब व्यक्ति किसी कार्य में असफल हो जाता है तो असफलता के पीछे कई कारणों को ढूंढकर औचित्यीकरण करता है - उदाहरण के लिये, अगर खट्टे हैं, नाच न जाने आंगन टेड़ा तथा यदि परीक्षा में असफल हो जाता है तो अध्यापक को दोषी मानकर अपनी स्थिति को सिद्ध करने का प्रयास करता है ।

17.8.6 दमन

इस युक्ति का प्रयोग **सिम्मण्ड फ्रायड** ने किया व्यक्ति इच्छा शक्ति को दबा देता क्योंकि वह असामाजिक रूप किये हुये होती है । हम दुखदायी घटनाओं को भूल जाते हैं अथवा उन स्थानों पर नहीं जाना चाहते जो हमारे कष्टदायी अनुभवों से सम्बन्धित होते हैं । व्यक्ति उसके अचेतन मन को अवांछनीय लगने वाले तथा उनमें आदर्शो का विरोध करने वाले विचारो व इच्छाओं को अचेतन मन में ढकेल देता है जहाँ वे क्रियाशील रहते हुये उसके व्यक्तित्व को अस्वीकार ही नहीं करता अपितु उनकी सत्ता से भी इन्कार कर उन्हें अचेतन स्तर पर नहीं आने देता । दुःख एवं अवांछनीय इच्छाओं और अनुभवों को भूलना ही अच्छा है ।

17.8.7 दिवा स्वप्न

दिवा स्वप्न को तरंगमयी कल्पना (Fantasy) भी कहा जाता है । दिवास्वप्नों को हवाई किले बनाना (Building Castles in the air) भी कहा जा सकता है । यह देखा गया है कि जब बालक तनाव, अन्तर्द्वन्द्व और कुण्ठा की स्थिति में होता है तो वह दिवास्वप्नों के सहारे अपना सन्तुलन बनाने का प्रयास करता है । दिवास्वप्नों में उसका मनोराज्य होने के कारण घटनाएँ उसके अनुसार घटती हैं और इस प्रकार थोड़ी देर के लिये अपनी निराशा को आशा में बदल देता है और थोड़ी देर के लिये सुनहरे स्वप्नों को वास्तविक जीवन का अंग

समझने लगता है और इस प्रकार वह अपना सन्तुलन और समायोजन बनाने में सफलता का अनुभव करता है । दिवास्वप्न अन्य विकास अवस्थाओं की अपेक्षा किशोरावस्था में अधिक देखे जाते है ।

17.8.8 प्रतिक्रिया निर्माण

व्यक्ति को जब एक क्षेत्र में प्रयास करने पर भी सफलता न मिले तो वह ठीक उसके विपरीत क्षेत्र में प्रयास करने लगता है । यहाँ मूल इच्छा का दमन नहीं किया जाता वरन मूल इच्छा के ठीक विपरीत इच्छा विकसित कर दी जाती है । धनी बनकर ही इच्छा की पूर्ति न होने पर निर्धनता के गुण गाने लगता है या गोरा व्यक्ति सुन्दर बनने में सफल रहने पर काली सुन्दरता (Black-Beauty) की प्रशंसा करने लगता है । किशोरी बाल लम्बे न होने पर नकली लाल (Vig) अपना लेती है ।

17.8.9 विस्थापना

मूल प्रेरणा, प्रवृत्ति तथा इच्छा से हटकर किसी मूलत: भिन्न प्रवृति तथा इच्छा की और अग्रसर होना ही विस्थापना है । उदाहरणस्वरूप जब कोई अपने अधिकार का गुस्सा उस पर न उतार कर घर जाकर अपना गुस्सा पत्नी पर उतारता है उसे विस्थापना कहते हैं । सास से झगड़ा होने पर वह अपना गुस्सा बर्तनों पर उतारती है ।

17.8.10 मार्गान्तीकरण

जन्मजात, प्राकृतिक तथा असामाजिक प्रवृत्तियों तथा इच्छाओं के मूल रूप को बदलकर उन्हें सामाजिक रूप प्रदान करना ही मार्गान्तीकरण कहलाता है । मार्गान्तीकरण का अर्थ सामाजिक रूप से स्वीकृत ऐसे उद्देश्यों से है जो उसे प्रेरक का स्थान दे, जिसकी अभिव्यक्ति का मार्ग सामाजिकता से बंद हो गया है । उदाहरण के तौर पर पत्नी की फटकार सुनकर तुलसीदास ने पत्नी प्रेम को राम प्रेम में बदल दिया, बालकों की गंदी भावनाओं को हम समाज के अच्छे कार्यो की तरफ मोड़ सकते हैं ।

17.8.11 प्रतिगमन

प्रतिगमन का अर्थ है वापिस शैशवास्था में लौटना या व्यक्ति का पुन: शैशवावस्था की ओर जाकर जीवन की वास्तविक समस्याओं से अपने को दूर समझ बैठना जैसे प्रौढ़ावस्था में किसी क्षेत्र में असफल होने पर एक शिशु के समान अपन माँ की गोद में छिपना या अंगूठा चूसना आदि ।

Regression is the tendency to solve the problems of the life by reversing Childhood-Morgan

17.8.12 तादात्मीकरण या आत्मीकरण

ब्राउन (1940) के अनुसार इसमें व्यक्ति अपने अहं या व्यक्तित्व को दूसरों के व्यक्तित्व सांचे में ढ़ालने का प्रयास करता है या दूसरों के व्यक्तित्व को अपना समझने लगता है । इस यंत्र से व्यक्ति अपने व्यवहार अपनी क्रियाओ अथवा अपने आपको किसी अन्य व्यक्ति के अनुसार बनाने का प्रयास करता है । जब हम किसी व्यक्ति की वेशभूषा की नकल करते हैं या उसके बोलने के ढंग या हेयर स्टाइल आदि की नकल करके उसके समान अपने-आपको

समझने लगते हैं तो यह आत्मीकरण है, बहुधा किशोर-किशोरियां, अभिनेताओं से अपने-आपको आईडेन्टफाई करते हैं । अपने माता-पिता या प्रोफेसर से भी आत्मीकरण दैनिक जीवन में देखे जा सकते हैं ।

17.9 विद्यालय मे समायोजन की आवश्यकता

विद्यालयों में अध्यापक बालक के सुसमायोजन हेतु निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं-

1. बालकों के शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाये । इस हेतु विद्यालय में उचित मात्रा में खेलकूद की सुविधा हो ।
2. समुचित संवेगात्मक विकास न हो, इस हेतु प्रयास किये जाये । अध्यापक स्वयं संवेगात्मक रूप से सन्तुलित हो तथा छात्रों के संवेगों पर समुचित ध्यान दे ।
3. अध्यापकों का व्यवहार सहयोगात्मक हो किसी भी प्रकार की द्वेष-भावना से पक्षपात पूर्ण व्यवहार न करें ।
4. नैतिक शिक्षा व्यवस्था की जाये ।
5. पाठ्यक्रम आधुनिकतापूर्ण रखा जाये ।
6. छात्रों को पर्याप्त स्वतंत्रता दी जाये तथा स्वानुशासन की व्यवस्था की जाये ।
7. शैक्षिक, व्यावसायिक, व्यक्तिगत तथा मौन निर्देशन की समुचित व्यवस्था हो ।
8. अध्यापकों के व्यवहार में एकरूपता होनी चाहिये, कर्म, व्यवहार तथा करनी में अंतर नहीं होना चाहिये ।
9. हानिकारक प्रतिस्पर्धा पर नियंत्रण लगाया जाये ।

17.10 स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. समायोजन किसे कहते हैं?
2. समायोजन की उपयुक्त परिभाषा दीजिये ।
3. समायोजित व्यक्ति से आपका क्या तात्पर्य है?
4. समायोजित व्यक्तित्व में कौन-कौन से गुण होने चाहिये ।
5. समायोजन के कितने सोपान हैं ?

17.11 सारांश

बालक एक विकासशील प्राणी है जिसकी कुछ शारीरिक और मानसिक आवश्यकताएँ होती हैं ये आवश्यकतायें बालक को क्रियाशील बनाती हैं और यह उसके व्यवहार का कारण होती है । यह सर्वविदित है कि बिना आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के व्यक्ति व्यवहार नहीं करता है, उसके प्रत्येक व्यवहार के पीछे कुछ न कुछ आवश्यकताएँ अवश्य होती हैं । बालक का व्यवहार इन आवश्यकताओं की पूर्ति वाले साधनों या लक्ष्यों (Gools) की ओर उन्मुख होता है । यदि बालक को लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो निश्चित रूप से उसकी आवश्यकता की सन्तुष्टि हो जाती है । किसी भी आवश्यकता पूर्ति से सम्बन्धित लक्ष्य का चुनाव करना एक जटिल कार्य है । बालकों के लिये यह कार्य और भी अधिक जटिल इसलिये भी होता है कि उनमें अनुभवों मे

कमी होती है तथा उनकी शारीरिक और मानसिक योग्यताएँ भी सीमित होती हैं । बालक का लक्ष्य चयन कुछ प्रमुख कारकों से सम्बन्धित होता है, जैसे प्रत्यक्ष परक योग्यता (Perceptual Artily) अभिवृत्ति या (Attitudes) लक्ष्य का मूल्य (Value of goals or objective) तथा आकांक्षा स्तर (Level of Aspiration) आदि । बालक लक्ष्यों का चुनाव उतनी की अधिक कुशलता से करते हैं जिनमें यह कारक जितनी ही अधिक मात्रा मे विद्यमान होते हैं लक्ष्य प्राप्ति मे कुछ न कुछ बाधाएँ होती हैं । इन बाधाओं के कारण उसके प्रयास में रूकावट पड़ती है तथा लक्ष्य प्राप्त करने में अधिक समय लगता है । यदि ये बाधायें थोड़ी भी गंभीर हैं तो बालक में तनाव (Tension) और अन्तर्द्वन्द्व (Conflict) उत्पन्न कर देती है । यदि बालक को बाधाओं पर सफलता प्राप्त हो जाती है तो निश्चित रूप से उसे लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और इस अवस्था में वातावरण के साथ उसका समायोजन (Adjustment) सामान्य और अच्छा होता है । लक्ष्य प्राप्ति पर उसे संतुष्टि और सफलता का अनुभव होता है । जब बालक के लिये लक्ष्य बहुत अधिक महत्वपूर्ण होता है और उसे लक्ष्य नहीं प्राप्त हो पाता तो उसमें कुण्ठा भी उत्पन्न हो जाती है । तनाव व अन्तर्द्वन्द्व की अवस्था में बालक असन्तुलित और अस्वस्थ हो जाता हैं, वातावरण के साथ मधुर सम्बन्ध बनाये रखने में परेशानी हो जाती है ।

17.12 मूल्यांकन प्रश्न

1- समायोजन की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिये?
2- समायोजन किसे कहते हैं? समझाइये ।
3- समायोजन की उपयुक्त परिभाषा देते हुये स्पष्ट करें?
4- समायोजन यंत्र क्या होते हैं? स्पष्ट कीजिये ।
5- समायोजन के कौन-कौन से लक्षण होते हैं?
6- समायोजन के कितने प्रकार होते हैं? स्पष्ट कीजिये ।
7- अध्यापक विद्यालय में समायोजन के लिये क्या प्रयत्न कर सकता है?

17.13 संदर्भ ग्रंथ

1- Huelock Elizabeth	Child Development
2- Gates and Others	Educational psy.
3- Bigge and Hunt	Psychological Foundation of education
4- डॉ. प्रीति वर्मा /डॉ. डी. एन श्रीवास्तव	बालमनोविज्ञान
5- डॉ महेन्द्र कुमार मिश्रा	विकासात्मक मनोविज्ञान
6- डॉ सुरेश भटनागर	शिक्षा मनोविज्ञान
7- डॉ गिरीश पचौरी	शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार
8- डॉ. रामपाल सिंह वर्मा	शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई 18

सृजनात्मकता (Creativity)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 सृजनात्मकता का अर्थ
18.3 सृजनात्मकता की परिभाषा
18.4 सृजनात्मकता के तत्व
18.4.1 प्रवाह
18.4.2 विविधता
18.4.3 मौलिकता
18.4.4 विस्तारण
18.5 सृजनात्मकता की प्रकृति
18.5.1 प्राचीन सिद्धान्त
18.5.2 उन्माद समतुल्य सृजनात्मक
18.5.3 सृजनात्मकता का जन्मजात सिद्धान्त
18.5.4 वातावरणजन्य सृजनात्मकता का सिद्धान्त
18.5.5 प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध का सिद्धान्त
18.6 सृजनात्मक बालक की विशेषता
18.7 सृजनात्मक बालक की शिक्षा
18.8 सारांश
18.9 मूल्यांकन प्रश्न
18.10 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

विश्व में जो निरन्तर विकास एवं प्रकृति की प्रक्रिया चल रही है उसके पीछे यदि कारण जानने का प्रयास किये जाये तो उत्तर सिर्फ एक ही है सृजनात्मक चिन्तन । सृजनात्मक चिन्तन द्वारा ही हम विकास के सोपानों की ओर अग्रसर हो पाते है । जिस राष्ट्र में सृजनात्मक चिन्तन की प्रक्रिया कमजोर हो या रूक जाती है वह राष्ट्र विकास एवं प्रगति के रास्ते पर स्वत: ही रूक जाता है । देश के विकास में योगदान देने वाले ऐसे महत्वपूर्ण घटक का अध्ययन करने से निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करना सरल होगा ।

- शिक्षार्थी सृजनात्मकता की अवधारणा को समझ सकेगें ।
- शिक्षार्थी सृजनात्मकता के आधारों एवं तत्वों को समझकर अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे ।

- शिक्षार्थी सृजनात्मक बालक के कार्यो एवं व्यवहार के आधार पर उनकी पहचान कर सकेगें ।
- अध्यापकों द्वारा दिये जा रहे अवसरों को समझ कर लाभ उठा सकेगें ।
- स्वयं की अन्तर्निहित शक्तियों को सही ढंग से प्रस्फूटित कर सकेगें ।

18.1 प्रस्तावना

आज का युग वैज्ञानिक तकनीकी व औद्योगिक विकास का युग है इस युग में नव सृजन का लक्ष्य प्रमुख होता है किंतु सृजनात्मकता का गुण केवल वैज्ञानिकों का या कलाकारों में निहित नहीं होता है । ईश्वर द्वारा रचित इस प्रकृति में हर प्राणी में सृजनात्मकता मौजूद होती है किसी में कम मात्रा में व किसी में एक अधिक मात्रा में । आधुनिकीकरण के इस युग में जितने नए आविष्कार सामने आ रहे है उतनी ही चुनौतियां एवं संघर्ष का भी सामना प्राणियों को हर समय करना पड़ता है ऐसे में समस्याओं के समाधान या विचार जो व्यक्ति के मस्तिष्क में आते है वे भी सृजनात्मकता की श्रेणी में आते है ।

18.2 सृजनात्मकता का अर्थ

सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द Creativity क्रियेटिविटि के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है इसके समानान्तर शब्द, उत्पादकता, उत्पादन से संबंधित होते है । यहाँ उत्पादकता से आशय प्रोडक्टीविटी से होता है जो किसी वस्तु में उत्पादन से जुड़ा होता है । विधायकता से आशय एकत्रीकरण के बोध से होता है इन सभी आधारों पर सृजनात्मकता से आशय किसी कार्य के नवीन परिणाम से होता है अर्थात् ऐसे नवीन कार्य जौ समाज द्वारा मान्य हो वे सभी सृजनात्मकता की श्रेणी में आते है ।

18.3 सृजनात्मकता की परिभाषा

ड्रेवहल के शब्दों में "सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन रचना या विचार को प्रस्तुत करता है ।"

"Creativity is the human ability by which he presents any nobal work or ideas."

– J.E.Drevahal

क्रो एवं क्रो के अनुसार," सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की एक मानसिक प्रक्रिया है ।"

"Creativity is a mental process to express the original outcomes."

crow and crow

उक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सृजनात्मकता का संबंध मौलिकता व नवीनता से होता है । किसी भी घटना या समस्या पर नये ढंग से सोचने व समाधान निकालने के प्रयास सृजनात्मकता में समाहित होते है । दूसरे शब्दों में सृजनात्मकता वह मानसिक योग्यता है जो व्यक्ति को किसी भी समस्या के तार्किक समाधान खोजने में चिन्तन

हेतु प्रवृत्त करती है अर्थात् परम्परागत ढंग, विचारों व प्रथाओं से अलग हटकर सोचने एव विचार करने की शक्ति सृजनात्मकता कहलाती है ।

18.4 सृजनात्मकता के तत्व

सृजनात्मकता शब्द का यदि सही विश्लेषण व विवेचन किया जाये तो आशय स्पष्ट है संवेदनशीलता, नवीनता, मौलिकता, कल्पना, खोजपरकता, जिज्ञासा, अनुमान, प्रवाह लचीलापन, नवीनता परिस्थिति से परे जाने की क्षमता सृजनात्मकता में समाहित है इस आधार पर सृजनात्मकता के प्रमुख आधार या तत्व चर है ।

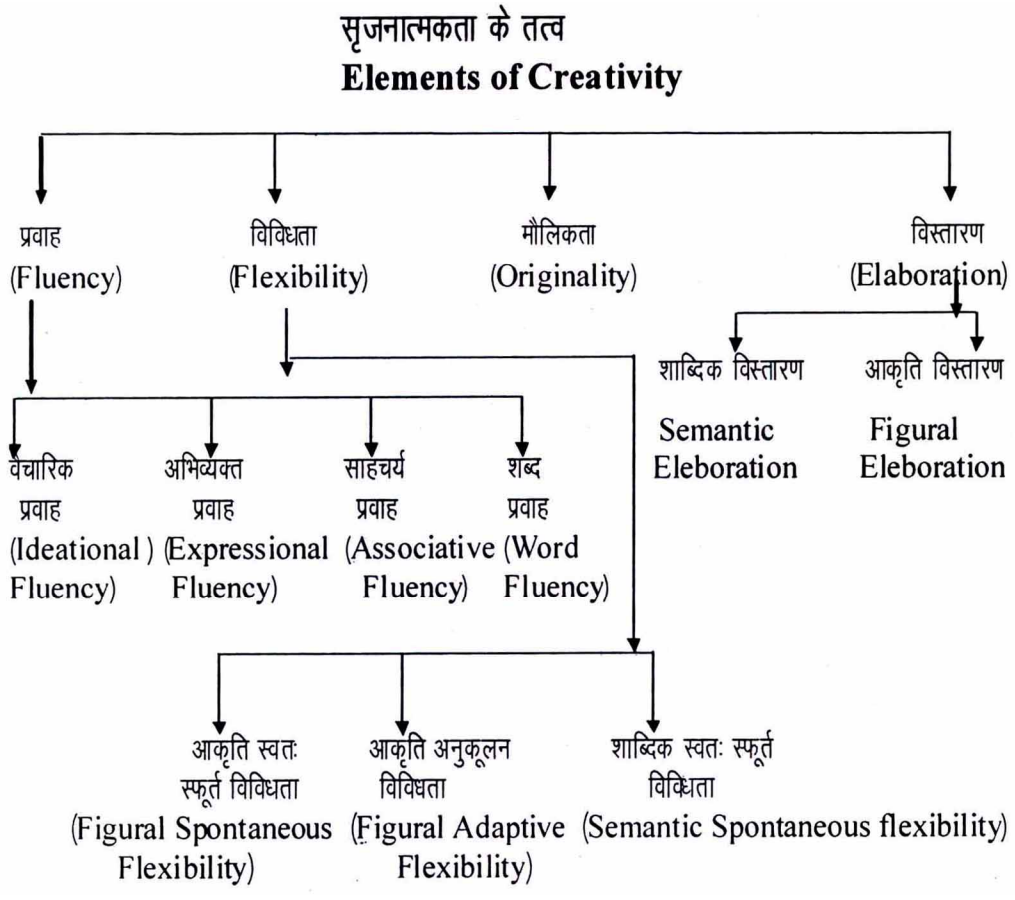

18.4.1 प्रवाह

प्रवाह से तात्पर्य है विचारों का प्रवाह । किसी भी समस्या के बारे में समाधान से संबंधित आने वाले विचारों की गतिशीलता । प्रवाह को भी चार भागों में विभक्त किया गया है।

वैचारिक प्रवाह (Ideational Fluency), अभिव्यक्त प्रवाह (Expressional fluency), साहचर्य प्रवाह (Associative Fluency), तथा शब्द प्रवाह (Word Fluency) वैचारिक प्रवाह में विचारों के स्वतंत्र प्रस्फूटन को प्रोत्साहित करने के लिए मानसिक क्रियाऐं करने पर जोर दिया जाता है जैसे किसी वस्तु के अधिक से अधिक उपयोगों के बारे में बताना । अभिव्यक्ति प्रवाह में बालक को अपनी अभिव्यक्तियों को अभिव्यक्त करने का समुचित अवसर प्रदान किया जाता है । जैसे अधूरा चित्र पूर्ण करो । शब्दों से वाक्य निर्माण, अधूरा

वाक्य पूर्ण करो । साहचर्य प्रवाह से तात्पर्य दिये गये शब्दों व वस्तुओं में परस्पर साहचर्य स्थापित करने से है । शब्द प्रवाह से आशय मौखिक एवं लिखित रूप में विचारों की शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति में धारा प्रवाह, सही व सार्थक शब्दों का चयन व उपयोग करने की क्षमता ।

18.4.2 विविधता

विविधता से आशय किसी समस्या या विचार के बारे में बहु विकल्प या प्रत्युत्तर आना। प्रत्येक विकल्प एक दूसरे से जितना भिन्न होगा वास्तव में सृजनात्मकता उतनी अधिक या तीव्र होगी । सृजनात्मकता के इस तत्व को भी तीन भागों में विभाजित किया गया । आकृति स्वत: स्फूर्त विविधता (Figural Sporaneous Flexibility) से तात्पर्य किसी वस्तु या आकृति में सुधार कर पाने के उपायों की विविधता द्वितीय अवस्था में आकृति अनुकूलन विविधता (Figural adaptive Flexibility) से आशय किसी वस्तु या आकृति में दिये गये रूप में परिवर्तित करने की विविधिता से है । तृतीय शाब्दिक स्वत: स्फूर्त विविधता (Semantic Spontaneous flexibility) में वस्तुओं व शब्दों के प्रयोग में विविधता को देखा जाता है । सृजनात्मक परीक्षण में किसी एक पद प्राणी द्वारा की गई अनुक्रियाओं के आधार पर व उनके प्रकारों की संख्या के आधार पर व्यक्त किया जाता है । कुल विविधता प्राप्तांक हेतु विभिन्न पदों पर की गई क्रियाओं के अंको को आधार बनाया जाता है ।

18.4.3 मौलिकता

मौलिकता से आशय नये विचारों, विकल्पों व समाधानों की अभिव्यक्ति से होता है अर्थात् मौलिकता पूर्णत: नवीनता पर आधारित होती है । किसी भी समस्या के समाधान के संदर्भ में जब व्यक्ति द्वारा अन्यों से भिन्न विकल्प प्रस्तुत किये जाते है तो ऐसे सभी कार्य मौलिकता की श्रेणी में आते है । वस्तुओं के नये उपयोग बताना, कहानी, गीत एवं चित्र की रचना करना जैसे कार्य मौलिकता की श्रेणी में आते है ।

18.4.4 विस्तारण

विस्तारण से तात्पर्य दिये गये विचारों एवं भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण से होता है । विस्तारण को दो भागों में विभक्त किया जाता है । शाब्दिक विस्तारण व आकृति संबंधी विस्तारण । शाब्दिक विस्तारण में दिये गये संक्षिप्त घटना, कार्य, क्रिया, परिस्थिति आदि को विस्तृत करके प्रस्तुत करने की क्षमता शाब्दिक विस्तारण सृजनात्मकता के अन्तर्गत आती है । द्वितीय प्रकार की आकृति विस्तारण से है जिसमें रेखा या अपूर्ण चित्र को पूर्ण करने के बाद बनने वाली आकृति के आधार पर विस्तारण क्षमता को जाना जा सकता है ।

18.5 सृजनात्मकता की प्रकृति

सृजनात्मकता के स्वरूप प्रकृति को स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयास किये व इन प्रयासों के आधार पर सृजनात्मकता के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है ।

18.5.1 सृजनात्मकता के प्राचीन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त की मान्यता है कि सृजनात्मकता ईश्वर प्रदत्त योग्यता है । ईश्वर की जिस मनुष्य पर जितनी कृपा होती है वह उतना ही सृजनात्मकता पूर्ण होता है । ईश्वरीय सत्ता में विश्वास रखने वाले अध्यात्मवादी विचारक ही इस विचार के प्रबल समर्थक है ।

18.5.2 उन्माद समतुल्य सृजनात्मकता सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार सृजनात्मकता वस्तुत: मानसिक उन्माद का परिणाम है जिस प्रकार उन्माद या पागलपन की अवस्था में व्यक्ति अपनी अलग दुनिया, अलग विचार, सोच में रहकर अपने स्वार्थ की व रूचियों की पूर्ति करता है किंतु सृजनात्मक क्षमता वाले व्यक्ति के द्वारा अमूर्त चिन्तन आधारित विचार एक सीमा तक उन्माद के समतुल्य लग सकता है क्योंकि अमूर्त चिन्तन के कारण वह प्रत्येक क्रिया स्वयं की कल्पना व अनुमान शक्ति के आधार पर करता है जिस कारण मूर्त चिन्तन योग्यता वाले लोग उसे पागल या दार्शनिक की संज्ञा दे देते है । किंतु उसका व्यवहार स्वार्थी व व्यक्तिगतहित पर आधारित न होकर जनहित पर आधारित होता है । इस आधार पर उसका व्यवहार कुछ समय के लिए सामान्य व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न हो सकता है किंतु मानसिक उन्माद पर आधारित नहीं होता ।

18.5.3 सृजनात्मकता का जन्मजात सिद्धान्त

सृजनात्मकता के इस सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार सृजनात्मकता एक जन्मजात योग्यता है या मानसिक योग्यताओं का संगठन है जो व्यक्ति की प्रकृतिजन्य योग्यताओं में सम्मिलित किया जाता है । न्यूटन, आइजेक महात्मा गांधी, आइन्सटीन, अब्दुल कलाम जैसे महान् व्यक्ति जन्म के समय से ही परिस्थितियों को समझने व नये विचार, शक्ति, सूझ के मानसिक गुणों से युक्त है ।

18.5.4 वातावरणजन्य सृजनात्मकता के सिद्धान्त

सृजनात्मकता का यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि सृजनात्मकता ईश्वरीय उपहार है ना ही जन्मजात योग्यता पर आधारित है वरन् यह मानवीय योग्यता स्वत: वातावरण से अर्जित की जाती है । किसी भी व्यक्ति को सृजनात्मकता एवं असृजनात्मक बनाने में परिस्थिति एवं वातावरण की अहम् भूमिका होती है । यदि वातावरण प्रजातांत्रिक, स्वतंत्र व अभिप्रेरणा पर आधारित होता है तो व्यक्ति में सकारात्मक, रचनात्मक विचारों का सृजन होने लगता है वातावरण में संकीर्णता, अधिकारिता व वैराग्यपूर्ण स्थिति सृजनात्मकता का ह्रास करती है । किसी व्यक्ति को सृजनात्मक व असृजनात्मक बनाने में वातावरण की महती भूमिका होती है ।

18.5.5 प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध सिद्धान्त

सृजनात्मकता के इस सिद्धान्त के अनुसार मानव मस्तिष्क के दोनों गोलाद्धो की अंतक्रिया का परिणाम सृजनात्मकता होती है । प्रमस्तिष्क को दो गोलाद्धों में विभक्त किया जाता है । दायां गोलार्द्ध व बायां गोलार्द्ध । यद्यपि ये दोनों गोलार्द्ध की सक्रियता भिन्न भिन्न होती है । अनुसंधानों में पाया गया है कि सृजनात्मकता वाले बालकों का दायां गोलार्द्ध ज्यादा प्रबल होता है जबकि तार्किक विचारों वाले व्यक्तियों में बायीं गोलार्द्ध अधिक प्रबल रहता है ।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मकता को एक प्रक्रिया के रूप में विश्लेषित किया है । ई.पी. टोरेन्स (E.P.Torrance) आर.ई. मायर्स (R.E.Myer) ने सृजनात्मक प्रक्रिया को चार सोपानों में विभक्त किया है ।

(i) समस्याओं के प्रति सजग होना ।

(ii) उपलब्ध सूचनाओं को संकलन करना ।

(iii) समाधानों को खोजना ।

(iv) परिणामों का संचरण ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 सृजनात्मकता का क्या अर्थ है?

2 सृजनात्मक के प्रमुख तत्व कौन-कौन से है?

3 सुजनात्मकता की प्रकृति क्या है?

18.6 सृजनात्मक बालक की विशेषता

- तात्कालिक परिस्थितियों से परे जाने की क्षमता
- खोजपूर्ण एवं जिज्ञासा प्रवृत्ति
- दूरदृष्टि
- स्वतंत्र निर्णय क्षमता
- उच्च आकांक्षा स्तर
- विचारों में मौलिकता, नमनीयता, प्रवाह व विस्तरण
- जोखिम उठाने में तत्परता
- अभिव्यक्ति में विविधता
- कर्तव्य निष्ठता व दृढ़ निश्चय
- उत्साही
- धैर्यवान, साहसी

18.7 सृजनात्मक बालक की शिक्षा

सृजनात्मक बालक प्रत्येक वस्तु या घटना को नवीन एवं मौलिक रूप देने का प्रयास करता है । ऐसे बालकों का लक्ष्य नवीन ज्ञान की खोज एवं चिंतन होता है । इन बालकों की विशेष रूचि विज्ञान एवं कला विषय में अधिक होती है । इसलिए इन बालकों की अर्न्तनिहित शक्तियों को सही ढंग से बाहर निकालने हेतु निम्न प्रयास किये जाने चाहिए ।

- अध्यापन कार्य करते समय शिक्षक को इन छात्रों को पर्याप्त स्वतंत्रता देनी चाहिए ।
- सृजनात्मक बालकों की सृजनात्मक विधि प्रविधि के माध्यम से शिक्षण कार्य करवाया जाना चाहिए ।
- शिक्षक को स्वयं इन बालकों द्वारा किये जा रहे है सभी कार्यो में रूचि लेते हुए इन्हें आगे बढने का अवसर दिया जाना चाहिए ।

- अध्यापक को मूल्यांकन की सही पद्धति अपनानी चाहिए ।
- सृजनात्मक बालकों को शिक्षण अधिगम के सिद्धान्तों सूत्रों एवं नियमों के अनुरूप शिक्षण कराना चाहिए ।
- सृजनात्मकता संबंधी कार्य गति से संबंधित नहीं होते या इनमें शीघ्र परिणाम प्राप्त कर पाना असंभव होता है । ऐसे में अध्यापक धैर्य, साहस से काम लेते हुए बालकों में आत्मविश्वास लगन व स्वतंत्र निर्णय शक्ति का विकास करने की योग्यता विकसित करने का प्रयास करना चाहिए ।
- सृजनात्मक बालकों, की प्रतिभा को सम्मानित किया जाना चाहिए ।
- पाठ्यक्रम में मस्तिष्क विप्लव, संज्ञानात्मक विकास व समस्त मानसिक प्रक्रियाओं पर आधारित विषयवस्तु का समावेशन किया जाना चाहिए ।

18.8 सारांश

वर्तमान युग विज्ञान व प्रौद्योगिकी का युग है जिस कारण सृजनात्मकता जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित करता है । विश्व के प्रत्येक प्राणियों में कम या अधिक मात्रा में पायी जाती है किंतु एक बात स्पष्ट है सृजनात्मकता शक्ति का विकास जबरदस्ती किसी प्राणी में नहीं किया जा सकता है । यह तो मानव प्रकृति में विद्यमान सार्वभौम प्रवृति है अत: शिक्षक का दायित्व है कि वह सृजनात्मक बालकों को पहचानकर उनकी सृजनात्मक शक्ति व प्रतिभा को विकसित होने का पूरा अवसर दें ताकि बालक एक उत्पादक इकाई बन सके ।

18.9 मूल्यांकन प्रश्न

1. सृजनात्मकता का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके तत्वों पर प्रकाश डालिए ।
2. चिंतन से क्या आशय है? चिंतन कितने प्रकार का होता है?
3. सृजनात्मकता के प्रमुख तत्वों को स्पष्ट करते हुए शिक्षा में उसके उपयोग को स्पष्ट कीजिये ।
4. सृजनात्मकता के प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए ।
5. सृजनात्मक बालक की विशेषता बताइये ।
6. सृजनात्मक शक्ति के विकास में अध्यापक की भूमिका बताइये ।

18.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. गुप्ता एस. पी. अलका 2009 शिक्षा मनोविज्ञान शारदा पुस्तक भवन
2. अरोड़ा रीटा व मारवाह सुदेश शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा प्रकाशन
3. भाई योगेन्द्रजीत बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास विनोद पुस्तक मंदिर आगरा ।
4. सिंह आर. एन. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा ।
5. चौहान एस. एस. 1987 एडवान्स एजूकेशनल साइकोलॉजी विकास पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली
6. माथुर एस. एस. शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद प्रकाशन आगरा ।

ISBN - 13/978-81-8496-245-1